प्रकाशक :
महालचन्द भादानी
सभापति :—
श्री जैन श्वे० ते० सभा
श्रीडूंगरगढ़

प्रथम आवृत्ति — १०००
कीमत — २॥)
अप्रेल — १९५२

मुद्रक :
महालचन्द बयेद
ओसवाल प्रेस
कलकत्ता

प्रकाशक का निवेदन

—:o:—

हमारी सभा ने सही दिशा में सही कदम उठाया है। सभा ने सर्व प्रथम आपकी सेवा में "जीव-अजीव" पुस्तक भेंट की। हमें खुशी है कि इस पुस्तक का आपने समुचित आदर किया और लाभ उठाया। अब हम आचार्य श्री भिक्षु रचित श्रावक के बारह व्रत पर एक विवेचनात्मक पुस्तक आपके सामने रख रहें हैं। पुस्तक सरल हिन्दी में है और मामूली-सी हिन्दी जानने वाले भी इसे स्वतः ही पढ़ कर लाभ उठा सकते है। कीमत भी लागत मात्र सिर्फ ३॥) रखी गयी है। हमारी सभा के उत्साही कार्यकर्त्ताओं की अभिलाषा है कि साधारण जनता के धार्मिक ज्ञान वृद्धि के हेतु अच्छा साहित्य समय समय पर प्रकाशित किया जाय और लागत मूल्य पर वितरण किया जाय। आशा है 'जीव-अजीव' की तरह आप लोग इस पुस्तक का भी आदर करेंगे और हमारे उत्साह को बढ़ावेंगे।

महालचन्द भादानी

सभापति:—

श्री जैन श्वे० ते० सभा, श्री डूंगरगढ़।

अपनी बात

एक महान आध्यात्मिक कवि और आचार्य श्री भिक्षु की रचना पर कुछ लिखना एक दुस्साहस है। फिर भी मैंने कवि की अनुपम कृति—श्रावक व्रत चौपई—पर दो चार शब्द आपके सामने रखने की हिम्मत कर ही तो ली।

कवि की यह रचना सरल मारवाड़ी भाषा में है। प्रचलित मारवाड़ी मुहावरों एवं ग्राम्य जीवन के सुन्दर भावप्रद दृष्टान्तों की बहुलता से यह कृति लोकप्रिय बन गयी है। जैन दर्शन के गूढ़ आध्यात्मिक रहस्यों को सरल शब्दों में समझाने का कवि ने सफल प्रयास किया है। मुझे यह रचना अति सुन्दर प्रतीत हुयी। इसका अध्ययन किया और जैसा मैं समझ पाया हूँ आपके सामने रख रहा हूँ।

कवि की मूल रचना के भावों की मैं कहाँ तक रक्षा कर सका हूँ, मैं नहीं जानता। मैंने तो अपनी दृष्टि से जो भी ठीक समझा लिख डाला।

मोक्ष-प्राप्ति मानव का सर्वोच्च लक्ष्य है—इस तथ्य को मैं स्वीकार करता हूँ परन्तु भौतिक जगत की चकाचौंध में चौंधियाया हुआ मानव मोक्ष को समझ नहीं पाता वह तो घरेलु जीवन को ही अपना सब कुछ मानता है। अतः घरेलु जीवन कैसे सुख और शान्ति से बिताया जा सकता है—इसी दृष्टिकोण को सामने रख कर मैंने अपने विचार प्रकट किये हैं। कवि की

दृष्टि में तो गृहस्थ जीवन की भौतिक सुख सुविधायें गौण हैं। इन्हीं दो भिन्न विचार धाराओं के कारण कहीं कहीं मूल रचना एवं मेरे विवेचन में अन्तर दिखायी पड़ेगा जो शायद विज्ञ पाठकों की दृष्टि में खटके। परन्तु मैंने इस रचना का अध्ययन अपने दृष्टिकोण से किया है और इसे उपयोगी समझ आपके सामने अपनी टूटी फूटी भाषा में पेश किया है।

जिस वर्ग व जिस समाज की साधारण जनता के लिये मैंने इसे लिखा है उसकी सामाजिक रूढ़ियों के प्रति आंख मूंद लेना मैं पसन्द नहीं करता। अतः प्रसंग वश व विना प्रसंग के भी मैंने सामाजिक रूढ़ियों पर कठोर एवं कटु चुभते हुये शब्द प्रयोग किये हैं। इस ख्याल से कि पाठकों को इन पर गम्भीरता पूर्वक सोचने का अवसर मिले। यदि इस कटु सत्य से किसी का दिल दुःखे तो मैं क्षमा याचना करता हूँ।

मैंने इस आध्यात्मिक रचना में सामाजिकपन लाने का प्रयत्न किया है। कहीं कहीं तो मैं मूल रचना के भावों से बहुत दूर चला गया हूँ और अपने ही विचारों में उलझ-सा भी गया हूं। मूल रचना के पद्यों का अर्थ करने में भी मैंने पूरी आज़ादी से काम लिया है। कई पद्य भूल से छूट भी गये हैं जो शुद्धाशुद्धि पत्र में जोड़ दिये गये हैं। इन सब कमियों का मैं अनुभव करता हूँ। फिर भी जिस उद्देश्य को सामने रख कर मैंने इस पुस्तक को लिखा है वह यदि सहस्रांश में भी पूरा हो सका तो मैं अपना लिखना सफल समझूंगा।

श्री जयचन्दलालजी कोठारी (लाडनूं) श्री पन्नालालजी भन्साली (लाडनूं) श्री गोपीचन्दजी चोपड़ा (गंगाशहर) श्री महालचन्दजी बचेद (लाडनूं) श्री सुखलालजी मालू (डूंगरगढ़) श्रीकिशनलालजी रांका (गंगाशहर) आदि मित्रों ने इस पुस्तक की त्रुटियाँ निकालने, सैद्धान्तिक व भाषा सम्बन्धी भूलें सुधारने, शुद्धा-शुद्धि पत्र तैयार करने, प्रूफ संशोधन करने आदि कामों में मुझे जो सलाह एवं सहयोग दिया उसके लिये मैं आप लोगों का पूरा ऋणी हूं।

पुस्तक प्रकाशन का भार श्री जै० श्वे० ते० सभा, श्री डूंगरगढ़ ने उठाया है। अतः मैं इस सभा के सभापति एवं कार्यकर्त्ताओं को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

धर्म को ढोंग समझने वाला और आधुनिक विज्ञान का उपासक मेरे जैसा व्यक्ति एक आध्यात्मिक कवि की रचना को पढ़े और उस पर कुछ लिखे यह एक आश्चर्य-सा लगता है। परन्तु हर मानव के विचारों में प्रसंग वश एक क्रान्ति उठती है, परिवर्तन होता है, एक उथल पुथल मचती है। ऐसी ही एक घटना मेरे जीवन में भी हुई। विक्रम संवत् २००२ की बात। आचार्य श्री तुलसी का डूंगरगढ़ में चातुर्मास। कार्तिक कृष्ण अष्टमी की सुनहरी प्रभात। मेरी प्रिय पुत्री छगनी का घर से सदा के लिये विदा होना और दीक्षा ग्रहण करना। दीक्षा-समय की शुभ वेला में मेरे विचारों में एक उथल पुथल हुयी और सम्भवतः इसी का परिणाम है कि मैं इस प्रकार के आध्यात्मिक अध्ययन में आनन्द का अनुभव करता हूँ और समय समय पर

अपनी समझ के अनुसार कुछ लिख भी दिया करता हूँ। यही है मेरी अपनी बात।

श्री डूंगरगढ़
फाल्गुन शुक्ला द्वितीया
विक्रम सं० २००८

जेठमल भन्साली

विषय सूची

	विषय	पृष्ठ संख्या
१	अहिंसा अणुव्रत	७
२	सत्य अणुव्रत	२३
३	अस्तेय अणुव्रत	३६
४	ब्रह्मचर्य अणुव्रत	५४
५	अपरिग्रह अणुव्रत	६३
६	दिग् विरति व्रत	१२३
७	भोगोपभोग परिमाण व्रत	१३६
८	अनर्थ दण्ड विरति व्रत	१६३
६	सामायिक व्रत	२१८
१०	देशावकाशिक व्रत	२५२
११	पोषधोपवास व्रत	२८४
१२	अतिथि संविभाग व्रत	२६६
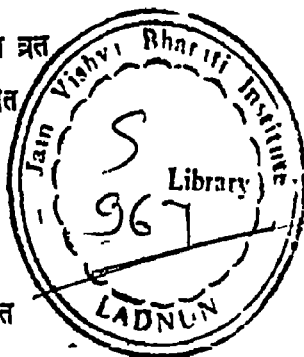
श्री हंसराज बच्छराज नाहटा
सरदारशहर निवासी
द्वारा
जैन विश्व भारती, लाडनूं
को सप्रेम भेंट –

मानव-जीवन को आदर्श वनाने के लिये कितनेक जरूरी नियम पालन करने पड़ते हैं। जीवन को उन्नत वनाने के हेतु भगवान् महावीर ने वारह नियम वताये। उनके नाम हैं बारह व्रत। हजारों वर्ष बीत चुके। फिर भी इन व्रतों की उपयोगिता आज भी उतनी ही महसूस की जा रही है। आदर्श नागरिक वनने के लिये ये व्रत नियम जरूरी हैं। आज के अशान्त विश्व में ये व्रत—ये नियम यदि उचित रूप से पालन किये जांय, तो दुनियाँ में पुनः शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया जा सकता है। इन व्रतों का मूल आधार अहिंसा है और अहिंसा से दुनियाँ के मुश्किल से मुश्किल प्रश्न हल किये जा सकते है। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अहिंसा का सफल प्रयोग किया और उन्हें इस में काफी सफलता भी मिली। यदि आज तक वे जीवित रहते, तो आज का वातावरण कुछ दूसरे ही रूप में दिखायी देता।

दुनियाँ में आज सव से जरूरी सवाल है रोटी और कपड़े का। इस प्रश्न को सुलझाने में आजके महान् व्यक्ति, चोटी

के नेता व्यस्त हैं। एक तरफ तो मजदूर है किसान है। वह भूखा है। खाने को रोटी नहीं पहनने को कपड़े नहीं। दूसरी तरफ है पूंजीपति, मालदार। बड़े बड़े महलों में वह गद्दी और तकियों के सहारे आनन्द चैन की बंसी बजा रहा है। आज दुनियाँ में ऐसी विषमता है और इसी विषमता को हटाने के लिये आज सारा संसार व्यस्त है और फल स्वरूप समाजवाद और साम्यवाद के नारे लगाये जा रहे हैं। एक तरफ पूंजीवाद का उपासक अमेरिका दुनियाँ में पूंजीवाद को कायम रखने के लिये प्रयत्नशील है। अेटम बम अणु बम जैसे महा घातक अस्त्रों का संग्रह किया जा रहा है। दूसरी ओर समाजवाद का समर्थक रूस और उसके पिट्ठू अपने सिद्धान्त के प्रचार में लगे हैं। प्रत्येक देश में इन दो विरोधी विचारधाराओं की टक्कर होती है। एक दूसरे को दबाने की चेष्टा की जाती है। नरबलि चढ़ाई जाती है। परन्तु आपस में लड़ने झगड़ने से रक्त की नदियाँ भले ही बहने लगें, विषमता दूर होने वाली नहीं।

आज रूस और अमेरिका एक दूसरे को भय की दृष्टि से देखते हैं। रूस को अमेरिका का भय है और अमेरिका को रूस का। जबतक यह आपस का भय नहीं मिटता, दुनियाँ में शान्ति सम्भव नहीं।

दुनियाँ विषमता दूर करने में लगी है परन्तु जबतक अहिंसा को सही अर्थ में अपनाया न जावेगा तबतक कोई भी प्रश्न हल न हो सकेगा। यदि चालीस क्रोड़ मानव अहिंसा के सफल

प्रयोग से आजाद हो सकते हैं, तो दूसरे छोटे छोटे प्रश्न तो बहुत जल्द हल हो सकेंगे। मानव यदि अहिंसा के रहस्य को समझ कर इसे अपनावे, तो सब समस्यायें अपने आप सुलझ जाती है। जुल्म करना, अत्याचार करना, अन्याय करना, दूसरे को भय-भीत करना, उसे जबरन दबाये रखना हिंसा है। झूठ बोलना हिंसा है। चोरी करना हिंसा है। घूसखोरी हिंसा है। ब्लैक मारकेट हिंसा है। किसी को शारीरिक व मानसिक कष्ट पहुं-चाना हिंसा है। यदि आज मानव अहिंसक बनता है तो उसे इन चीजों को छोड़ना होगा और ऐसा होते ही मानव सुख और शान्ति का अनुभव करता है। जो मानव किसी को दुःख नहीं देता, उसे दूसरा भी कोई दुःख देगा नहीं। अहिंसक को अपने पर पूरा भरोसा है पूरा विश्वास है। उसकी नीयत साफ है। उसे किसी का कोई भय नहीं। वह शान्ति की नींद सोता है। रूस और अमेरिका दोनों की नीयत साफ नहीं है। दोनों एक दूसरे को अवसर आने पर दबाना चाहते हैं। दोनों एक दूसरे पर विश्वास नहीं करते। अतः दुनियां में अशान्ति है, मानव आज बेचैन है।

बेचैन-मानव यदि इन बारह व्रतों को सही अर्थ में अपनावे, तो वह अपने जीवन में सुख और शान्ति का अनुभव कर सकता है। बारह व्रतों का मूल आधार अहिंसा है। आत्म उत्थान के लिये ये जितने उपयोगी है, उतने ही सांसारिक जीवन में भी।

आखिर मानव को मानव-जीवन सफल वनाना है और इसके लिये वारह् व्रत सर्व श्रेष्ठ साधन हैं।

तेरापंथ सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक एवं प्रथम आचार्य श्री स्वामी भिक्षु ने सरल पद्यमय मारवाड़ी भाषा में वारह् व्रतों का सार हमारे सामने रखा है। पाठक स्वामीजी की रचना ध्यान पूर्वक पढ़ें और इसका रहस्य समझें।

वारह् व्रतों के तीन भाग किये हैं—अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत। अणुव्रत पांच है, गुणव्रत तीन हैं और शिक्षाव्रत चार। देखिये स्वामी जी के शब्द—

पांच अणुव्रत परिवरया, तीन गुणव्रत सार।
शिखाव्रत च्यारों चतुर, तेहनूं करो विचार॥

अव स्वामीजी पांच अणुव्रत के नाम सुनाते हैं—

पहिला में हिंसा तजै, दूजै झूठ परिहार।
तीजै अदत्त चौथे मिथुन, पंचमे तजै धन सार॥

पहिले अणुव्रत में यथाशक्ति हिंसा का त्याग, दूसरे अणुव्रत में यथाशक्ति झूठ वोलने का त्याग, तीसरे अणुव्रत में यथाशक्ति चोरी करने का त्याग, चौथे अणुव्रत में यथाशक्ति मैथुन सेवन का त्याग और पांचवें अणुव्रत में यथाशक्ति धन सम्पदा परिग्रह संग्रह का त्याग करना पड़ता है

पांच अणुव्रत के वाद गुणव्रत की वारी आती है। गुणव्रत तीन हैं।

पहिलो गुणव्रत दिशि तणूं, दूजै भोग पचखाण।
तीजै अनरथ परिहरै, ए तीन गुणव्रत जाण॥

पहिले गुणव्रत में यात्रा करने के हेतु दिशि की मर्यादा करनी, दूसरे गुणव्रत में भोग उपभोग में काम आने वाले पदार्थों के सेवन में मर्यादा बांधनी और तीसरे गुणव्रत में निरर्थक निष्प्रयोजन हिंसा—अनर्थदण्ड का परिहार-त्याग करना पड़ता है।

गुणव्रत के पश्चात् स्वामीजी चार शिक्षाव्रतों का उल्लेख करते हैं।

सामायक पहिलो सिखा, दूजो संवर जाण।
तीजो पोषध कहिजिये, चौथो साधु ने दान॥

प्रथम शिक्षाव्रत में सामायिक करनी, दूसरे शिक्षाव्रत में संवर करना, तीसरे शिक्षाव्रत में पौषध करना और चौथे शिक्षाव्रत में शुद्ध साधु को शुद्ध दान देने का विधान है।

इस प्रकार से कवि ने बारह व्रतों के नाम हमारे सामने रखे। इन व्रतों का नाम क्रम से कंठस्थ कर लेना चाहिये। आगे चल कर इनका विस्तार पूर्वक खुलासा किया जावेगा।

पांच अणुव्रत

(१) अहिंसा अणुव्रत, (२) सत्य अणुव्रत, (३) अस्तेय अणुव्रत, (४) ब्रह्मचर्य अणुव्रत, (५) अपरिग्रह अणुव्रत।

तीन गुणव्रत

(६) दिग्विरति व्रत, (७) भोगोपभोग परिमाण व्रत, (८) अनर्थ दण्ड विरति व्रत।

चार शिक्षाव्रत

(९) सामायिक व्रत, (१०) देशावकाशिक व्रत, (११) पौषध व्रत (१२) अतिथि संविभाग व्रत।

श्रावक ना व्रत बार, पाले निर अतिचार।
तेह दुरगति नहीं पड़े ए, भव सायर तरे ए॥

जो मानव उपरोक्त बारह व्रतों को बिना अतिचार के शुद्ध रूप से विवेक सहित पालन करता है वह दुर्गति में नहीं जाता। अच्छे कार्य का फल सदैव उत्तम होता है। ऐसा मानव भव रूपी समुद्र को जल्दी तैर कर पार कर सकता है।

अपने जीवन को आदर्श बनाना व इसे मौज शौक में बरबाद करना यह तो मानव के हाथ की बात है। कुछ साधारण नियम पालन करते रहने से मानव-जीवन ऊँचा उठ जाया करता है, नहीं तो पतन का गड्ढा तो तैयार है। दुनियाँ में भोग्य सामग्री अनन्त है। एक जन्म तो क्या करोड़ों जन्मों में भी इस भोग्य सामग्री को सम्पूर्ण रूप से नहीं भोगा जा सकता। मानव की लालसा, पिपासा, आशा, कामना कभी भी मिटने वाली नहीं। अतः मानव को भोग्य-सामग्री के उपयोग में मर्याद करनी चाहिये। अपनी जरूरतों में कमी करते रहना चाहिये। जरूरतें जितनी कम होगी मानव उतना ही सुख और शान्ति का अनुभव करेगा। बारह व्रत त्याग को महत्त्व देते हैं और त्यागमय जीवन ही मानव को सुखी बनाया करता है।

व्रत पहला

अहिंसा अणुव्रत

युद्धके दौरान में अमेरिका ने जापान के दो शहरों पर Atom bomb—परमाणु बम गिराये। उनका नतीजा हमने देखा। लाखों नर नारी पशु पक्षी सूक्ष्म प्राणी स्वाहा हो गये। हमने देखा परमाणु बम की दानवी शक्ति का नमूना। हिंसा का नग्न प्रदर्शन और वह भी एक ऐसे राष्ट्र द्वारा जो सभ्य-समाज का शिरोमणि माना जाता है। विज्ञान यहीं खत्म नहीं हो जाता। आगे बढ़िये—तारीख १० सेप्टेम्बर १९४९ के समाचार पत्रों में हमें खबर मिलती है— परमाणु बम से भी भयङ्कर कीटाणु पदार्थ का आविष्कार—इस नये कीटाणु पदार्थ के आविष्कार के सामने परमाणु बम बच्चों का खेल भर रह गया है। इस कीटाणु पदार्थ की ३॥ छटांक मात्रा संसारका अन्त कर सकती है। परमाणु बम अब गुजरे जमानेकी वस्तु हो गयी है। इत्यादि। *

---

*St. Cergue (Switzerland Sept, 10. (1949)

The atom bomb has been made obsolete by a biological product seven ounces of which is enough to kill every thing in the world, according to Dr Brock chisholm, Canadian Director general of the world health organisation

"The atom bomb is obsolete Relatively speaking it is Childs play Compared to biological weapons."

"A few fanatical men can destroy mankind by biological warfare. Manpower is irrelevant and heavy industry has nothing whatever to do with this form of war."

P T. I. Reuter

त्रिकालदर्शी भगवन् महावीर ने भविष्य में होने वाले ऐसे हिंसा के ताण्डव-नृत्य को ध्यानमें रखते हुए—जैन दर्शन का सुन्दर महल अहिंसा रूपी नींव पर स्थापित किया। जिस कार्य में किसी सूक्ष्म से सूक्ष्म प्राणी की भी हिंसा होने की सम्भावना हो, जैन दर्शन उसे आदरणीय नहीं मानता। प्राणियों में सर्व श्रेष्ठ प्राणी है मानव। इस सर्व श्रेष्ठ प्राणी—मानव—के आराम के लिये, रक्षा के लिये किसी विचारे छोटे सूक्ष्म प्राणी का बलिदान जैन-दृष्टि से अनुचित है, अन्याय है, जुल्म है।

संसार के समस्त प्राणी दो भागों में बांटे जा सकते हैं—त्रस और स्थावर। जिन प्राणियों में चलने फिरने की शक्ति है, जो स्वेच्छा से इधर उधर घूम सकते हैं, जो अपना सुख दुःख प्रकट कर सकते हैं, उन्हें त्रस कहते है। जो प्राणी चल फिर नहीं सकते, स्थिर रहते हैं एवं जिनका सुख दुःख साक्षात् न देखा जा सके, किन्तु अनुमान के द्वारा जाना जाय, उन्हें स्थावर कहते हैं जैन-दर्शन के अनुसार पृथ्वी पानी अग्नि वायु व वनस्पति के जीव स्थावर हैं। स्थावर प्राणी के सिर्फ एक स्पर्श इन्द्रिय होती है। दो इन्द्रिय वाले, तीन इन्द्रिय वाले, चार इन्द्रिय वाले व पांच इन्द्रिय वाले प्राणी त्रस हैं।

दो इन्द्रिय वाले प्राणी—लट, सीप, शंख, कृमि, घुण आदि। इनके स्पर्शन एवं रसन-इन्द्रिय होती है।

तीन इन्द्रिय वाले प्राणी—चींटी, मकोड़ा, जूं, लीख, चींचड़ आदि। इनके स्पर्शन, रसन एवं घ्राण इन्द्रिय होती है।

चार इन्द्रिय वाले प्राणी—मक्खी, मच्छर, भंवरा, टीडी, कसारी, बिच्छु आदि। इनके स्पर्श, रस, घ्राण एवं चक्षुः इन्द्रिय होती है।

पांच-इन्द्रिय वाले प्राणी—पशु, पक्षी, मानव, सर्प, देव, नारक आदि। इनके स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षुः एवं श्रोत्रेन्द्रिय होती है।

पहिले अणुव्रत में उपरोक्त प्राणियों की हिंसा का यथाशक्ति त्याग किया जाता है।

इस पद्य की रचना स्वामीजी ने गुरु शिष्य वार्तालाप के रूप में की है। यह अत्यन्त सरल, सीधी सादी भाषा में एवं रोचक है। साथ साथ जैन-दर्शन के गूढ़ रहस्यों का भी यह सुन्दर दिग्दर्शन कराता है। सद्गुरु कहते हैं—हे शिष्य—

पहलो व्रत इम जाण, तिण में हिंसा ना पचक्खाण,
हिंसा त्रस तणी ए, बीजी थावर भणी ए।

पहले व्रत में हिंसा का त्याग किया जाता है। जीवहिंसा के सम्बन्ध में अपनी सामर्थ्य अनुसार नियम किये जाते हैं। हिंसा दो प्रकार की है—त्रस प्राणी सम्बन्धी हिंसा और स्थावर प्राणी सम्बन्धी हिंसा।

पुढ़वी जीवा पुढ़ो सत्ता,
आउ जीवा तहा गणी ।
वाउ जीवा पुढ़ो सत्ता,
तण रुक्खा स वीयगा ॥

पृथ्वी जल अग्नि वायु और वनस्पति ये सब स्वतंत्र व्यक्तित्व के धारक जीव हैं। जैन—दर्शन में इनका नाम है—स्थावर जीव।

अहावरा तसा पाणा,
एवं छक्काय आहिया ।
एयावए जीव काए,
नावरे कोइ विज्जइ ॥

इनके सिवाय त्रस प्राणी भी हैं, जिनमें चलने फिरने की शक्ति है। ये छव प्रकार के जीव हैं। इनके अतिरिक्त दुनियां में और कोई जीव नहीं।

आज का सभ्य-मानव यह तो कहता है कि—"वसुधैव कुटुम्बकम्" संसार के समस्त प्राणी कुटुम्ब के समान हैं। परन्तु इस वाक्य का वास्तविक अर्थ नहीं समझता। त्रस एवं स्थावर दोनों ही तो प्राणी हैं। दोनों को अपना कुटुम्बी समझना चाहिये। पर आज का सुशिक्षित मानव स्थावर प्राणियों को तो कोई महत्त्व ही नहीं देता। ये तो मानव-जीवन के लिये

परम उपयोगी हैं अतः इनका प्राण-नाश हिंसा ही नहीं। ये सुप्त अवस्था में हैं। इनके जीवन का कोई महत्त्व नहीं। परन्तु जरा सोचें, विचारें। किसी कारण से एक मानव बेहोश पड़ा है उसे कोई ज्ञान नहीं, क्या ऐसे सुप्त एवं बेहोश मानव को तलवार से मार डालना कानूनी दृष्टि से अपराध नहीं? इसी प्रकार एक इन्द्रिय वाले जीव विचारे अंधे हैं, गूंगे हैं, बहरे हैं, उनके नाक नहीं, जीभ नहीं, चल फिर वे सकते नहीं ऐसे निर्बल कमजोर प्राणी को मानव अपने स्वार्थ के लिये काम में लाता है, उनका प्राणनाश करता है। क्या यह अपराध नहीं? सभी प्राणियों को अपना अपना जीवन प्रिय है। अंधा, बहरा, गूंगा व अपंग भी मरना तो नहीं चाहता।

सव्व जीवा वि इच्छन्ति,
जीविउं न मरिज्जिउं।

सब जीव जीने की इच्छा करते हैं। मरना कोई नहीं चाहता। ऐसी स्थिति में स्थावर प्राणी को जीवन रहित कर देना हिंसा ही कही जावेगी। यह ठीक है कि मानव सर्व श्रेष्ठ प्राणी है। उसके जीवन का महत्त्व अधिक है। परन्तु फिर भी मानव को यह हक़ तो नहीं कि वह दूसरों का हक़ छीन ले। छोटे से छोटे प्राणी को भी जीने का हक़ हासिल है।

वह अपना हक़, अपना अधिकार क्यों छोड़े? जैन-दर्शन में प्राणी-विज्ञान पर खूब गहरा प्रकाश डाला है एवं अहिंसा

को इस में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। जैन-दर्शन का वाक्य—"मित्ति में सव्व भुऐ सु" संसार के समस्त प्राणी मेरे मित्र हैं—"वसु धैव कुटुम्बकम्" से मिलता जुलता है। दोनों का आशय एक है। इन वाक्यों के गूढ़ रहस्य को समझना चाहिये।

श्रावक-शिष्य ने त्रस एवं स्थावर हिंसा सम्बन्धी बातें ध्यान पूर्वक सुनी और कहा—गुरुदेव!

वसतां गृहस्थावास, हिंसा हुवै तास,
आरम्भ विन करे ए, पेट किम भरै ए।

मैं गृहस्थ हूं। आरम्भ किये विना हिंसा किये विना मेरा पेट कैसे भरेगा? मेरे परिवार का भरण पोषण कैसे होगा? रोटी पकाता हूं तो भी पृथ्वी, अग्नि, वायु एवं वनस्पति काय की हिंसा होती है। त्रस प्राणी की हिंसा भी हो सकती है। गृहस्थ का छोटा से छोटा काम भी तो हिंसा के विना हो नहीं सकता। ऐसी परिस्थिति में गुरुदेव! मेरा काम कैसे चल सकता है? मैं हिंसा का त्याग कैसे कर सकता हूं? श्रावक शिष्य ने अपनी कमजोरी बताई। परन्तु उसने हिम्मत न छोड़ी। उसने पुनः सोचा, आशा की एक किरण उसे दिखायी दी।

करूं त्रस तणा पचक्खाण, स्थावर नो परिमाण,
भेद त्रस तणा ए, ज्ञानी कह्या घणा ए।

यदि मैं चलने फिरने वाले त्रस जीवों की हिंसा का त्याग कर दूं और स्थावर जीवों की हिंसा का प्रमाण कर दूं, नियम

वना दूं, तो मेरा काम भी चलता रहे और निरर्थक हिंसा से भी वचाव होता रहे। ज्ञानियों ने त्रस जीवों के अनेक भेद वताये हैं, जैसे अपराधी एवं निरपराधी।

एक त्रस प्राणी मुझे मारने आता है। मेरी हत्या करके मुझे लूटना चाहता है। मुझे चोट पहुंचाता है। मेरे पर घातक आक्रमण करता है, तो मैं चुप तो नहीं रह सकता। आत्म-रक्षा के लिये मुझे कुछ तो करना ही होगा। मैं ऐसे अपराधी त्रस प्राणी को क्षमा नहीं कर सकता। यदि जरूरत पड़े तो मैं ऐसे अवसर में वन्दूक, पिस्तौल व तलवार व लाठी का उपयोग करने में भी हिचकिचाहट न करूंगा। कोई चोर, लुटेरा, डाकू मेरे मकान को तोड़ कर अन्दर घुसता है, लूट मचाता है, खून करता है, स्त्रियों की वेइज्जती करता है, तो ऐसी परिस्थिति में मुझे सभी साधन काम में लेने पड़ते हैं। गोली तलवार आदि से ऐसे अपराधी नीच प्राणियों को दण्ड देना मेरा कर्तव्य हो जाता है जैन आदर्श वहुत ऊंचा है वह तो कहता है—

जावन्ति लोए पाणा,
तसा अदुव थावरा।
ते जाणम जाणं वा,
नहणे णो व धाय ए॥

संसार में जो भी त्रस व स्थावर प्राणी हैं उनकी जाण या अजाण में हिंसा न तो करो न करावो और न अनुमोदन

करो। परन्तु ऐसे आदर्श मानव की तरह ऐसे प्रसंग में शान्त बने रहने की मेरी सामर्थ्य नहीं। देखिये कवि के शब्द—

कोई मोनैं घाले घात, म्हारो अपराधी साख्यात् ।
खमताँ दोहिलो ए, नहीं मौने सोहिलो ए ॥
साँतो देने ले जाय, अथवा लूंटै आय ।
खून करै जरां ए, सूंस नहीं तरां ए ॥

जो त्रस प्राणी मुझे मारता है, चोट पहुंचाता है। वह अपराधी है। मैं उसे क्षमा नहीं कर सकता। ऐसे प्रसंग में क्षमा करना चुपचाप बैठ जाना मुझे अच्छा नहीं लगता। कोई चोर मकान में घुसता है, ताला तोड़ता है, लूटता है, खून करता है, तो मैं अहिंसक बन कर चुपचाप इस जुल्म को नहीं देख सकता। ऐसे मौके में अहिंसक बने रहने की प्रतिज्ञा मैं नहीं कर सकता। मैं तो ऐसे नीच व्यक्ति से स्वयं प्रतिशोध लूंगा। दूसरों की सहायता भी लूंगा और यदि सम्भव हो, तो पुलिस के मारफत भी ऐसे अपराधी जीवों को दण्ड दिलाने की चेष्टा करूंगा। अतः मैं अपराधी त्रस प्राणी की हिंसा का आगार रखते हुए इस अहिंसा अणुव्रत को अपनाऊँगा।

अब निर्दोष निरपराध त्रस प्राणी की हिंसा के सम्बन्ध में कवि कहता है कि—

विन अपराधी होय, तिण री हिंसा दोय,
मारै जाणतां ए, वले अजाणतां ए।

निरपराधी त्रस प्राणी की हिंसा भी दो प्रकार की है। एक तो जान वुझ कर निरपराधी प्राणी की हिंसा करना और दूसरी अणजाण में ऐसे प्राणी की हिंसा हो जाना।

अणजाण पणे में निरपराधी निर्दोष प्राणी की हिंसा का त्याग गृहस्थ से होना मुश्किल है। साधारण गृहस्थ को इतनी फुरसत नहीं कि वह हर काम को पूरी सावधानी पूर्वक करता रहे। अपना दैनिक कार्य करते समय उस से ऐसी हिंसा हो जाया करती है। जान वुझ कर इच्छा पूर्वक निरपराध प्राणी की हिंसा न करना—यह तो साधारण विवेक वाला गृहस्थ पालन कर सकता है। श्रावक-शिष्य अपनी कमजोरी वताते हुए गुरु से सविनय निवेदन करता है—हे गुरुदेव !

म्हारे धान जोखन रो काम, गाड़ी चढ़ जाऊं गाम,
खेती हल खड़ूं ए, शूड निनाण करूं ए।
तिहां वहु जीव हणाय, किम पालूं मुनिराय,
नहीं सझै इसो ए, गृहवासे वस्यो ए।
आकुटी ने स्वाम, जीव मारण रो काम,
व्रत छै जाणतां ए, नहीं अजाणतां ए।

मेरे धान अनाज गल्ले किराने का काम है, व्यापार है। अतः इस काम में छोटे छोटे जीव ईली, घुन, चींटी, मकोड़ा मक्खी आदि त्रस जीवों की हिंसा हो जाया करती है। फिर मुझे कार्य

वश देश देशान्तरों में गाड़ी पर सवार होकर आना जाना पड़ता है। इस में भी त्रस व स्थावर प्राणियों की हिंसा होती है। मैं कृषि खेती का काम भी करता हूं। हल चलाता हूं, निनाण करता हूं। इस काम में भी बहुत से प्राणियों की हिंसा हो जाया करती है। मैं साधारण गृहस्थ हूं। आजीविका चलाने के लिये मुझे ये सब काम करने ही पड़ते हैं। इन सब कामों को करते समय मेरी इच्छा यह कभी नहीं रहती कि मैं किसी जीव की हिंसा करूं, परन्तु अणजाण पणे में हिंसा हो जाया करती है। अतः गुरु देव! मैं तो सिर्फ इच्छा पूर्वक निरपराधी त्रस प्राणी की हिंसा का ही त्याग कर सकता हूं, नियम ले सकता हूं, वह भी जान बूझ कर ऐसी हिंसा करने का। अणजाण पणे में जो हिंसा होती है उसका त्याग मैं नहीं ले सकता।

जैन-दर्शन में जयणा-यतना यानी प्रत्येक काम में सावधानी को बड़ा महत्त्व दिया गया है। चलने फिरने में उठने बैठने में, किसी चीज को लेने देने में, यहां तक कि बात चीत करने में भी सावधानी रखनी चाहिए। गृहस्थ में कमजोरी हुआ करती है। वह प्रत्येक कार्य को यतना सहित कर नहीं सकता। अतः वह निवेदन करता है कि—

म्हारे इसड़ी इर्या नाहिं, चालूं अन्धारा मांहि।
वस्तु जोऊं पूंजुं नहीं ए, लेउं मुकूं सही ए॥

मैं ईर्या समिति का ठीक तरह से पालन नहीं कर सकता।

ईर्या समिति के अनुसार यात्रा करने में, चलने फिरने में बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है। देख देख कर चलना होता है। चलते समय किसी से बात नहीं कर सकता। अपने मन को सिर्फ रास्ते में ही लगाना पड़ता है। जरा-सी असावधानी से जीव हिंसा का भय है। मैं गृहस्थ हूं, चलने फिरने में मैं इतनी यतना नहीं रख सकता। अन्धेरे में देख देख कर चलूं, प्रत्येक छोटी मोटी वस्तु को लेते देते समय या उठाते समय पूंज पूंज कर कार्य करूँ, यह मेरे लिये सम्भव नहीं। अतः यतना के अभाव से इन कार्यों में होने वाली हिंसा को मैं कैसे रोक सकता हूं? इतना ही नहीं—

थाप लाठी रा नेम, मो सूं चाले केम,
चउपद हांकणा ए, दोपद हटकणा ए।
इम करतां जीव मराय, जीव काया जुदा थाय,
हणवा बुद्धि नहिं करी ए, विन बुद्धे मरी ए।

मेरे पास गाय भैंस ऊंट बैल, घोड़े हाथी आदि अनेक चौपद-चार पैर वाले पालतू पशु हैं, उनको हांकने चलाने में, उनसे काम लेने में अनेक बार लाठी लकड़ी थाप चाबुक आदि का उपयोग करना पड़ता है। इन पशुओं को भय दिखाये विना, इनको ताड़ना दिये विना ये काम नहीं देते। ये कार्य हिंसामय हैं फिर भी इनके विना मेरा काम चलता नहीं। इनसे काम लेने के लिये मुझे लाठी चाबुक आदि का व्यवहार करना पड़ता है। मेरी

देख रेख में अनेक दास दासी नौकर चाकर, पुत्र पुत्री व छात्र आदि अनेक द्विपद, दो पैर वाले मानव हैं। इनको सभ्य एवं शिक्षित बनाने के लिये भी मुझे थप्पड़ चाबुक आदि डराने वाले, हटक में रखने वाले साधन काम में लाने पड़ते हैं। हिंसामय होने पर मैं अपनी जिम्मेवारी कैसे छोडूं? मुझे इनको सुधारना ही पड़ेगा। इन कामों को किये विना पारिवारिक जिम्मेवारी मैं संभाल नहीं सकता। अतः इस हिंसा का मैं त्याग तो नहीं कर सकता।

हणवाबुद्धे होय, जीव न मारूं कोय,
स उपयोग करी ए, ऐसी विगत धरी ए।
हिंसाना पचखाण, मैं कीधा परिमाण,
जावज्जीव करी ए, करण जोग धरी ए।

अपनी नाना कमजोरियों का दिग्दर्शन कराने के पश्चात् अब श्रावक-शिष्य अपनी सामर्थ्य अनुसार त्याग करने को तत्पर होता है। वह कहता है—मैं प्रतिज्ञा करता हूं, वादा करता हूं, नियम लेता हूँ कि मारने के उद्देश्य से, समझ बूझ कर किसी जीव की निष्प्रयोजन हिंसा न करूंगा। मैं ऐसी हिंसा का त्याग उपयोग सहित जीवन पर्यन्त करता हूं। प्रतिज्ञा व त्याग नियम अपनी अपनी सामर्थ्य अनुसार किया जाना चाहिए। इसके लिये जैन-दर्शन में करण एवं योग का विधान है—

तीन करण है—करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूं नहीं।

तीन योग हैं—मन से, वचन से, काया से।

गृहस्थ के नाना प्रकार की पारिवारिक जिम्मेवारी होती है। अतः वह अपनी मजबूती, दृढ़ता व सामर्थ्य अनुसार करण योग कमी रख लेता है। त्याग लेते समय करण योग को समझ लेना चाहिये। यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

श्रावक-शिष्य प्रथम अहिंसा अणुव्रत को धारण करते हुए आदर्श मुनि की प्रशंसा करता है, साथ साथ अपनी कमजोरी पर भी उसे तरस आती है।

धन जे ले वैराग, ज्यांरे सर्व हिन्सारा त्याग,
त्रस थावर तणी ए, अणकम्पा घणी ए।
हूं गृहस्थ मुनिराज, म्हारे आरम्भ सुं काज।
इन्नत बहु घणी ए, त्रस थावर तणी ए,
धंन धन साधु मुनिराज, ते सुमता सुमतें थाय।
जीवें जिहां भणी ए, नहीं चूके अणी ए,

जो मानव वैराग्य भावना से त्रस एवं स्थावर सभी प्रकार के प्राणियों की हिंसा का सम्पूर्ण रूप से त्याग करते हैं, जिनके हृदय में समस्त जीवों के प्रति अनुकम्पा, करुणा, दया व विश्व-मैत्री का साम्राज्य है, वे धन्य हैं। उनका जीवन आदर्श है। अहिंसा के वे पूजारी हैं। परन्तु गुरुदेव ! मैं तो गृहस्थ हूं। परिवार के झंझटों में फंसा हूं। मैं कमजोर मानव हूं। मेरा जीवन हिंसामय कार्यों में बीत रहा है। मेरे सभी काम तो

आरम्भ मय हैं। त्रस व स्थावर सम्बन्धी हिंसा का मेरे अव्रत बहुत अधिक है। साधु मुनिराज सर्व व्रती हैं। वे जीवन पर्यन्त पंच समिति तीन गुप्ति एवं पंच महाव्रत पालन करते हैं। उनके जीव हिंसा सम्बन्धी अव्रत बिल्कुल नहीं है। उनके नियम ग्रहण में सुई की नोक के बराबर भी छूट नहीं होती। ऐसे आदर्श सर्व व्रती मुनिवर मेरे आराध्य हैं, मेरे आदर्श हैं।

सव्वे तसन्ति दण्डस्स सव्वे भायन्ति मच्चुनो ।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनरय न घात ये ॥

धम्मपद–१०–१

दण्ड से सभी प्राणी डरते हैं, मृत्यु से सभी भय खाते हैं। ऐसा समझ कर आदर्श मानव न तो किसी को मारता है और न मारने की प्रेरणा ही करता है।

इस प्रकार से श्रावक-शिष्य आदर्श मुनि की प्रशंसा करते हुए अपने आप को धिक्कारता है। अपने हिंसामय जीवन से उसे घृणा होती है। वह भी अपने जीवन को ऊंचा उठाना चाहता है।

धिग धिग गृहस्था वास म्हारै मोटो पड़ियो पास,
हिंसा बहु घणी ए, तेह नहीं हित मो भणी ए।
ज्ञानादि अंकुश ल्याय, मन ने आणी ठाय,
हिंसा टालस्युं ए, दया पालस्युं ए।

धन धन साधु शूर, ज्यां लफरा कीधा दूर,
इस विध मो प्रते ए, खातो नहीं खतै ए।

इस गृहस्थावास को वार वार धिक्कार है। मेरे लिये यह एक वन्धन है। मुझे मजवूती से जकड़े हुए है। गृहस्थ-जीवन हिंसा से परिपूर्ण है। अतः मेरे लिये यह हितकर नहीं। मैं अव ज्ञान रूपी अंकुश से अपने मन को वश में करूंगा, हिंसा को छोड़ूंगा। दया को पालूंगा। धन्य हैं वे शूरवीर साधु मुनि जिन्होंने गृहस्थ का झंझट, परिवार का लफ़रा दूर कर दिया है और अपनी साधना में जुटे हैं। मुझ से इस प्रकार का हिसाव खाता नहीं वन रहा है।

गृहस्थ को समाज के परिवार के व राज्य के सभी काम संभालने पड़ते हैं और अपनी जिम्मेवारी के अनुरूप सभी कार्य करने पड़ते हैं। सभी कामों में हिंसा होती ही है।

समया सव्व भूए सु, सत्तु मित्तसु वा जगे।
पाणाइवाय विरइ, जावज्जीवाय दुक्करं॥

उत्तराध्य० १९-२५

जीवन पर्यन्त संसार के सभी प्राणियों पर—चाहे वे शत्रु हों या मित्र हों—सम भाव रखना तथा सर्व प्रकार की हिंसा का त्याग करना वड़ा कठिन है। परन्तु फिर भी सव कार्य करते समय यदि गृहस्थ अहिंसा को अपना आदर्श मान कर चले, तो

निरर्थक हिंसा से वह जरूर बच सकता है। अहिंसा अणुव्रत को धारण करते समय मानव को अपनी वर्तमान स्थिति व अपनी दृढ़ता—मजबूती का ख्याल रखना चाहिये।

तस पाणे वियाणेत्ता, संगहेण य थावरे।
जो न हिंसइ तिविहेण, तं वयं बूम माहणं॥

उत्तराध्ययन २५-२३

त्रस एवं स्थावर प्राणियों के वास्तविक स्वरूप को संक्षेप में या विस्तार से भली भांति जानकर समझ कर उनकी हिंसा न करना—यही तो ब्राह्मणत्त्व है, सर्व श्रेष्ठ आदर्श है। इस आदर्श को हम कहां तक अपनावें, इस पर सोचें विचारें।

चसकारो तूं करत है, मशक डसे हि मित।
प्राण पराये हरण में, कछु तो कर रे चित॥

व्रत दूसरा

सत्य अणुव्रत

मुसावाओ य लोगम्मि, सव्व साहूहिं गरहिओ।
अविस्सासो य भूआणं, तम्हा मोसं विवज्जए॥

सन्त जनों ने भूठ बोलने की निन्दा की है। भूठ विश्वास को उठा देता है। अतः भूठ का त्याग करना चाहिये। परन्तु गृहस्थ के लिये ऐसा करना सम्भव नहीं। उसे अपने व्यापार में अपने पेशे में नाना प्रकार की भूठ बोलनी पड़ती है। वकील भूठ न बोले, भूठे मुकदमें हाथ में न ले, तो आज की बीसवीं सदी में उसका पेशा चलता नहीं। डाक्टर भूठ न बोले, रोगी को बीमारी का भय न दिखाये, तो रोगी हाथ में रहता नहीं। फिर आपसी मार पीट या ज़हर खाया आदि के केस डाक्टर के हाथ लग जाये, तो बस कहना ही क्या? सौ सौ रुपये वाले नोटों से डाक्टर की जेब भर दी जाती है। खासी रकम हाथ लगती है फिर भूठी सर्टिफिकेट देने में डाक्टर साहब को आपत्ति क्या? व्यापारी का तो भूठ बोले बिना काम ही नहीं चलता। ग्राहक बनाये रखने के लिये भूठ की शरण लेनी ही पड़ती है।

पब्लिक प्लेट फार्म पर खड़ा होने वाला राजनीतिज्ञ तो सफेद भूठ बोल कर लोगों को अपने पक्ष में बनाये रखना अपना पावन कर्तव्य समझता है। जिधर देखो भूठ का बोलबाला है। आज दो प्रतिष्ठित राष्ट्र के सर्व श्रेष्ठ व्यक्ति, सन्धि पर हस्ताक्षर

करते हैं। कल वही सन्धि-पत्र फाड़ कर रद्दी की टोकरी में फेंक दिया जाता है। राष्ट्र-संघ की अदालत में मामला पेश होता है। दोनों ओर से सर्व श्रेष्ठ वकील नियुक्त किये जाते हैं। ऊंचे दर्जे की बहस होती है। सफेद झूठ की रचना करने में दोनों वकील सफल प्रयास करते हैं। अपने पक्ष को सम्पूर्ण सत्य सिद्ध करने की क्षमता उनमें होती है। सम्पूर्ण रूप से सफल झूठ बोलने वाला और झूठ को सत्य सिद्ध करने वाला वकील विजयी होता है। राष्ट्रसंघ की अदालत उसी के पक्ष में निर्णय देती है। अखबार वाले ऐसे सफल झूठे वकील को आसमान में चढ़ा देते हैं।

यह ठीक है कि गृहस्थ के लिये सम्पूर्ण रूप से झूठ का त्यागना कठिन है फिर भी झूठ की सीमा तो होनी चाहिये। सफेद झूठ तो न बोलना चाहिये। आदर्श गृहस्थ झूठ बोलने की मर्याद करता है। यथा सम्भव अपने आप को झूठ बोलने से बचाता है। सत्य अणुव्रत ऐसी मर्यादा बांध सकने में सहायता देता है।

दूजो व्रत श्रावक तणो, करै झूठ परमाण।
त्यागै माठो जाण ने, पालै जिनवर आण॥

श्रावक का दूसरा व्रत है—सत्य अणुव्रत अर्थात् झूठ बोलने का परिमाण करना। झूठ बोलना महा नीच कर्म है। यह त्याज्य है, छोड़ने योग्य है, ऐसी जिनेश्वर भगवान की आज्ञा है। संसार के समस्त महामानव महात्माओं ने झूठ बोलने को निन्दनीय बताया है।

झूठाबोला मानवी, नहीं ज्यांरी परतीत।
मिनख जमारो हार नै, नरकां होय फजीत॥

झूठ बोलने वाले मानव का कोई विश्वास नहीं करता। कोई उसे आदर व सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता। ऐसा झूठा मानव यदि सत्य भी बोले, तो भी लोग उसे झूठा ही समझते हैं। ऐसे मानव का मानव जन्म व्यर्थ है। मरने पर भी इनको शान्ति नहीं मिलती। नरक में ये जाते हैं और वहाँ भी इनकी फजीहत होती है।

व्यवहारिक दृष्टि से झूठ के दो भेद किये जा सकते हैं—एक छोटी झूठ दूसरी बड़ी झूठ। बड़ी झूठ वह है जिसके बोलने से कानून दण्ड दे और लोग निन्दा करे। गुरुदेव कहते हैं—हे शिष्य—

झूठ तणा पचक्खाण, नाना मोटा जाण।
पचखै मोटका ए, कांई एक छोटका ए॥

झूठ बोलने का त्याग कर। नियम ले। झूठ चाहे छोटा हो चाहे बड़ा, निन्दनीय है। बड़े झूठ का तो त्याग कर ही ले। छोटे-सामान्य झूठ को भी छोड़। हिम्मत रख, तेरा दैनिक काम बिना झूठ के भी चलता रहेगा। परन्तु श्रावक-शिष्य अपनी दुर्बलता अपनी कमजोरी से लाचार है। उसे संसार में रहना है, समाज में अपना स्थान कायम रखना है। वह विनय पूर्वक उत्तर देता है—गुरुदेव!

छोटी न बोलूं केम, म्हारै गृहवासै यूं प्रेम।
विणज सौदा करूं ए, मन में लोभ धरूं ए॥

आपका उपदेश आदरणीय है। परन्तु मैं तो गृहस्थ हूं, संसार के माया जाल में फंसा हुआ हूं। गृहस्थ जन्य प्रेम मोह ममता के अधीन हूं। मुझे वाणिज्य व्यवसाय करना पड़ता है। मेरे हृदय में लोभ लालच भी है। ऐसी हालत में छोटी सामान्य झूठ का त्याग मै कैसे करूं ? फिर अपने संसारिक स्वार्थों की रक्षा के लिये भी झूठ की शरण लेनी पड़ती है। मेरे में इतना आत्मबल नहीं कि हर विकट परिस्थिति का सत्य से मुकाबिला करूं। अतः गुरुदेव! छोटी झूठ का त्याग करने में मैं लाचार हूं। परन्तु—

मोटा पांच प्रकार, तेहनूं करूं परिहार।
व्रत करूं इसो ए, मोसूं निभै जिसो ए॥

मैं गृहस्थ बड़ी झूठ जो पांच प्रकार की है उसका त्याग करने को प्रस्तुत हूं, मेरी इतनी ही सामर्थ्य है। मैं सिर्फ ऐसा ही त्याग करूंगा, नियम लूंगा, जिसको मैं अच्छी तरह से पालन कर सकूं। कृपा करके मुझे बड़ी झूठ के विषय में कुछ विस्तृत रूप से समझावें। गुरुदेव कहते हैं—हे शिष्य! बड़ी झूठ पांच प्रकार की है जैसे—

किन्नाली ग्वाली जाण, तीजी भूमी पिछाण।
थापण मोसो करी ए, कूड़ी साख भरी ए॥

(१) कन्यालीक—कन्या सम्वन्धी। पुत्र पुत्री के सगपण सम्बन्धी

(२) गवालीक—गाय भैंस आदि चौपद सम्बन्धी

(३) भूम्यलीक—भूमि जगह जमीन सम्बन्धी

(४) स्थापन मृषा—अमानत की वस्तु को हजम करने सम्वन्धी

(५) मिथ्या साक्षी—झूठी गवाही साक्षी देने सम्वन्धी

अब गुरुदेव कन्यालीक झूठ के सम्बन्ध में कुछ विस्तार सहित फरमाते हैं—

कन्या रा भेद अपार, करणो सूंस विचार।
वरसां छोटकी ए, तेहने कहणी मोटकी ए॥
गहली गूंगी होय, वले आंख्यां नहीं दोय।
काणी मीमणी ए, आंख्यां चीपणी ए॥
काली कोडाली नार, कानां न सुणै लिगार।
टूंटी पांगली ए, बोलै तोतली ए॥
रोग घणू घट मांय,जीवारी आशा नहीं काय।
वले ज्वर तेजरो ए, आवै एकान्तरो ए॥
वले रोग छै खैन, जीव न पामै चैन।
रक्त पित्त तणी ए, दुरगन्ध अति घणी ए॥
कूबी डूंबी होय, वाडी बांकी जोय।
छोटी बांफणी ए, आंख्यां भामणी ए॥

हीण वंश री होय, तिण री जात न जाणै कोय।
आतो जावै जठे ए, साख न भरै कठै ए॥
रूप रोग न खोड़, वले वरस दे तोड़।
अछतो नहीं भाखणो ए, हुवै जिम दाखणो ए॥
यां बोलां रो स्वाम, आय पड़ै कोई काम।
घर मंडै जठै ए, झूठ न बोलूं तठै ए॥

ऊपर की कुछ पंक्तियों में कवि ने विवाह योग्य परन्तु दोष पूर्ण कन्या का सजीव चित्र अंकित किया है। मालूम होता है कवि ने कन्या में पाये जाने वाले दोषों का एक शब्दकोप पाठकों के सामने पद्यमय सरल भाषा में रख दिया है। भाषा का प्रवाह और शब्दों की सादगी देखिये।

कन्यालीक झूठ अनेक प्रकार की है। अतः खूब सोच समझ कर त्याग करना चाहिये। कन्या की आयु को घटा बढ़ा कर कहना, अथवा यदि कन्या गहली हो, गूंगी हो, अंधी हो, काणी हो, मीमणी आंख वाली हो, चीपणी आंख वाली हो, काली हो, कोड़ाली हो, बहरी हो, टूंटी हो, पांगली हो, तोतली बोली वाली हो, महा रोगिणी हो, जीवन से निराश हो, जीने की आशा छोड़ चुकी हो, एक दिन के अन्तर से आने वाले या तीसरे दिन के अन्तर से आने वाले ज्वर से पीड़ित हो (मलेरिया ज्वर), खैण यानी क्षयरोग (Phthysis) से ग्रसित हो रोग से क्षण भर भी छुटकारा न पाती हो, रक्त पित्त रोग वाली हो, शरीर से अत्यन्त

दुर्गन्ध निकलती हो, कुष्ट (कोढ़) रोग वाली हो, कुवड़ी हो, ठिंगनी हो, तिरछी झांकने वाली हो, वांकी देखने वाली हो, जिसके आंखों के भांफने (Eyebrow) गल कर छोटे हो गये हों, जिसके नेत्र भयानक हों, जो नीच वंश की हो, अथवा जिसकी जांत पांत की कोई जानकारी न हो—इस प्रकार के दोष वाली कन्या के सगपण व विवाह के सम्बन्ध में जहां भी वात चीत की जाती है, कोई "हां" नहीं करता। कोई राजी नहीं होता। इस प्रकार के कन्या के दोषों पर परदा डालना, उन्हें छिपाने की चेष्टा करना कन्यालीक झूठ है। सद् गृहस्थ ऐसे झूठों से वचता है। एवं अपने व्रत का अटूट पालन करता है। रूप, रोग, दोष त्रुटि व उमर आदि के विषय में जो सच्ची वात हो वही वात कहता है। ऐसी विकट परिस्थिति में वह सत्य से मुंह नहीं मोड़ता। वह न तो किसी पर झूठा कलंक लगाता है और न किसी दोष को छिपाता है। विवाह सम्बन्ध स्त्री पुरुष के समूचे जीवन के लिये होता है। जरा सी झूठ के कारण, सम्भव है उनका जीवन दुखदायी वन जावे। अतः कन्यालीक झूठ से हरवक्त वचना चाहिये। पुत्र हो या पुत्री सगपण करते समय सच्ची वात कह देनी चाहिये

श्रावक-शिष्य कहता है—गुरुदेव! कन्यालीक झूठ के सम्बन्ध में मैंने जो त्याग किया, नियम लिया उसे मैं पालन करूंगा परन्तु—

हांसी मसकरी काज , म्हारे सुंस नहीं मुनिराज ।
पालतां दोहिलो ए , नहीं मोनै सोहिलो ए ॥
इत्यादिक परमाण , मैं कीधा पचक्खाण ।
इमहिज पुरुष तणी ए , कन्या ज्युं भापणी ए ॥

हंसी मजाक में झूठ बोलने का त्याग मैं नहीं करता क्योंकि मजाक के समय मैं प्रत्येक शब्द को नाप तौल कर तो बोलता नहीं, हर प्रकार के शब्द मुंह से निकल जाया करते हैं। अतः हंसी मसखरी में कन्यालीक झूठ का त्याग मेरे से पालन नहीं हो सकता।

इस प्रकार से कन्यालीक झूठ के सम्बन्ध में मैंने त्याग किया, पचक्खाण किया, नियम लिया।

कन्या की उमर, रूप, जाति, गुण आदि के विषय में जैसे झूठ नहीं बोलना वैसे ही पुत्र के सम्बन्ध में भी झूठ न बोलना चाहिये। हर हालत में सच्ची बात कहनी चाहिये। दो प्राणियों का पति पत्नी के रूप में वैवाहिक सम्बन्ध हो रहा है, वे जीवन पर्यन्त साथ रह कर एक बड़ी जिम्मेवारी संभालने का प्रण कर रहे हैं, ऐसी हालत में एक छोटी सी झूठ महा अनर्थ का कारण बन सकती है। अतः व्रत धारण करने वाले श्रावक को तो ऐसे प्रसंग में कभी झूठ न बोलना चाहिये।

गवालीक झूठ के सम्बन्ध में कवि कहता है—

इम ही गुवाली जाण, दूध तणो परमाण।
वैंत न उचारणो ए, हुवे ज्यूं दाखणो ए॥

अपने पालतू गाय भैंस आदि को बेचने के समय उनके दूध आदि के सम्बन्ध में या उनके ब्यावत के समय को उनकी उम्र आदि को कम या अधिक बताना गवालीक झूठ है। श्रावक को ऐसी झूठ से बचना चाहिये, और मर्याद करनी चाहिये। उसे सच्ची बात कहनी चाहिये। थोड़े से स्वार्थ साधन के लिये झूठ की शरण लेनी उचित नहीं।

तीसरी बड़ी झूठ- भूम्यलीक के सम्बन्ध में कवि के शब्द हैं—

भूमाली घर नैं हाट, बोलै वाद नै घाट।
धरती बावण तणी ए, इत्यादिक घणी ए॥

जगह जमीन, बाग बगीचा, खेत, घर दुकान मकान, हाट आदि को बेचते व खरीदते समय इनके सम्बन्ध में झूठ बोलना भूम्यलीक झूठ कहा जाता है। श्रावक को यह देखना होगा कि इस विषय में वह कहां तक सत्य की मर्याद रख सकेगा। अपनी सामर्थ्य अनुसार झूठ बोलने का त्याग करना चाहिये।

चौथी झूठ—स्थापन मृषा—के सम्बन्ध में श्रावक-शिष्य कहता है कि गुरुदेव!

कोई धन सौंपे आय, हूं राखूं घर मांय।
आय ने मांगे जरां ए, नटूं नहीं तरां ए॥

मांगै धणी जो आय, बाप भाई नैं माय ।
बोरो आय अड़ै ए, राजा रोकै जरां ए ॥
जब झूठ बोलण रो नेम, राखूं व्रत सूं प्रेम ।
चोखो पालस्यूं ए, दोषण टालस्यूं ए ॥
मांगै अनेरो आय, तो नट जाऊं मुनिराय ।
सूंस नहीं कियो ए, लोभे चित्त दियो ए ॥

अमानत में रखी हुयी किसी वस्तु को हज़म करने के लिये मैं कभी झूठ न बोलूंगा। कोई व्यक्ति यदि मुझे अपना धन सौंप जाता है, तो उसके मांगने पर मैं उसे वापिस लौटा दूंगा, किसी हालत में मैं इन्कार न करूंगा। यदि उसका भाई मा बाप या पावनेदार या राजा भी उस धन को मांगे तो मैं इन्कार करने वाला नहीं। मैं तो अपने व्रत त्याग नियम पर प्रेम रखते हुए उसे दृढ़ता पूर्वक पालन करूंगा। मैं अपने नियम को दोष रहित पालन करते हुए अच्छी तरह से निभाऊंगा। परन्तु मेरे में अभीतक लोभ वृत्ति एवं कमजोरी बनी है। मैं इस प्रसंग में एक छूट रखूंगा। यदि कोई दूसरा व्यक्ति, जिसका इस धन से कोई सम्बन्ध नहीं, आकर वह धन मांगता है, उसे हड़पने की नीयत से मांगता है, तो ऐसे मौके पर मैं इन्कार कर सकूंगा। मूल स्वामी के अतिरिक्त मैं उस धन को दूसरे को क्यों दूं ?

पांचवी झूठ-मिथ्या साक्षी-के सम्बन्ध में श्रावक-शिष्य कहता है—

साख भरावै मोय, झूठ न बोलूं कोय।
ते पिण मोटकी ए, नहीं छोटकी ए॥
जो हूं बोलूं वाय, घर पैला रो जाय।
भाषा टालणी ए, पाछै बोलणीं ए॥

असत्य साक्षी का मैं त्याग करता हूं परन्तु छूट रख कर। असत्य साक्षी दो प्रकार की है—छोटी और बड़ी। बड़ी असत्य साक्षी वह है, जो कानूनी दृष्टि से दण्डनीय हो या जिसके कारण लोगों में निन्दा हो। मैं ऐसी मिथ्या साक्षी से बचूंगा। छोटी असत्य साक्षी वह है, जिससे न तो कोई सजा हो और न ऐसी कोई बदनामी हो। मैं गृहस्थ हूं, कमजोर हूं, ऐसी छोटी झूठ का त्याग तो मैं कर नहीं सकता। अतः गवाही देते समय मैं प्रत्येक शब्द नाप तौल कर बोलूंगा। मैं ऐसी बड़ी झूठ न बोलूंगा जिस से किसी पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़े, जिससे भयंकर अनर्थ होने की सम्भावना हो। मैं ऐसी बात न बोलूंगा, जिससे दूसरे का घर व परिवार बरबाद हो जाय। शब्दों पर पूरा ख्याल रखते हुए उपयोग सहित मैं बोलूंगा।

कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जइ वा भया।
मुसं न वयई जो उ, तं वयं बूम माहणं॥

उत्तरा० –२५–२४

क्रोध वश, लोभ वश, हास्य और भय के वश भी जो झूठ नहीं बोलता, असत्य की शरण नहीं लेता वही ब्राह्मण है, श्रेष्ठ

मानव है। हमारा आदर्श है। आदर्श गृहस्थ को भी इसी आदर्श तक पहुंचना है।

आदर्श गृहस्थ का अन्तिम ध्येय है—सम्पूर्ण सत्य का अखंड पालन। इसी की ओर वह धीरे धीरे आगे बढ़ता है। अपने जीवन की सफलता वह उसी दिन समझेगा, जिस दिन सम्पूर्ण सत्य का पालन करते हुए तुच्छ से तुच्छ झूठ से भी अपने आप को बचा सकेगा।

करै झूठ रा भेद, त्यागै आण उमेद।
मनोरथ जद फलै ए, झूठ छोटो टलै ए॥
करण जोग घाली एम, करै झूठ रा नेम।
व्रत करै इसो ए, पोतै निभै जिसो ए॥

इस प्रकार से झूठ के भिन्न भिन्न भेदों को जान कर समझ कर श्रावक उनको निन्दनीय समझते हुए त्याग करता है। बड़ी उमंग उत्साह व उम्मेद से वह झूठ बोलने का नियम लेता है। परन्तु श्रावक का मनोरथ तो तभी सफल होगा, जब वह छोटी से छोटी झूठ को भी छोड़ सकेगा। परन्तु वर्तमान में अपनी शक्ति और सामर्थ्य अनुसार वह करण एवं योग की मर्याद रखते हुए नियम लेता है। मानव को अपनी शक्ति का ख्याल रखते हुए धीरे धीरे त्याग की ओर अग्रसर होना चाहिए, क्योंकि—

सच्चं जसस्स मूलं, सच्चं विस्सास कारणं परमं ।
सच्चं सग्ग द्दारं, सच्चं सिद्धी इ सोपाणं ।।

सत्य यश कीर्ति का मूल कारण है। सत्य विश्वास प्राप्त करने का मुख्य साधन है। सत्य स्वर्ग का प्रवेश द्वार है और सत्य ही सिद्धि का सोपान है।

व्रत तीसरा

अस्तेय अणुव्रत

आज का मानव प्राण को हथेली में रख कर धन कमाने की चेष्टा करता है। उसके लिये धन प्राण से प्रिय है। ऐसे प्राण प्रिय धन का जो अपहरण करता है, चुराता है वह प्राण लेने वाले से कहीं अधिक खतरनाक है।

मानव ने कड़ी मेहनत की। खून पसीना एक किया। भूखा प्यासा और नंगा रह कर धन जुटाया। वह बुढ़ापे में आराम से जिन्दगी बिताना चाहता था। परन्तु चोर और डकैतों ने उसके घर पर छापा मारा। सारा धन लूट लिया। यदि डकैत उसके प्राण ले लेते, तो उसे थोड़ी देर वास्ते मामूली तकलीफ होती परन्तु अब वह निराश है। उसका हृदय अपने प्राणप्रिय धन के लिये जल रहा है। वह डकैतों को श्राप देता है। गाली निकालता है। इसके आगे उसका जोर नहीं। प्राण तो उसके निकलते नहीं परन्तु वह कुढ़ कुढ़ कर धीरे धीरे मर रहा है।

चोरी को प्रत्येक महात्मा ने निन्दनीय बताया है। जैन दर्शन में इस विषय में बहुत कुछ कहा गया है।

चित्त मंत्त मचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं।
दंत सोहण मित्तं पि, उग्गहं सि अजाइया ॥

तं अप्पणा न गिएहंति, नो ऽवि गिएहाव ए।
अन्नं वा गिण्हमाणं पि, नाणु जाणंति संजया॥

दशवैकालिक ६-१३-१४

सचेतन पदार्थ हो या अचेतन पदार्थ हो। अल्प मूल्य वाला हो या वहु मूल्य हो, यहाँ तक कि दांत कुचरने का तिनका भी क्यों न हो, स्वामी से मांगे विना आदर्श जैन-साधु किसी भी वस्तु को न स्वयं ग्रहण करता है और न किसी को ग्रहण करने के लिये प्रोत्साहन देता है और न ऐसे काम का समर्थन ही करता है। ऐसा है जैन आदर्श। छोटी से छोटी और तुच्छ से तुच्छ वस्तु को भी विना उस चीज के मालिक की इजाजत के उठा लेना चोरी है। तीसरे अणुव्रत में श्रावक चोरी के सम्बन्ध में कुछ नियमों को ग्रहण करता है।

तीजो व्रत श्रावक तणो, करै अदत्त रा त्याग।
मन में समता आण ने, चोढ़ै भाव वैराग॥

श्रावक का तीसरा अणुव्रत है अदत्त (विना दी हुई वस्तु लेने का) का त्याग अर्थात् चोरी करने का त्याग। मन में सन्तोष व समता रखते हुए अपने आप को वैराग्य की तरफ अग्रसर करे। लोभ की मात्रा अधिक होने से मानव के मन में चोरी की भावना जाग्रत होती है। अतः सन्तोष को अपना कर लोभ की मात्रा घटाने की चेष्टा करनी चाहिये।

इह लोके जस अति घणो, परलोके सुख पाय।
भाव सहित आराधियां, जनम मरण मिट जाय ॥

जो मानव चोरी का त्याग करता है, उसे इस लोक में यश व कीर्ति मिलती है और परलोक में सुख। इस अचौर्य व्रत को वैराग्य भाव से पालन करने से जन्म मरण के चक्कर से मानव को छुटकारा मिल जाता है।

चोरी करै ते मानवी, गया जमारो हार।
मनुष्य तणो भव खोय ने, नरकां खावै मार ॥

चोरी करने वाले मानव का मानव-जन्म व्यर्थ है। उसने सर्व श्रेष्ठ मानव भव को व्यर्थ में बरबाद कर दिया। अपने कुकृत्यों का फल उसे नरक में भोगना ही पड़ता है।

आज मानव अंधा है। व्यापार में चोरी किए बिना उसका काम नहीं चलता। इस मंहगी के जमाने में ब्लैक मारकेट तो उसका अधिकार है। सरकार नये नये कानून कायदों द्वारा ब्लैक को रोकने की चेष्टा करती है, तो व्यापारी नये नये तरीके निकाल कर कानून के पंजे से बचने की चेष्टा करता है। उसे धन चाहिए, पैसे चाहिए। साधारण जनता दुःख पाती है तो पाने दे। हमें उससे क्या? हमारा काम है व्यापार करना, धन कमाना, मौज़ करना। सभी ऐसा करते हैं क्या छोटे क्या बड़े? फिर किसे चोर कहें, किसे साहूकार? एक तवे की रोटी क्या मोटी क्या छोटी?

आज सब चोर बजारी में लगे हैं। अतः अशान्ति है दुःख है। अविश्वास है। पिता पुत्र का विश्वास नहीं करता। भाई भाई को सन्देह की दृष्टि से देखता है। यदि मानव चाहे तो इस विश्व-व्यापी अशान्ति को मिटा सकता है। सन्तोष वृत्ति अपना कर मानव विश्व में शान्ति ला सकता है दूसरों का हक्क छीनना सबसे बड़ा गुनाह है। चोरी करने वाला, ब्लैक मारकेट करने वाला मानव साधारण जनता के हक्कों पर कुठारा-घात करता है। लोगों को धोखा देकर अपना काम बनाता है।

श्रावक का तीसरा व्रत ऐसी चोरी को रोकने का सर्वोत्तम साधन है। सरकारी कानून कायदों से चोरी नहीं रुका करती। वह तो नये नये रूप धारण करती है। चोरी रुकती है मानव के हृदय परिवर्तन से। हृदय परिवर्तन का सब से अच्छा साधन है अचौर्य अणुव्रत।

तीजो व्रत छै एम, करै अदत्त रो नेम।
न करै मोटकी ए, बले छोटकी ए॥

अदत्त—चोरी करने का नियम करना, त्याग करना श्रावक का तीसरा अणुव्रत है। चोरी दो प्रकार की है—एक मोटी दूसरी छोटी। दोनों प्रकार की चोरी त्याज्य है।

श्रावक-शिष्य अपनी कमजोरी जानते हुए कहता है गुरुदेव! मुझ में इतनी शक्ति नहीं कि मैं छोटी छोटी चोरी का त्याग ले सकूं।

न्हानी किम त्यागूं स्वाम, म्हारे घास इंधण रो काम।
खिण खिण किण नें कहूं ए, किहां किहां आज्ञा लेऊँ ए॥

छोटी चोरी का त्याग मैं कैसे करूं? मैं परिवार वाला हूं। खेती करता हूं। घास लकड़ी आदि लाने का काम भी करना पड़ता है। प्रत्येक क्षण में मैं किस किस की आज्ञा लूं? असली मालिक की इजाजत लूं? मैं ऐसा त्याग कर नहीं सकता। लेकिन—

न्हानी त्यागै ते धन्य, पिण म्हारो नहीं मन्न।
चित्त चोखो नहीं ए, कर्म घणा सही ए॥

जो मानव ऐसी छोटी चोरी का भी त्याग करते हैं, जो विना मालिक की इजाज़त के एक छोटा तिनका भी उठाते नहीं वे धन्य है। मै उनको श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूं *। परन्तु गुरुदेव! मेरा चित्त चंचल है। मेरे अभीतक कर्मों का वन्ध अति अधिक है। अतः ऐसा त्याग मेरे से निभेगा नहीं। मेरी हार्दिक इच्छा

---

* चित्त मन्तमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं।
न गिण्हाइ अदत्तं जे, तं वयं बूम माहणं॥

उत्तराध्ययन २५-२५

संसार में जितने भी सचित्त अचित्त अल्प मूल्य के व वहु मूल्य पदार्थ हैं उनको जो मानव विना दिये, विना असली हकदार की आज्ञा के ग्रहण नहीं करता वही ब्राह्मण है। आदर्श है।

है मैं आत्म सुधार करूं। कुछ त्याग करूं। कुछ नियम लूं। चोरी आत्म पतन का मुख्य कारण है।

सांधो दे गांठड़ी छोड़, धाड़ो करि तालो तोड़।
वस्तु मोटी अछै ए, धणी जाण्यां पछै ए॥

किसी व्यक्ति को भांसा पट्टी, धोखा, विश्वासघात, जालसाजी, बेईमानी द्वारा ठग कर व सेंध लगा कर, व दिवाल तोड़ फोड़ कर, व किसी की जमीन में छिपायी हुई वस्तु को खोद कर, किसी की गंठड़ी सिन्दूक, ट्रंक आदि खोल कर या उठा कर, लूट कर, डाका डाल कर, ताले को तोड़ कर व ताले के दूसरी चावी लगा कर व असली मालिक को जानते हुए भी उसकी गिरी हुयी वस्तु को उठाकर अपने कब्जे में कर लेना—इस प्रकार की बड़ी चोरियाँ करने का मैं त्याग करता हूं। ये सब काम घृणित है। आज के सभ्य जगत में किसी की वस्तु को सफायी से अपना लेना साधारण-सी घटना गिनी जाती है। परन्तु इस प्रकार की आदतों से मानव अपने आप को गिराने लगता है। वह अपने स्वार्थ साधन के लिये नीच से नीच कर्म करने में भी संकोच नहीं करता। गुरुदेव! मैं तो ऊँचा उठना चाहता हूं। अतः मैं—

इसा अदत्तरा त्याग, मैं पचख्या आंण वैराग।
ते पिण पर तणी ए, नहीं घर भणी ए॥

इस प्रकार की घृणित चोरियों का वैराग्य सहित त्याग करता हूं। श्रावक ऐसा त्याग करते समय पुनः अपनी कमजोरी महसूस

करता है और कहता है—ऐसा त्याग मैं सिर्फ दूसरों की वस्तुओं की चोरी के सम्बन्ध में ही कर सकता हूं, मेरे परिवार घर वालों की वस्तुओं की चोरी के सम्बन्ध में नहीं। क्योंकि—

म्हारा कुटुम्यादिक में माल, मो में पड़ै हवाल।
भीड़ घणी सही ए, घर में धन नहीं ए॥
जब तालो ल्यूं तोड़, वले गांठड़ी छोड़।
सांतो दे चोर स्यूं ए, खोस ल्यूं जोर स्यूं ए॥
इतरा मोने आगार, ते नरक तणा दातार।
रमणी वस पड्यो ए, जंजीर जूड्यो ए॥

यदि मेरे परिवार वाले मालदार हो, धनी हो, पैसे वाले हो, चैन की वंसी वजाते हो और मेरा बुरा हाल हो, तंगी हो, रोटी कपड़े के लाले पड़े हो, नौकरी चाकरी द्वारा पेट भर सकने की भी कोई गुंजाइश न हो—ऐसी विकट परिस्थिति में उन धनी स्व-कुटुम्बियों का ताला तोड़ कर, ट्रंक वक्स गंठड़ी तिजोरी आदि खोल कर, सेंध लगा कर जबरदस्ती व बलपूर्वक उनका धन हथियाने का, चोरी करने का, छीन सकने का मैं आगार रखूंगा। मैं जानता हूं यह छूट महा घृणित है, नरक ले जाने वाली है, आत्म पतन का कारण है परन्तु करूं क्या? लाचार हूं, मजबूर हूं। स्त्री के मोहजाल में फंसा हूं। गृहस्थी की जंजीर से जकड़ा हूं। धन बिना मेरा काम चलता नहीं। भीख मांगने में मुझे शर्म लगती है। अच्छे सम्पन्न परिवार का व्यक्ति भीख मांगे

भी कैसे ? लाचार हो कर यदि मुझे यह काम करना पड़े, तो मैं इसका आगार रखता हूं।

सु श्रावक ऐसा आगार साधारणतया नहीं रखता परन्तु यह तो अपनी शक्ति और सामर्थ्य पर निर्भर करता है। जितनी मात्रा में मानव में वैराग्य वृत्ति व संसार के प्रति उदासीनता होगी वह उतने ही अंश तक त्याग कर सकता है। त्याग समूचे जीवन पर्यन्त किया जाता है। अतः अपनी शक्ति को नाप तोल कर ही त्याग की ओर कदम बढ़ाना ठीक रहता है।

आज के सभ्य जगत में चोरी भयंकर अपराध है। कानून से दण्डनीय है।

राजा लेवे डंड, होय लोक में भंड।
चोरी नहीं करूं ए, इसो व्रत धरूं ए॥

चोरी करने वाले की दुनियां में बदनामी होती है और कानून भी उसे सजा देता है। चोरी घृणित कर्म है। अतः श्रावक होने के नाते मुझे चोरी करने का त्याग तो करना ही चाहिए। यथा शक्ति अचौर्य व्रत को धारण करना चाहिए।

ईस्वी सन् १९३९ में विश्व व्यापी युद्ध की भयंकर ज्वाला दूर दूर तक फैली। आज का ब्लैक मारकेट—चोर बजारी-इसी युद्ध की एक देन है। सभी राष्ट्र इस चोर-बजारी को रोकने में व्यस्त है परन्तु यह रुकती नहीं। इसे रोकने के लिये गवर्नमेंट नये नये कानून बनाती है, तो व्यापारी कानून से बचने के

उपाय भी तुरन्त खोज़ निकालते हैं। चोर बजारी तभी रुकेगी जब लोगों का हृदय परिवर्तन होगा। यदि मानव जैन-दर्शन के अचौर्य्य व्रत की उपयोगिता समझे, चोरी को महा घृणित काम समझे, तो दुनियां में चोर बजारी रुक सकती है। जान बूझ कर चोरी का माल खरीदना, ग्रहण करना मानव के पतन का कारण है। लोभ वश मानव सस्ती वस्तु खरीद लिया करता है परन्तु यह काम चोरी में ही शुमार है। इस से बचना चाहिये। कानून की दृष्टि में चोरी करने वाला यदि अपराधी है, तो चोरी का माल रखने वाला भी कम अपराधी नहीं। जिसके घर में चोरी का माल बरामद होता है पुलिस उसे पकड़ कर ले जाती है। व्रत-धारी श्रावक को चोरी का सस्ता माल खरीदने से बचना चाहिये।

किसी को चोरी करने में सहायता देना, प्रेरणा करना उसे प्रोत्साहन देना, आर्थिक मदद देना, घूस देना, झूठे कागजात बनाकर चोरी छिपाने की चेष्टा करना, चोर को अपने यहां आश्रय देना—आदि जितने काम हैं, सुश्रावक को इन सब से दूर रहना चाहिये। चोर से किसी भी प्रकार का सम्पर्क नहीं रखना चाहिये।

राज्य के प्रचलित नियम कानून के विरुद्ध काम करना अनुचित है। जगात, सेल टैक्स, इन्कम टैक्स, म्युन्सीपल चुंगी, आदि बचाने के लिये जाली कागजात बनाना, सरकारी अफसरों की आंखो में धूल झोंकने की चेष्टा करना एक प्रकार की चोरी

है। आज का व्यापारी इस चोरी की कला में निपुण है, सिद्ध-हस्त है। सद् गृहस्थ को इन से वचने की चेष्टा करनी चाहिये।

आज के सभ्य-समाज में सफाई से ज़ुआचोरी करना एक कला मानी जाती है। शीशी में १४ औंस माल भरती कर उसे १ पौंड (१६ औंस) वताना एक साधारण-सी वात है। ऐसा किये विना व्यापारिक-कम्पोटीशन में निर्वाह कैसे हो? व्यापार में जव सभी इस प्रकार की ज़ुआचोरी वेईमानी करते हैं, तो हमें भी अपना व्यापार चालू रखने के लिये ऐसा करना ही पड़ता है। गल्ले अनाज का व्यापारी पंसेरी (पांच सेर) में एक पाव का फर्क डालना तो साधारण-सी वात समझता है। वाजार में अनाज तुलवा कर लाये, घर पर उसे फिर तोला, तो काफी फर्क मिला। यह दैनिक घटना है। सुप्रसिद्ध, सुप्रतिष्ठित, सम्माननीय करोड़पति सेठ साहव को ज़ुआचोर कहने की भी हिम्मत नहीं। मन मसोस कर रह जाना पड़ता है। और इस नतीजे पर पहुंचते हैं हिन्दुस्तानी में माल खरीदते समय एक सेर का अर्थ है चौदह छटांक और वेचते समय सवा सेर का अर्थ है एक सेर। हमारा प्यारा देश भारत, आध्यात्मिक जगत में अपने को सर्व श्रेष्ठ मानता है और उस देश के नागरिक ऐसे घृणित काम करना एक साधारण-सी वात समझते हैं। यह तो व्यापार का नियम है। क्या ऐसे व्यापार से हम भारत के नागरिक दुनियां में अपनी साख कायम कर सकेंगे? आश्चर्य तो इस वात का है कि भगवान् महावीर के अनुयायी जैन-श्रावक कहलाने वाले

व्यक्ति भी व्यापार की ओट में ऐसे घृणित काम करने में सब से आगे रहने की चेष्टा करते हैं। कम तोलना, कम नापना, वजन को घटा बढ़ा कर बताना एक प्रकार की चोरी है, बेई-मानी है। विश्वासघात है। जो व्यापारी ऐसा करता है उसकी दुनियाँ में साख नहीं रहती। एक अच्छे श्रावक को तो कम से कम ऐसे कामों से बचना चाहिये।

घी में काफी तेजी आयी। व्यापारियों की बन आयी। सांप की चर्बी घी में मिलायी। लोगों ने ऐसे घी को खाया। विज्ञान ने चमत्कार दिखाया। वीजीटेबल वनस्पति घी का आविष्कार हुआ। इसे असली घी में मिलाया। लोगों को धोखा दिया अपना काम बनाया। आज बड़े बड़े नगरों में शुद्ध घी मिलना दुर्लभ है। शुद्ध घी में वनस्पति मिला मिला कर बेचना व्यापारी अपना हक समझता है। लोगों का स्वास्थ्य खराब होता है, कंठ में जलन होती है तो होने दो, व्यापारी को तो घी बेचने से मतलब है। असली गनेश मार्का घी, शंकर मार्का घी ,पार्वती ट्रेड मार्का घी आदि सुन्दर सुन्दर नाम रख कर बड़े बड़े विज्ञापनों के बल पर अपना घी बेचना तो हमारा अधिकार है। हम तो हमारे घी से लोगों का स्वास्थ्य सुधारना चाहते हैं। लोग चकमें में आ जाते हैं और ऐसे ऐसे मिलावटी घी का उपयोग कर संसार से जल्दी ही टिकट कटा लेते हैं। आटा में चिकना पत्थर मिलाया जाता है। दूध में पानी मिलया जाता है या पानी में दूध मिलाया जाता है। मिरच में

लाल रंग, दाल में रंग की पालिश, सेके हुए चने में केशरिया रंग की पालिश, हल्दी में पीला रंग, कत्थे में ब्राउन रंग सभी खाने पीने की चीजों में तो रंग है, जहरीला रंग है। आज का व्यापार यही तो सिखाता है। शहरी जीवन में खाने पीने की चीजों में सुन्दरता रहनी चाहिये, सफाई चाहिये, पालिश चाहिये चमक दमक चाहिये। व्यापारी शहरी ग्राहक की इस कमजोरी को समझता है और फायदा उठाता है। कुलफी वर्फ में चीनी के स्थान में सेकरीन(Sacharine) मिलायी जाती है। चाय में सेकरीन है। शर्वत में सेकरीन है। पान में सेकरीन है, सुगन्धित सुपारी में सेकरीन है। शहर में विना मिलावट कोई भी चीज मिलना मुश्किल है। व्यापारी मिलावटी चीज को असली कह कर वेचना अपना कर्तव्य समझता है।

कहाँ तक गिनाया जाय, आज का शहरी सभ्य व्यापारी ग्राहकों को फंसाने की कला में नित्य नये नये आविष्कार किया करता है। और बड़े बड़े समाचार-पत्रों में अपनी वस्तु का विज्ञापन करता है। लोग विज्ञापन को सच्चा समझ कर फंस जाते हैं। एक अच्छा श्रावक ऐसी चालाकी द्वारा अपना व्यापार नहीं चमकाता। वह तो ग्राहकों को संतुष्ट रखते हुए अपना गुजारा करता है। अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार वह इन कामों से दूर रहता है। ईमानदारी के साथ अपना पेशा चलाता है। वह गुरुदेव से प्रार्थना करता है—

इसो व्रत मुनिराय, मोने द्यो पचखाय।
जीऊं जहाँ भणी ए, व्रत चोरी तणी ए॥

गुरु देव! मैं उपरोक्त प्रकार की चोरियों से बचना चाहता हूं! मैं जीवन पर्यन्त ऐसी चोरियों का त्याग करता हूं। अचौर्य अणुव्रत अंगीकार करता हूं।

चोरी महा नीच कर्म है। घृणित कार्य है। गुरु उपदेश देते हुए कहते हैं—

चोरी कर्म चण्डाल, तिण थी पड़ै हवाल।
दुःख नरकां तणां ए, सहै अति घणा ए॥

चोरी घृणित कर्म है। चण्डाल कर्म है। इसका फल बड़ा बुरा होता है। मृत्यु होने पर भी चोर का पिण्ड नहीं छूटता। नरक गति में उसे जाना पड़ता है और भयानक दुःख सहन करने पड़ते हैं। इतना ही नहीं, चोर को मृत्यु के बाद निगोद के दुःख भी सहने पड़ते हैं।

चोरी ले पर माल, तिण में पड़ै हवाल।
नरक निगोद तणां ए, दुःख होवै घणा ए॥

दूसरों का धन हड़पने वाले व्यक्ति की बड़ी बुरी गति होती है। निगोद में भी उसे जन्म लेना पड़ता है। नरक की तरह निगोद के दुःखों की मात्रा भी कम नहीं है।

मानव खून पसीना एक करके धन संचय करता है। धन संचय करने में वह अपना जीवन बिता देता है। ऐसा धन

प्राणों से भी प्यारा माना जाता है। ऐसे प्राण प्रिय धन को अगर कोई चुराता है, तो उसे मृत्यु से भी भयंकर कष्ट होता है। मृत्यु समय का दुःख तो थोड़ी देर के लिये होता है। परन्तु धन चोरी हो जाने पर तो उसके हृदय में एक प्रकार की ज्वाला जलन उत्पन्न होती है और वह अपने प्रिय शरीर को इस ज्वाला को समर्पित कर देता है। उसका समूचा जीवन अशान्त और वेदनामय वन जाता है। अतः जो चोरी करता है, दूसरे के धन पर हाथ साफ करता है, वह वड़ा भयंकर मानव है और मृत्यु के पश्चात् नरक गति में उसे अतिथि वन कर रहना पड़ता है। ऐसे मेहमान अतिथि की कैसी खातिरी होती हैं, वह तो अनुभवी ही वता सकता है। गुरुदेव फरमाते हैं—

परधन लेवै ताह, देवै पैलां रे दाह।
ते नरक ना पाहुणां ए, जात लजावणा ए॥

जो मानव चोरी करके दूसरों के हृदय को जलाते हैं वे अपनी जाति के कलंक हैं। समूचा समाज ऐसे मानवों के कारण लज्जित होता है।

यह तो हुई मृत्यु के वाद की हालत। इस जन्म में चोरी करने वाले की क्या गति होती है यह भी तो देखें—

इह लोके उदय हुवे पाप, (तो) दुःख भुगते आपो आप।
मार घणी पड़ै ए, विण आई मरै ए॥

तिणरा काटै हाथ ने पांव, वलि शूली देवै चढ़ाय।
नकटो बूचो करै ए, वले मार घणी पड़ै ए॥

चोरी सदा छिपती नहीं। कभी न कभी चोर पकड़ा ही जाता है। यदि चोर पकड़ा जाता है तो समझ लेना चाहिये कि बिना बुलाये ही मौत आ गयी। लोग हाथ पैर जूते थप्पड़ मूकी, लाठी आदि से चोर महाशय की धड़ा-धड़ खातिरी करते हैं। खून बहने लगता है। शरीर में सोजन आ जाती है। तब कहीं जाकर लोग उस चोर का पिण्ड छोड़ते हैं। बात यहीं खत्म नहीं होती। वह पुलिस के हवाले कर दिया जाता है। प्रचलित कानून के अनुसार उसे दण्ड दिया जाता है। पुराने जमाने में चोर के हाथ पैर काट लिए जाते थे ताकि वह फिर कभी चोरी न कर सके। शूली पर चढ़ाने का भी रिवाज़ था। नाक व कान भी काट लिए जाते थे ताकि लोग उसे देखते ही सावधान हो जाय।

कभी कभी साधारण जनता चोर पर इतना जबर्दस्त आघात करती है कि उसका प्राणान्त भी हो जाया करता है। चोर के मृतक-शरीर को अपमानित करने के हेतु लोग उस लाश को गढ़े में खाई में व गन्दे नाले में फेंक दिया करते हैं। यहाँ कुत्ते व कौवे आदि उस मृतक-लाश को विकृत कर देते हैं। ऐसा हाल होता है चोर का। कवि के शब्द देखिये—

मूंआ पछै चोर री काय, नाखै खाई रे मांय।
तिहां कुत्ता आयने ए, बिगाड़ै काय ने ए॥
वले कागा चांच सूं मार, तिणरा डैयां काढ़ै बार।
शरीर तिण तणूं ए, विपरीत दीखै घणूं ए॥

नाले में पड़ी हुई मृतक-लाश को कुत्ते बिगाड़ देते हैं। कौवे अपनी चोंच से लाश के दोनों नेत्र निकाल लेते हैं। लाश विकृत हो जाती है। बड़ी भयंकर दीखती है। ऐसी विकृत लाश को देख कर चोर के माता पिता के हृदय पर क्या बीतती है यह भी कवि के शब्दों में देखें—

तिण रा देखै मात ने तात, मन में घणा सिधात।
इण चोरी करी पर तणी ए, लजाया हम भणी ए॥
लोक करै चोर री बात, ते सुणी मात ने तात।
बोलै रोवंता ए, नीचो जोवता ए॥

विकृत-शव को देख कर चोर के मा बाप मन में बहुत पछताते हैं और कहते हैं हमारे पुत्र ने चोरी करके हमें लज्जित किया है। हमारे कुल में कलंक लगाया है। साधारण जनता जब उनके सामने चोर सम्बन्धी बात करती है, तो वे बिचारे शर्म के मारे अपना मुंह नीचा कर लेते हैं, रोने लगते हैं।

इतना उपदेश सुनाने के पश्चात् गुरुदेव कहते हैं कि चोरी से

मानव को इतने अधिक दुःख होते हैं कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

चोरी सुं दुःख अनन्त, तिणरो कहतां न आवै अन्त।
चिहुं गति भटकावणो ए, (ते) पाप चोरी तणो ए॥
. सा सम्भल नर नार, चोरी न करो लिगार।
समता रस आण ने ए, त्यागो जाण ने ए॥

मानव-जीवन में चोरी अनन्त दुःखों का कारण बनती है। यह चार गति में भ्रमण करने में मुख्य पार्ट अदा करती है। अतः हे स्त्री पुरुषों! अपने आप को सम्भालो। अपनी असलियत को पहचानो। सन्तोषवृत्ति को अपनावो। अच्छी तरह से सुन कर, सोच समझ कर चोरी का त्याग करो। अपनी शक्ति और सामर्थ्य को ध्यान में रखते हुए व्यापार आदि में चोरी सम्बन्धी नियम लो। कुछ तो आत्मा को ऊँची उठाओ। दुनियां में ऐसे व्यक्ति भी अनेक हैं जो चोरी का सम्पूर्ण रूप से भी त्याग कर लिया करते हैं।

केई आणी मन वैराग, सर्व थकी दे त्याग।
करण जोगां करी ए, मन समता धरी ए॥

मानव मन में वैराग्य एवं सन्तोष वृत्ति की भावना उत्पन्न होने से चोरी का सम्पूर्ण रूप से त्याग कर दिया जाता है। त्याग में करण एवं योग का बड़ा महत्त्व है। सम्पूर्ण त्याग को जैन

दर्शन "नव कोटि" त्याग कहता है। सम्पूर्ण रूप से अचौर्यव्रत तभी धारण किया जा सकता है जब कि मन में सन्तोष वृत्ति को सर्वोच्च स्थान प्राप्त हो और वैराग्य की प्रबल भावना हो।

त्याग करना या न करना यह तो मानव के आत्म-बल पर निर्भर करता है। कमजोर मानव त्याग के विकट पथ पर चल नहीं सकते। अतः त्याग करते समय खूब सावधानी रखनी चाहिए। त्याग का भंग बड़ा जघन्य अपराध है।

कोई सोंस करी दे भांग, तिणरा घणा निकलसी सांग।
महा पापी मोटको ए, कर्म दियो धक्को ए॥

जो व्यक्ति त्याग को भंग करते हैं वे महा पापी हैं। ऐसे व्यक्तियों में और भी अनेक प्रकार की त्रुटियां निकलती हैं। कर्म बड़ा जबर्दस्त है। मानव को जब कर्म धक्का देता है, तो उसका पतन अवश्यम्भावी है। वह त्याग पालन कर नहीं सकता, वह धक्के के सामने टिक नहीं सकता। वह संसार में भटकता रहता है। इसके विपरीत—

चोखा पालै जे सोंस, त्यांरी पूरीजै मन री होंस।
जासी देवलोक में ए, कोई जासी मोक्ष में ए॥

जो मानव अपने नियमों का सच्चाई के साथ पालन करता है उसकी मनोकामना पूर्ण होती है। उसका जीवन सफल होता है। त्याग को पूर्ण रूप से पालन करने वाला व्यक्ति या तो देवलोक में जाता है या मोक्ष में।

व्रत चौथा

ब्रह्मचर्य अणुव्रत

तवेसु वा उत्तम बंभचेरं

सब प्रकार के तपो में ब्रह्मचर्य सर्वोत्कृष्ट तप है।

साधारणतया ब्रह्मचर्य * का अर्थ है मन से, वचन से और शारीरिक क्रिया से सर्वदा, सर्व स्थानों में और सब प्रकार की परिस्थितियों में स्त्री संसर्ग का त्याग करना। इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हुए कामोत्तेजना से दूर रहना और शरीर के सर्व धातुओं के सार शुक्र-वीर्य को सुरक्षित रखना।

आयुर्वेद के अनुसार शुक्र-वीर्य मानव शरीर की सर्वोत्तम धातु मानी गयी है। इसकी एक बिन्दु, खून की चालीस बिन्दु के बराबर है ×।

अणुवीक्ष्ण यंत्र (Microscope) से देखने पर शुक्र-वीर्य में अनेक सूक्ष्म पुं-बीज इधर से उधर चक्कर मारते हुए नज़र आते हैं। आधुनिक काम विज्ञान (Science of Sex) में इनको

---

*Brahmcharya is defined as abstinence from sexual intercourse in thought word and deed in all conditions and places and times

×One ounce of Semen equals to that of 40 ounces of Blood

Spermatozoa *—पुं-बीज की संज्ञा दी गयी है। इन्हीं में से एक पुं-बीज संयोगवश स्त्री-बीज (ovum) के साथ मिल कर गर्भ धारण किया करता है।

ब्रह्मचर्य पालन से शुक्र-वीर्य जैसी शरीर की अमूल्य निधि की रक्षा होती है और फल स्वरूप शरीर का स्वास्थ्य कायम रहता है और इसके साथ करोड़ो पुं-बीजों की हत्या की सम्भावना भी नहीं रहती।

---

*The Spermatozoon is a highly Vitalised cell consisting of a head, neck and a long tail. 200 million to 500 million of sper matozoa are discharged in a Single orgasm by a young healthy male. One spermatozoon, advancing forward, may penetrate the cell wall of the egg-ovum and may merge with the Substance of the ovum. This is called fertilisation The remaining Spermatozoa are destroyed in the Vagina.

प्रत्येक पुं-बीज के सिर, गर्दन और लम्बी पूंछ होती है। पूंछ को इधर उधर घुमाते हुए वे शुक्र-वीर्य के मिश्रण में मछली की तरह तैरते रहते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि सिर्फ एक बार के स्त्री संसर्ग में बीस करोड़ से पचास करोड़ पुं-बीज वीर्य-शुक्र के साथ मानव शरीर से बाहर निकला करते हैं। योनि-मार्ग की गरमी में ये तड़फड़ा कर मर मिटते हैं। यदि संयोग-वश सिर्फ एक पुं-बीज गर्भाशय में आगे बढ़कर स्त्री-बीज (ovum) तक पहुंच जाये और अपने सिर के नोकीले भाग से स्त्री-बीज के अन्दर प्रविष्ट कर जाये, तो फिर इन दोनों के संयोग से गर्भ का प्रथम अणु बनता है। यही अणु दो दो भागों में विभाजित होकर मानव शरीर की रचना किया करता है।

भारत के प्राचीन महात्माओं ने वीर्य-रक्षा के इस रहस्य को समझा और उन्होंने अपनी साधना में ब्रह्मचर्य को प्रथम स्थान दिया। अहिंसा प्रधान जैन धर्म में तो ब्रह्मचर्य का बड़ा महात्म्य दिखाया गया है। ब्रह्मचर्य पालन के सरल साधन भी बताये गये हैं। पूर्णरूप से वीर्य रक्षा करने वाले ब्रह्मचारी के लिए मुक्ति प्राप्त करना कोई मुश्किल नहीं। कवि के शब्द हैं—

मनुष्य तणो भव पाय ने, जे नर पाले शील।
शिव रमणी वेगी वरै, करै मुक्ति में लील॥

जैन-दर्शन में साधु के लिये पूर्ण ब्रह्मचर्य का विधान है और गृहस्थ के लिये आंशिक ब्रह्मचर्य का।

साधु त्यागै सर्वथा, गृहचारी परनार।
माठी नजर जोवे नहीं, तिणरा खेवा पार॥

साधु मुक्तिपथ का सर्व श्रेष्ठ पथिक है। उसकी साधना कठोर होनी चाहिये। अतः वह पूर्णरूप से स्त्री संपर्क का त्याग करता है। वह जीवन पर्यन्त शुद्ध ब्रह्मचर्य पालन करता है। संसार की सभी स्त्रियां उसके लिये मा और बहिन के समान हैं। वह अपने मन पर कठोर नियन्त्रण रखता है। त्याग और तपस्या में ही वह मग्न रहता है। धीरे धीरे उसकी काम-वासना मर जाती है। यह तो हुई त्यागी और वैरागी साधु की बात, परन्तु गृहस्थ क्या करे? उसने विवाह किया। स्त्री को जीवन पर्यन्त अपने साथ रखने का वादा कर अपने घर लाया। वह अब स्त्री

को धोखा कैसे दे ? स्त्री को हर प्रकार से सुखी बनाना उसका कर्तव्य है, फ़र्ज है। उसे यह ज़िम्मेवारी निभानी ही पड़ती है। गृहस्थ सम्पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य पालन कर नहीं सकता, परन्तु उसे परनारी दूसरे की स्त्री वेश्या आदि का संसर्ग तो त्याग देना चाहिये। उसे बुरी दृष्टि से कामुक नज़र से न देखना चाहिये। यदि वह अपने मन पर इतना सा काबू रख सके तब भी उसका खेवा पार है।

आज पश्चिमी सभ्यता ने भारत के युवकों पर अपना कब्जा जमा लिया है। युवक अपने भारतीय आदर्श को भूल गया है। ब्रह्मचर्य को वह फालतू चीज समझता है। उसे जीवन में रोमान्स Romance चाहिये। काम-वासना तृप्त करने के लिये नये नये शिकार चाहिये। उसे कानूनन काम-वासना तृप्त करने का पूरा अधिकार है। वह क्यों न इस अधिकार को काम में लाये ? वह क्यों न सुन्दर युवतियों को उड़ा कर अपनी वासना तृप्त करे ?

आज की हवा में भी कामुकपन है। वह युवक-युवती को किधर ले जा रही है जरा ठंढे दिमाग से सोचे तो सही। एक-पत्नी-व्रत को भुला दिया गया है। विवाह एक सस्ता सौदा हो गया है। जबतक दिल एक है पति पत्नी के रूप में साथ रहे। वासना की तृप्ति करते रहे। जब अनबन हुई। डाइवोर्स Divorce तलाक किया और अलग अलग हो गये। युवक ने दूसरी स्त्री चुन ली और युवती ने दूसरा पति। जबतक जवानी रही

सिविल-मैरेज और डाइवोर्स का तांता चलता रहा। जब बुढ़ापा आया तब आंखें खुलीं, होश हुआ, परन्तु व्यर्थ।

साधारण मानव के लिये एक-पत्नी-व्रत भी आज के दूषित वातावरण में एक बहुत ऊँची चीज है। परन्तु कवि को इतने में सन्तोष कहाँ? वह तो कहता है—स्व स्त्री-संसर्ग भी छोड़ो। ब्रह्मचर्य अपनाओ।

कैयक श्रावक एहवा, आणे मन वैराग।
भोग जाणे विष सारिपा, घर नारी दे त्याग॥

ऐसे गृहस्थ श्रावक भी हैं जो काम-वासना, विषय भोग, स्व-स्त्री-संसर्ग को भी विष के समान भयंकर समझते हैं और त्याग देते हैं *।

चोथो व्रत इम जाण, अबम्भ तणा पचक्खाण।
देवाङ्गना मनुष्यणी ए, त्यागै तिर्यञ्चणी ए॥

चौथे व्रत में गृहस्थ अपनी शक्ति अनुसार आंशिक ब्रह्मचर्य अपनाता है और देव-देवी, पर-पुरुष व पर-स्त्री एवं तिर्यंच

---

* सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसी विसोवमा।
कामे पत्थे माणा, अकामा जन्ति दोग्गई॥

उत्तराध्ययन ९-५३

काम भोग विषय वासना शल्य रूप है, विष रूप है, एवं सर्प के समान है। ऐसे काम भोगों का सेवन न करने पर भी सिर्फ इनकी इच्छा मात्र से मानव दुर्गति में जाता है।

तिर्यंचणी (पशु पक्षी नर मादा) के साथ विषय सेवन का त्याग करता है।

नर मादा के प्रजनन अंगों की ऐसी रचना होती है कि वे सिर्फ अपनी ही जाति के उपयुक्त होती है। देव सिर्फ देवियों के साथ ही काम क्रीड़ा कर सकता है पशु पक्षी भी सिर्फ अपनी अपनी जाति के साथ ही काम क्रीड़ा किया करते हैं। आज का विज्ञान तो यहां तक कहता है कि वनस्पति जगत में भी नर एवं मादा होते हैं और वे सिर्फ अपनी ही जाति के साथ काम सुख का अनुभव करते हैं। मनुष्य जाति में भी यही नियम लागू है। चूंकि मानव सर्व श्रेष्ठ विकसित प्राणी है। अतः उसने कतिपय सुन्दर सामाजिक नियम बना रखे हैं—एक पुरुष एक स्त्री के साथ वैवाहिक सम्बन्ध करे और आजीवन इस सम्बन्ध को पति पत्नी के रूप में कायम रखे। यदि संसार के समस्त मानव इस नियम पर चले, तो दुनियां की अशान्ति आज खत्म हो जावे। व्यभिचार का अन्त हो जाये। परन्तु जवानी के मद में पागल युवक नयी नयी रमणियों को खोजता है। उनके साथ क्रीड़ा करता है। इतने से ही उसे सन्तोष नहीं। मौका पड़ने पर वह तिर्यंच जाति के पशुओं को भी नहीं छोड़ता। वह अन्धा बन गया है। अप्राकृतिक व्यभिचार में भी वह आनन्द खोजने की चेष्टा कर रहा है। मानव-मन काम-वासना से विकृत हो गया है, वह जो न करे थोड़ा है। सभ्य-जगत में अप्राकृतिक व्यभिचार की बीमारी भी घुस पड़ी है और इस नये आनन्द के

भिन्न भिन्न तरीके खोजने में भी मानव गौरव अनुभव करता है।

सद् गृहस्थ को एक-पत्नी-व्रत अपनाते हुए पर-स्त्री व अप्राकृतिक व्यभिचार को त्याग देना चाहिए और अपनी निजी पत्नी के साथ भी सम्भोग की मर्याद होनी चाहिए।

वले पोता री नार, तेहनो करै विचार।
तजै दिन रात री ए, परणी हाथ री ए॥

वह ब्रह्मचर्य के महत्त्व के सम्बन्ध में अपनी पत्नी से सलाह करता है और उसकी सम्मति से दिन के समय मैथुन सेवन का त्याग करता है। रात्रि में भी सम्भोग की मर्यादा करता है।

पक्खियादिक ना नेम, नर तो पाले एम।
मोहणी परिहरै ऐ, आत्मा वश करै ए॥

ब्रह्मचर्य पालन का स्वास्थ्य के साथ बड़ा-घनिष्ट सम्बन्ध है। दैनिक स्त्री संभोग से स्वास्थ्य पर बड़ा गहरा आघात पहुंचता है। अतः मानव को अपनी आत्मा पर, अपने मन पर कुछ अंकुश रखना चाहिये। धार्मिक दृष्टि से न सही, स्वास्थ्य की दृष्टि से भी नियमित ब्रह्मचर्य पालन जरूरी है। जितनी अधिक मात्रा में मानव ब्रह्मचर्य पालन करता है उतने ही अंश में उस व्यक्ति में तेज, क्रान्ति, रौनक, चमक, व्यक्तित्व, आकर्षण, आदि की मात्रा पायी जाती है। संसार में जो भी कर्मठ, तेजस्वी मानव हुए हैं उन्होंने निश्चय ही सर्व प्रथम काम-वासना पर अंकुश रखना सीखा है। ब्रह्मचर्य को आंशिक रूप में अपनाया

है। जैन-श्रावक को कम से कम द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा, आदि तिथियों में तो ब्रह्मचर्य अवश्य पालन करना चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक महीने में कम से कम १२ दिन तक तो ब्रह्मचर्य पालन हो ही जाता है। इन तिथियों में स्त्री संसर्ग का जो निषेध है वह एक महत्त्व रखता है। सुन्दर स्वास्थ्य के लिये भी यह जरूरी है। इस नियम को पालन करने से मानव अपने मन पर कब्जा रखना सीखता है। इन तिथियों में स्त्री संसर्ग का निषेध का मतलब यह नहीं कि दूसरी सब तिथियों में स्त्री संसर्ग खुला है। जितनी अधिक मात्रा में मानव ब्रह्मचर्य अपनाता है उतना ही वह ऊंचा उठता है। उतना ही उसका व्यक्तित्व चमकता है। आकर्षण बढ़ता है। यदि कोई गृहस्थ रहते हुए भी सम्पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य पाले तो उसका तो कहना ही क्या ?

कोई सर्व थकी दे त्याग, आणी मन वैराग ।
विषये उद्धरे ए, मन समता धरै ए ॥

काम-विकार, विषय-वासना मानव मन को चंचल बना देती है उसे उत्तेजित करती है। उसे अपने आप का भान नहीं रहता। विषय वासना कभी तृप्त होने वाली नहीं। संसार की समस्त स्त्रियां भी यदि एक मानव की पत्नियां बन जावे, तो भी उसकी काम वासना शान्त होगी नहीं। विकसित मानव इस रहस्य को समझता है। वह मन को वश में रखता है।

वैराग्य वृत्ति अपनाता है। सन्तोष धारण करता है। स्त्री संसर्ग को विष तुल्य समझते हुए उसे सदा के लिये त्याग देता है। ऐसा करने में आत्म-बल की जरूरत है। साधारण गृहस्थ ऐसा कर नहीं सकता। वह अपनी कमजोरी जानता है। वह विनय पूर्वक गुरुदेव से अर्ज करता है—गुरुदेव !

म्हारै घरनारी सूं नेह, तिण ने किम देऊँ छेह।
आत्म वश नहीं ए, कर्म घणा सही ए॥
करूं दिवस तणां पचखाण, रात तणां परमाण।
संतोष आदरूं ए, विषय परिहरूं ए॥
पर नारी सूं प्रेम, मैं कीधो छै नेम।
सुई डोरा करी ए, ऐसी विगत धरी ए॥

मैं गृहस्थ हूं। संसारी हूं, मुझे स्त्री से बड़ा भारी प्रेम है। मैं उसे कैसे छोड़ूं? मेरी आत्मा मेरे वश नहीं। मन पर मेरा नियन्त्रण नहीं। कर्म समूह भी मेरा पिण्ड छोड़ते नहीं। ऐसी विकट परिस्थिति में मैं संपूर्ण रूप से तो ब्रह्मचर्य पालन नहीं कर सकता। परन्तु मैं संतोष वृत्ति अपनाता हूं। विषय वासना को कतिपय अंश में छोड़ने की चेष्टा करूंगा। दिन के समय स्त्री संसर्ग का त्याग करता हूं। रात्रि के लिये भी नियमित ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा करता हूं। पर-स्त्री को मैं मा एवं बहिन के समान समझने की चेष्टा करूंगा। पर नारी के साथ सुई डोरा वत् संभोग

का त्याग करता हूं। उनको मैं बुरी नजर से न देखूंगा।

आधुनिक सभ्य-साहित्य ने काम-विज्ञान Science of Sex के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया। सिनेमा संसार ने काम-वासना को उत्तेजित करने के रास्ते बताये। स्त्री-सौन्दर्य-सामग्री के नये नये आविष्कारों ने स्त्री-जाति को इतना आकर्षक बनाया कि युवक का हृदय दोलायमान हो उठा। वह अपने आप को रोक न सका। उद्यानों में, बगीचों में, पार्कों में, आमोद प्रमोद के स्थानों में, हर जगह में युवक सजी सजायी सुन्दर सुन्दर नारियों को देखता है उसका मन चंचल हो उठता है। वह उनको अपनाने की चेष्टा करता है। नाना प्रकार के प्रलोभन काम में लाकर अपनी कामुक-इच्छा पूर्ति करने की चेष्टा करता है। उसे एक प्रकार का नशा हो जाता है। वह अपने जीवन को इसी काम में झोंक देता है। नये नये शिकार फंसाने के लिए वह हर सम्भव साधन काम में लाता है। स्त्री पुरुष दोनों के मन में एक उमंग उठती है। जब जवानी खत्म हो जाती है तब उनको होश आता है। परन्तु व्यर्थ। ऐसे स्वतंत्र विचार वाले युवक विवाहित-जीवन को तो बन्धन समझते हैं। वे तो स्वतंत्र रह कर कामुक-जीवन व्यतीत करते हुए जीवन का मजा लूंटना चाहते हैं। युवक को नयी नयी सुन्दर युवतियां चाहिए और युवती को नये नये पुरुष। इसी में वे जीवन का आनन्द समझते हैं। जब जवानी खत्म हो जाती है, अंग प्रत्यंग ढीले पढ़ जाते हैं, गरमी और सुजाक की भयंकर यातनाओं से जब वे कराहते हैं,

तब उनको होश आता है। परन्तु अब क्या हो ? उनका जीवन नीरस एवं भार स्वरूप हो जाता है। आत्म-हत्या तक की कामना करने लगते हैं। काम-वासना में तल्लीन मानवों की यही हालत साधारणतया हुआ करती है। कवि के शब्द देखिए—

जे सेवै पर नार, ते गया जमारो हार ।
नरकां मांही पड़ै ए, ढील नहीं करै ए ॥

जो मानव पर नारी के साथ प्रेम करता है, विषय सेवन करता है उसका वर्तमान मानव-जीवन व्यर्थ है। वह जीवन में कभी ऊंचा उठ नहीं सकता। इतना ही नहीं मरने पर भी उसका पिण्ड नहीं छूटता। वह नरक गति में जाता है। वहाँ उसे नाना प्रकार की भयंकर यातनायें सहन करनी पड़ती है।

चोथो व्रत घणो श्रीकार, सारा व्रतां रो सिरदार ।
व्रतां रो नायको ए, मुक्ति रो दायको ए ॥

श्रावक का चौथा व्रत—ब्रह्मचर्य—सर्व व्रतों में श्रेष्ठ है। यह सब व्रतों का सरदार है, नायक है। मोक्ष प्रदान करने वाला है। वास्तव में ब्रह्मचर्य पालन महा कठिन है। मन को वश में रखना कोई सीधा काम नहीं। मानव, भूख प्यास को सहन कर लिया करता है परन्तु काम-वासना से उत्तेजित मन को रोक रखना आसान नहीं है। स्त्री-सौन्दर्य ने बड़े बड़े तपस्वी ऋषि मुनि एवं विरक्त महात्माओं को विचलित कर दिया, साधारण मानव की तो बात ही क्या ?

शील व्रत छै मोटो रत्न, तिण रा करिये यत्न ।
ते आतम उद्धरे ए, शिव रमणी वरै ए ॥

शीलव्रत—ब्रह्मचर्य मानव के जीवन की अमूल्य निधि है, रत्न है। हर हालत में इस निधि की रक्षा करनी चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि जरा-सी गफलत से यह निधि हाथ से निकल जाये? यदि अपने जीवन को सुधारना है, आत्म उद्धार करना है, मानव जीवन को सार्थक बनाना है एवं मुक्ति रूपी रमणी-का वरण करना है, तो इस रत्न को हिफाजत से रखो। ब्रह्मचर्य व्रत को अखंड रूप से पालन करो।

ए व्रत पालै निर्दोष, त्यांने नेड़ी छै मोक्ष ।
तिण में शंका नहीं ए, श्री जिन मुख से कही ए ॥

ब्रह्मचर्य व्रत को अखंड रूप से निर्दोष पणे से पालन करना महा दुष्कर है। परन्तु जो दृढ़ आत्मबल वाला मानव ऐसा करता है उसके लिये मुक्ति का द्वार खुला है, इसमें शंका की गुंजाइश नहीं। जिन भगवान् ने स्वयं श्री मुख से ऐसा फरमाया है। इस संसार में तो ब्रह्मचर्य पालन करने वाले की इज्जत होती है सो तो होती ही है परन्तु देव भी ब्रह्मचारी को नमस्कार करते हैं। उसकी सेवा करते हैं उसका गुणगान करते हैं।

चार जाति रा देव, करै ब्रह्मचारी री सेव ।
वले शीश नमावता ए, वान्दे गुण गावता ए

भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक—ये देवों की चार जातियाँ मानी गयी हैं। ये चारों प्रकार के देव ब्रह्मचारी की सेवा करते हैं। उसके सामने सर झुकाते हैं। उसका यश कीर्ति गुणगान करते हैं, वन्दना करते हैं।

देव दाणव गन्धव्वा, जक्ख रक्खस किन्नरा।
वंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति तं॥

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, आदि देव ब्रह्मचारी को नमस्कार करते हैं। ब्रह्मचर्य व्रत महा दुष्कर है। महा कठिन है

एस धम्मे धुवे निच्चे, सासए जिण देसिए।
सिद्धा सिज्झन्ति चाणेणं, सिज्झि स्सन्ति तहावरे॥

उत्तराध्ययन १६—१७

ब्रह्मचर्य धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है, जिन भाषित है। ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाले अनेक मानव पूर्व काल में सिद्ध हुए, मोक्ष गये। ऐसे अनेक ब्रह्मचारी मानव भविष्य में सिद्ध होंगे। मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मोक्ष है और मोक्ष प्राप्त करने में ब्रह्मचर्य अति उत्तम साधन है।

ब्रह्मचर्य का पालन एक कठिन साधना है। अतः अपनी शक्ति और सामर्थ्य को नाप तौल कर ही ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा करनी चाहिये। ब्रह्मचर्य व्रत अपनाने के बाद पुनः उसे भंग करना मानव के लिये शोभाप्रद नहीं। ब्रह्मचर्य व्रत भंग करने से मानव इस जन्म में दुत्कारा जाता है और मरने के बाद भी

दुर्गति में जाता है। ब्रह्म-व्रत भंग करने वाले निकृष्ट मानवों के प्रति कवि के शब्द हैं—

जिण चोथो व्रत दियो भांग, त्यांरा घणां निकलसी सांग।
ते नरकां मांही पड़े ए, घणूं रड़वड़ै ए॥
इह लोके फिट फिट होय, परलोके दुर्गति जोय।
तिण जन्म विगाड़ियो ए, मानव भव हारियो ए॥

ब्रह्मचर्य व्रत अपना कर जो इसे भंग करता है उस मानव का जन्म वृथा है। ऐसा व्यभिचारी मानव जगह जगह दुत्कारा जाता है कोई उसका आदर नहीं करता। नाना प्रकार के स्वांग रचते हुए वह इधर उधर चक्कर काटा करता है नरक स्थान में उसे जाना पड़ता है, जहाँ उसको बड़ी भयंकर वेदनायें सहन करनी पड़ती है।

ब्रह्मचर्य व्रत वही मानव अपना सकता है और पालन कर सकता है जो उच्च जाति और उच्च कुल का हो। व्यभिचार जैसे घृणित काम करते समय उसे स्वभावतः अपने कुल अपनी जाति का ख्याल हो जाया करता है और वह अपना कदम पीछे खेंच लेता है। परन्तु नीच कुल वालों में यह बात नहीं। इसी फर्क को समझाने के लिये कवि कहता है—

जातिवंत कुलवंत, ते आतम नित दमन्त।
ते व्रत पालसी ए, कुल उजवालसी ए॥

नहिं जाति वंत कुलवंत, वलि रस गृद्धि अत्यन्त ।
ते विषय रो पासियो ए, व्रत विनाशियो ए ॥
निर्लज्ज लज्जा रहित, वलि विषय विकार सहित ।
तिण व्रत कापियो ए, ते मोटो पापियो ए ॥

उच्च जाति व उच्च कुल का मानव अपने लिए हुए ब्रह्मचर्य व्रत को नियम पूर्वक पालता है। कामोत्तेजना होने पर भी वह अपनी आत्मा का दमन कर लिया करता है। परन्तु जो मानव उच्च कुल व जाति का नहीं, वह तो विषय-विकार और काम वासना में तन्मय होकर अपने अपनाये व्रत को भंग करने में आगा पीछा नहीं सोचता। उसे जाति कुल का न तो कोई गौरव है और न भय या शंका। इस प्रकार से ब्रह्म-व्रत को भंग करके भी जिसे पश्चाताप नहीं होता वह महा पापी है।

ब्रह्मचर्य व्रत रा भांजण हार, धिक् त्यांरो जमवार ।
ते न्यात लजावणा ए, दुर्गति ना पावणा ए ॥

ब्रह्म-व्रत भंग करने वाले मानव का जन्म धिक्कार है। वह जाति और कुल का कलंक है और दुर्गति का मेहमान है।

मानव समझदार प्राणी है। आवेश में आकर काम-वासना से उत्तेजित होकर वह ब्रह्मचर्य व्रत भंग कर लिया करता है। परन्तु जब उसका मन शान्त होता है, काम वासना का नशा

उतरता है, तब वह लज्जा का अनुभव करता है। कवि के शब्द देखिये—

घणां लोकां रे मांय, ऊंचे स्वर बोल्यो नहिं जाय।
या खामी मोटी घणी ए, व्रत भांजण तणी ए॥

साधारण जनता के सामने ब्रह्म व्रत भंग करने वाला मानव बोल नहीं सकता। उसकी बोली जबान् से निकलती नहीं। उसका मन अनुभव करता है कि मैंने इस व्रत को भंग करके एक बड़ा भारी अपराध किया है। मैं कैसे बोलूं? किस मुंह से बोलूं? लोगों को कैसे मुंह दिखाऊँ? इस प्रकार के संकल्प विकल्प में वह उलझा रहता है। उसे अपने किए पर पश्चाताप है।

यो मोटो कियो अकाज, लज्जावंत ने आवै लाज।
निर्लज लाजै नहीं ए, सल्य घणी सही ए॥

व्रत भंग महान अपराध है। इस काम से लज्जावान् को शर्म का अनुभव होता है। परन्तु जो निर्लज है उसे लज्जा कहां? उसमें शल्य *की मात्रा अत्यन्त अधिक है अतः लज्जा क्यों करे?

---

* शल्य तीन हैं—

(१) दम्भ—कपट ढोंग।

(२) निदान—काम-पिपासा

(३) मिथ्या दर्शन—सत्य पर अश्रद्धा और असत्य पर आग्रह, जिद्द।

ब्रह्म-व्रत-भंग मानव-जीवन का कलंक है।* यह कलंक जीवन पर्यन्त मिटने वाला नहीं।

इण शील भाँजण री सोय, कहवत मिटै न कोय।
या मोटी महणी ए, जीवै जिहां भणी ए॥

शील भंग करने वाले की कहावत कभी मिटती नहीं। लोग मौके बेमौके उसे अंगुलियों पर गिनते ही रहते हैं। नामी आदमी को लोग भूलें भी कैसे? ऐसा ब्रह्म व्रत भंग करने वाला मानव जबतक जीता है यह कहावत चलती है कि—

इण पापी कियो अकाज, अजे न आवै लाज।
तोही बोलै गाजतो ए, निर्लज्ज नहीं लाजतो ए,॥

इस पापी ने इतना कुकर्म किया, इतना व्यभिचार सेवन किया फिर भी इसे शर्म नहीं। यह महा नीच है, निर्लज्ज है। ऐसा कुकृत्य करने पर भी यह किस मुंह से बोलता है? गर्ज गर्ज कर कहता है? इसे बिल्कुल लज्जा नहीं आती?

ब्रह्म व्रत तणो करै भंग, तिणरो कदे न कीजै संग।
कुकर्म मांहि भिलियो ए, कर्म कादे कलियो ए॥

---

* यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा पुनः सेवेत मैथुनम्
षष्टि वर्ष सहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः.

सन्यास लेने पर भी जो मानवः पुनः विषय सेवन करता है। वह साठ हजार वर्ष तक विष्टा (टट्टी) का कीड़ा बन कर रहता है।

जिस व्यक्ति ने ब्रह्म व्रत का भंग किया, आत्म पतन किया, वह कुकर्म में लिप्त है। कर्म रूपी कीचड़ में फंसा है। ऐसे मानव की कभी संगति न करो। संगत का असर हर मानव पर पड़ता है।

जे सेवें परनार, ते गया जमारो हार।
लजावें न्यात नें ए, पड्या मिथ्यात में ए ॥

पर-स्त्री सेवन करने वाले मानव का मानव-जन्म व्यर्थ है। वह अपनी जाति और कुल को बदनाम करने वाला है। उनको नीचा दिखाने वाला है। वह गलत रास्ते पर कदम बढ़ाये जा रहा है।

सभ्य और सुसंस्कृत मानव समाज ने एक आदर्श अपनाया एक-पत्नी व्रत व एक-पति व्रत का सुन्दर नियम बनाया। जन्म पर्यन्त सिर्फ एक ही पति व एक ही स्त्री को अपनाया जाय और सिर्फ उसी के साथ अपनी काम-वासना शान्त की जाय। सुन्दर समाज का निर्माण हुआ। गृहस्थजीवन सुचारु रूप से चलने लगा। जब एक नारी को अपनी स्व-स्त्री बना लिया, तो उसके लिये संसार की अन्य सब स्त्रियां मा बहिन के समान हो गयी। गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अच्छे अच्छे लोगों की साक्षी से विवाह करना पड़ता। विवाह संस्कार एक पवित्र सामाजिक कर्त्तव्य बन गया। पति पत्नी के रूप में दो हृदय मिल गये। सुख दुःख के साथी बने। यह एक र,

बना, सामाजिक नियम बना। इसी महान आदर्श को कायम रखने के लिये इस ब्रह्म व्रत का विधान है।

परनारी मा बहिन समान, त्यांसूं न करै माठो ध्यान।
चित्त चोखो कियो ए, ब्रह्म व्रत लियो ए॥

आंशिक रूप से ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाला मानव पर-नारी को मां और बहिन के समान समझता है। उसके मन में दूसरी स्त्रियों को देख कर कोई बुरे भाव नहीं आते। उसके दिमाग में बुरे विचार उठे भी क्यों? उसने तो शुद्ध हृदय एवं निर्मल चित्त से इस ब्रह्म व्रत को अपनाया है। यदि प्रत्येक मानव इस नियम पर चले, तो संसार में आज शान्ति का श्रोत बहने लगे, प्रत्येक स्त्री स्वतंत्रता पूर्वक विचरण कर सके। परन्तु ऐसा होता नहीं। मानव काम-वासना में अंधा बन जाता है। अपने भान को भूल जाता है। पर-स्त्री के साथ सम्भोग करने ही में वह अपनी बहादुरी समझता है। कम उमर की युवतियों को बहकाना, फुसलाना, उनको भगाना, उड़ाना, गायब करना, उनके साथ बलात्कार करना आदि की सनसनीदार खबरों से आज के दैनिक पत्र भरे रहते हैं। ऐसे काम करने वाले व्यक्तियों को लाज शर्म तो होती नहीं।

कोई छोड़े शर्म नै लाज, त्यांसूं ही करै अकाज।
ते निर्लज्ज नहीं लाजियो ए, डाकी बाजियो ए॥

काम-वासना से पीड़ित मानव में लाज शर्म नहीं रहती। ऐसा व्यक्ति अधम है, नीच है, डाकी है।

मानव मन कमजोर होता है, दुर्बल होता है। सुन्दर एवं आकर्षक युवती को देख कर उसका मन पिघल सकता है और पूर्वकृत अशुभ कर्म के प्रभाव से उसका ब्रह्मचर्य व्रत भी भंग हो जाया करता है। परन्तु इस काम का उसे पछतावा होता है। शर्म भी आती है। इसके विपरीत ऐसे भी अनेक मानव हैं, जो इन कामों को बुरा नहीं समझते। उनके पास पैसे हैं, धन है, जवानी है, युवक हृदय है, सुन्दर स्वास्थ्य है, मजबूत शरीर है। अधिक से अधिक युवतियों के साथ वे क्यों न सम्पर्क बढ़ावें? कवि के शब्द, इस प्रसंग में देखिये—

कर्म जोग जाय भांज, पिण केहतां नै आवे लाज।
कोई लाजै नहीं ए, वेशरमी सही ए॥
कोई सिधावै मन मांहि, मैं मोटो कियो अन्याय।
पछतावो अति घणो ए, खोटा कर्तव्य तणो ए॥

आकस्मिक संयोग से, व कर्म प्रभाव से मानव ब्रह्मचर्य व्रत भंग कर दिया करता है परन्तु इस काम से उसके मन में ग्लानि होती है। अपने अकर्तव्य पर उसे पश्चाताप होता है। इस गलती को कहते समय उसे शर्म आती है। वह मन में सोचता है—मैंने महा मोटा अन्याय किया। मैं इसके लिये पश्चाताप करता हूं। परन्तु ऐसे मानव भी अनेक हैं जिनको कोई लज्जा

नहीं, कोई शर्म नहीं, पर-स्त्री गमन को वे साधारण-सी बात समझते हैं।

जिणरो चोथो व्रत गयो भांग, तिण रो पूरो अभाग।
ते नागो निर्लज्जो ए, तिण में नहीं मजो ए॥

जिसने चौथे ब्रह्मचर्य व्रत को भंग किया, पर-स्त्री सेवन किया वह अभागा है। नंगा और निर्लज्ज है। उसका जीवन नीरस है, निरर्थक है, व्यर्थ है।

यथार्थ रूप से ब्रह्मचर्य व्रत को पालन करने के लिये कई नियम होते हैं, कई साधनायें होती है। इन नियमों का नाम साधारण जनता में "शील की नव बाड़" के नाम से प्रसिद्ध है।

ब्रह्मव्रत की नवबाड़, जे पालै निर अतिचार।
अडिग सैंठो घणो ए, मन जोगां तणो ए॥

जो मानव ब्रह्मचर्य व्रत को नव-बाड़ सहित पालन करता है, अतिचार से बचता है, अपने व्रत पालन में अडिग रहता है, मजबूत रहता है, मन आदि योग सहित व्रत का पालन करता है, वह धन्य है।

स्वामी भिक्षु ने "शील की नव बाड़" नामक एक सुन्दर काव्य की रचना की है। ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने वाले व्यक्ति को इन नव-बाड़ों का ज्ञान होना जरूरी है।

(१) एकान्त शयन—

जिस कमरे में स्त्री शयन करती हो, उठती बैठती हो उस कमरे में न तो शयन करना और न रहना।

स्त्री पशु पंडुक जिहां थानक, ब्रह्मचारी तिहां टाले रे—

—शील की नववाड़—

जिस स्थान में स्त्री, नपुंशक और पशु रहते हों वहां ब्रह्मचारी को रात में न रहना चाहिए। सम्भव है स्त्री के कारण ब्रह्मचारी के मन में बुरे विचार स्थान कर ले। यह भी सम्भव है कि नर एवं मादा पशु के संगम को देख कर ब्रह्मचारी के दिमाग़ में काम-वासना प्रवल हो जाए। अतः ब्रह्मचारी के लिये ऐसे अशान्त कामोत्पादक वातावरण में रहना निषेध है। सौ वर्ष की बूढ़ी डोकरी हो या दुध मुंही बच्ची हो, या अपनी ही मा वहिन व वेटी † ही क्यों न हो, ब्रह्मचारी को एकान्त में उससे बात न करनी चाहिये। ऐसा करने से सम्भव है ब्रह्मचारी के प्रति लोगों के मन में शंका उत्पन्न हो जाय या ब्रह्मचारी ही अपनी

---

† मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्ता सनो भवेत्।
वलवानिन्द्रय ग्रामो विद्वां समपि कर्षति॥

मनुस्मृति।

मा, वहिन व वेटी के साथ भी मानव एकान्त में एक आसन पर न बैठे। इन्द्रियां वड़ी प्रवल होती हैं। वे विद्वानों को भी विषयों की ओर खैंच लेती हैं।

कमजोरी से काम में अंधा होकर अपना पतन कर डाले। अकेली स्त्री, चाहे वह कोई भी हो, घी के समान है और ब्रह्मचारी अग्नि के समान। दोनों का एकान्त में वास करना खतरनाक है *। आत्म पतन का कारण है। घी का सम्पर्क होते ही अग्नि प्रज्वलित हो उठती है और सांय सांय कर तीव्र गति से जलने लगती है। ब्रह्मचारी के रहने के स्थान का वातावरण खूब ही शान्त होना चाहिए। ×

---

* हत्थपाय पलि च्छिन्नं; कन्न नास विगप्पि अं।
अवि वाससयं नारिं, बंभयारी विवज्जए॥

दशवैकालिक ८-५६

पूरे सौ बरस की बुढ़िया नारी है। उसके हाथ और पैर टूटे हैं। कान और नाक कटे है। ऐसी बदसूरत स्त्री का संपर्क भी ब्रह्मचारी के लिये वर्जनीय है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ब्रह्मचारी के लिये स्त्री संसर्ग से दूर रहना कितना जरुरी है।

× जहा विरालाव सहस्स मूले,
न मूसगाणं वस ही पसत्था।
एमे व इत्थी निलयस्स मज्झे,
न बंभयारिस्स खमो निवासो॥

उत्तराध्ययन ३२-१३

बिल्ली के स्थान के पास चूहे का रहना उचित नहीं। इसी प्रकार स्त्री के स्थान के पास ब्रह्मचारी का निवास करना उचित नहीं!

(२) सराग स्त्री कथा निषेध—

स्त्री सम्बन्धी ऐसी बात न करना जो काम वासना को प्रोत्साहन देती हो*। सुन्दर रमणी के अंग प्रत्यंग हाथ पैर नाक गाल, होठ, कान, केश, स्तन, कटि जंघा आदि को ऐसे रोचक ढंग से पेश करना, जिसको सुन कर या पढ़ कर मन में काम-वासना को प्रोत्साहन मिले, ब्रह्मचारी के लिए अनुचित है। ऐसा रोचक वर्णन करने से लोगों के मन में स्त्री के प्रति आकर्षण बढ़ता है। उनकी छिपी हुई काम-वासना को प्रोत्साहन मिलता है। अतः ब्रह्मचारी के लिये उचित है कि—

स्त्री कथा करै नहीं मुनिवर, सुर नर नो मन डोलै रे।
नीर चलै निंबूरी बात सुणंता, दूजी बाड़ इम बोलै रे॥

नीबू का नाम सुनते ही मुंह में पानी आ जाता है, यह स्वाभाविक है। इसी प्रकार कामोत्पादक स्त्री-कथा के सुनने व पढ़ने से सम्भव है ब्रह्मचारी मुनि का मन चलायमान हो जाये और वह न करने वाला काम कर बैठे। अतः ब्रह्मचारी

---

*मणप ल्हाय जणणी, काम राग विवड्ढणी।
बम्भचेर रओ भिक्खू, थी कहं तु विवज्जए॥

उत्तराध्ययन १६-२

मनको आहलाद देने वाली एवं काम तथा राग को बढ़ाने वाली स्त्री कथा को ब्रह्मचारी भिक्षु त्याग देवे।

को कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिए जिससे काम-वासना को प्रोत्साहन मिले।

(३) एकासन वर्जन—

ब्रह्मचारी उस आसन पर न बैठे जिस पर स्त्री बैठी हो। सम्भव है ऐसा करने से स्त्री-स्पर्श हो जावे। स्त्री-स्पर्श होते ही समूचे शरीर में एक प्रकार की उत्तेजना होती है। विद्युत् के समान काम का प्रवाह होता है। मानव-मन चंचल हो उठता है। अतः ब्रह्मचारी को स्त्री के एकदम नज़दीक न बैठना चाहिये। ×

(४) नारी रूप निरीक्षण निषेध—

स्त्री के मनोहर मनोरम इन्द्रिय व अंग प्रत्यंग को तल्लीनता से न देखना। स्त्री के प्रत्येक अंग में सुन्दरता होती है आकर्षण होता है, यह स्वभाविक है। सौन्दर्य-उपासक कवि सोलह वर्ष की युवती (षोड़शी) को प्रकृति की सब से सुन्दर वस्तु मानता है। ऐसी सुन्दर युवती को तल्लीनता से देखने से मानव मन विचलित हो ही जाता है। ब्रह्मचारी भी तो

× समं च संथवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं।
बम्भचेर रओ भिक्खू, निच्च सो परिवज्जए॥

उत्तराध्ययन १६-३

स्त्री के साथ अधिक परिचय और एक आसन पर बैठ कर बातचीत करनी ब्रह्मचारी भिक्षू सदा के लिए छोड़ दे।

मानव ही है। उसके मन में भी अवसर देख कर विकार की उत्पति हो जाया करती है। इससे वचने का सिर्फ एक उपाय है वह स्त्री के किसी भी अंग को तल्लीनता से न देखे। *

नेह धरी नारी रूप निरखें, फर्शे अंग उपंगो रे।
निजर झाल्यो सूरज थी देख्यां, चोथी वाड़ व्रत भंगो रे॥

कई मिनट तक सूरज की तरफ देखते रहने से मानव कुछ देर के लिये अन्धा-सा वन जाता है। उसे कुछ दीखता नहीं। इसी प्रकार जो मानव नज़र भर कर, राग के वशीभूत होकर, तल्लीनता से स्त्री के अंग प्रत्यंग को जी भर कर देखता है वह निश्चय ही काम-वासना में फंस कर अंधा हो जाया करता है। वह अपना भान खो बैठता है। व्रत भंग का अपराधी वन जाया करता है।

---

* अंग पच्चंग संठाणं, चारुल्ल विय पेहियं।
वम्भचेर रओ थीणं, चक्खु गिज्झं विवज्जए॥

उत्तरा० १६-४

ब्रह्मचारी स्त्री के अंग प्रत्यंग और संस्थान आदि का निरीक्षण करना तथा उसके साथ सुचारु भाषण और कटाक्ष पूर्ण दृष्टि आदि विषयों को त्याग दे।

(५) कामोत्पादक शब्द श्रवण निषेध— ×

शब्दों में बड़ी जबरदस्त ताकत होती है। शब्दों का माया-जाल मानव को बड़ी सफाई से फंसा लिया करता है। स्त्री के शब्द भी ऐसे मधुर व आकर्षक हो सकते हैं जिनको सुनकर मानव उन्मत्त हो जाय। काम-विकार से पागल हो जाय। स्त्री के कोमल कंठ का मधुर गायन, उसका क्रन्दन, उसका विलाप, उसका रुदन—सभी में काम-वृद्धि की चेष्टायें छिपी रह सकती है। ब्रह्मचारी पर भी ये चेष्टायें अपना प्रभाव जमा सकती है। श्रावण भादों में बादलों का गर्जन तर्जन सुनकर मोर आदि पक्षी नाचने लगते हैं। उनमें मादकता छा जाती है। उसी प्रकार ब्रह्मचारी भी स्त्री कंठ की सुरीली आवाज़ से प्रभावित होकर अपना भान खो बैठता है। उस सुन्दरी को अपनाने की चेष्टा में दिन रात एक कर देता है। ब्रह्मचर्य व्रत को खूंटी पर टांग देता है। वह तो काम में अंधा है। उसे चारों ओर उस कोकिल कंठी रमणी की परछांई दीख रही है। ब्रह्म-व्रत को उसने भंग कर दिया है।

× कुइयं रुइयं गीयं, हसियं थणिय कन्दियं ।
बम्भचेररओ थीणं, सोय गिज्झं विवज्जए ॥

-उत्तरा० १६-५

ब्रह्मचारी स्त्री के कूजित, रुदित, गीत, हंसित, स्तनित और क्रन्दित शब्दों को न सुने।

अतः ब्रह्मचारी को ऐसे शब्द न सुनने चाहिये जो काम-वासना को प्रोत्साहन दें। जहाँ ऐसे शब्द सुनने की सम्भावना हो, वहाँ से उसे तुरत हट जाना चाहिए।

(६) पूर्व काम क्रीड़ा स्मरण निषेध—

विषय भोग कामक्रीड़ा का स्मरण करने मात्र से मानव-मन चंचल हो जाया करता है। अतः ब्रह्मचारी को इससे बचना चाहिये १।

(७) सरस आहार निषेध—

भोजन का काम-वासना के साथ गहरा सम्बन्ध है। घी दूध दही, तेल मिठाई, चटपटे मशालेदार साग, आचार आदि द्रव्य रोज़ाना खाने से काम-वासना की वृद्धि होती है। ब्रह्म-चारी को सिर्फ सीधा सादा भोजन करना चाहिये। इससे शरीर निरोग रहता है तथा मन भी शान्त रहता है। जैन-मुनियों में विगय त्याग की बातें बहुत सुनने में आती है। इन सब का अभिप्राय यही है कि काम-विकार को कैसे रोका जाय ?

---

१ हासं किड्डं रइं दप्पं, सहभुत्ता सियाणि य।
बम्भचेर रओ थीणं, नाणु चिन्ते कया इवि॥

उत्तरा-१६-६

स्त्री के साथ की हुई हंसी, क्रीडा, रति, दर्प और एक साथ किया हुआ भोजन—इन सब को ब्रह्मचारी भूल चूक कर भी स्मरण न करे।

(८) अधिक आहार निषेध—

स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक आहार अजीर्ण, बदहज्मी Dyspepsia, मन्दाग्नि आदि की उत्पत्ति करता है। बिना भूख के स्वादिष्ट बने भोजन को ठूंस ठूस कर खाना हर प्रकार से नुकसान पहुंचाता है। ब्रह्मचारी को हर समय भोजन की मात्रा कम करनी चाहिये। उसे स्वास्थ्य कायम रखना है और काम-विकार को भी जीतना है।

(९) चित्त लुभाने वाली चटकीली, भड़कीली, वेश भूषा निषेध—

वेश भूषा रहन सहन में ब्रह्मचारी सादगी का प्रतीक होना चाहिये। शरीर को तेल साबुन पाउडर स्नो क्रीम आदि लगाकर सुन्दर बनाये रखने से मानव-मन में काम-विकार की उत्पति होती है। व्रत भंग भी हो जाने की सम्भावना है। अतः अपनी वेश भूषा के चुनाव में ब्रह्मचारी को खूब सावधानी रखनी चाहिये। काम-विकार के साथ पोशाक का भी गहरा सम्बन्ध है।

चावा चन्दन चरचे अंगा, आभुषण अति चंगो रे।
छगन मगन हुवे वेस वणावे, नवमी बाड़ व्रत भंगो रे॥

चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों का लेप करना, सुन्दर आभूषण पहिनना, सुन्दर कपड़े पहन कर मन में मग्न होना—ये सब नवमी बाड़ के भंग होने के कारण हैं।

ब्रह्मचर्य की साधना करने वाले व्यक्ति के लिये इन नव-बाड़ों

का ज्ञान होना जरूरी है। इसी साधना के बल पर साधु अपना जीवन त्यागमय तपस्यामय बनाये रखते हैं। जो मानव सम्पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते एवं गृहस्थ-जीवन व्यतीत करते हैं, उनके लिये भी इन नव-बाड़ों का ज्ञान जरूरी है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिये एवं मानसिक शान्ति बनाये रखने के लिये आंशिक ब्रह्मचर्य पालन एक उत्तम साधन है। जितनी मात्रा में मानव ब्रह्मचर्य पालता है उतनी ही मात्रा में वह सुख एवं शान्ति का अनुभव करता है।

आधुनिक काम-विज्ञान के विशेषज्ञ बताते हैं कि मानव सिर्फ आंशिक रूप में ही ब्रह्मचर्य पालन कर सकता है, सम्पूर्ण रूप से नहीं। जिस प्रकार प्राणी के लिये टट्टी, पिशाव, नींद भोजन आदि जरूरी माने जाते हैं, उसी प्रकार काम भूख को शान्त करना भी जरूरी है। शारीरिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये स्त्री-संसर्ग आवश्यक है। इसका मतलब यह नहीं कि मनमाने ढंग पर अति अधिक मात्रा में काम सेवन किया जाय। इसकी भी सीमा होती है, नियम होता है।

इसके विपरीत यदि मानव मन पर कठोर नियन्त्रण रख कर पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करे, स्त्री से अलग रहे, अप्राकृतिक व्यभिचार से दूर रहे, तो भी प्राकृतिक नियम के अनुसार रात्रि के समय निद्रावस्था में वीर्य-क्षय हो ही जाया करता है। यह कोई बीमारी का लक्षण नहीं, यह तो स्वभाविक स्वास्थ्य का प्रतीक है। टट्टी पिशाव की शंका को कोई भी मानव जबरन् रोक

नहीं सकता, इसी प्रकार इस क्रिया को भी मानव रोक नहीं सकता।

मुंह की ग्रन्थियां लार पैदा करती है। स्वादिष्ट भोजन व इमली नींबू जैसे खट्टे पदार्थों के देखने व स्मरण मात्र से लार की मात्रा बढ़ जाती है। लार टपकने भी लगती है। इसी प्रकार से सुन्दर रमणी के सम्पर्क से व उसके चिन्तवन मात्र से कामोत्तेजना बढ़ती है और फल स्वरूप वीर्य उत्पादन करने वाली ग्रन्थियां (Testicles etc) भी उत्तेजित होती है वीर्य का उत्पादन बढ़ जाता है। वीर्य उत्पन्न होकर वीर्य-धारण-करने वाली थैलियों (Seminal vesicles) में इकट्ठा हो जाया करता है। यह स्त्री-संसर्ग के समय या निद्रावस्था में शरीर से बाहिर निकल जाता है *। जब ब्रह्मचर्य पालन करते रहने पर भी इस प्रकार से वीर्य का नाश हो जाता है तब फिर ब्रह्मचर्य व्यर्थ है। इसी विश्वास के फल स्वरूप आधुनिक काम विशेषज्ञ नियमित

---

* Just as some glands in the mouth produce saliva, some glands in the testicles produce semen, which is conveyed through two tubes to the Storing bags, called Seminal Vesicles, situated in the abdomen Like saliva it is being produced continuously, the quantity being increased, when the man is sexually excited When once it is produced and conveyed to the seminal Vesicles it must find its way out, it must be discharged out through the sexual organ When these vesicles are filled to capacity it naturally give rise to sexual feelings and sexual thoughts Beautiful sexual dreams occur at night and the stored up amount of semen is discharged.

स्त्री-सम्भोग का आदेश देता है। सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य को वह एक ढोंग समझता है, असम्भव कहता है।

परन्तु भारत के प्राचीन ऋषि मुनियों एवं वर्त्तमान के उत्कृष्ट सन्यासियों साधु मुनिराजों का मत इससे सर्वथा भिन्न है। इन्होंने दूषित वातावरण से अलग रह कर अपने जीवन में त्याग एवं तपस्या को अपनाते हुए ब्रह्मचर्य व्रत का सम्पूर्ण रूप से पालन किया है। इस सम्बन्ध में उनका अनुभव-ज्ञान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। कामुक एवं दूषित वातावरण में अन्वेषण करने वाला वैज्ञानिक ब्रह्मचर्य के रहस्य को समझ नहीं पाता।

मानव शरीर की वृषण ग्रन्थियाँ Testes दो प्रकार का रस Secretion तैयार करती हैं * एक तो वह रस जो बाहर निकलता है, एवं जो मानव की उत्पत्ति का कारण बनता है, साधारण भाषा में इसे वीर्य कहते हैं। वीर्य अमूल्य निधि है,

---

*The testes have two different functions. The greater mass of each testicle is made up of a series of lobes, which are composed of minute tubules in which the sperm cells spermatozoa are formed and liberated • The tissue between the lobes (interstitial tissue) produces that marvellous chemical product, the internal Secretion or sex hormone which creates the sex impulse, causes essential male characteristics in the individual and plays its part with the other internal Secretion glands (eg Thyroid, Pituitary etc.) in sustaining the normal functioning of the body The internal secretion is so called because it is absorbed directly into the blood It is wholly distinct from the products which go to make up the seminal discharge-semen The internal secretion is never discharged from the body in ejaculation of the semen.

इसमें अपने ही जैसे मानव पैदा करने की शक्ति विद्यमान है। सम्भोग के समय स्त्री के रज के साथ मिल कर यह गर्भ धारण करता है।

दूषित एवं कामुक वातावरण में रहने वाले युवक के मन में काम-वासना जागृत होती है, काम सम्बन्धी उत्तेजना होती है, उसका मन विषय विकार में चंचल होता है, मन में एक प्रकार की अद्भुत लहर चक्कर काटती है, ऐसी उत्तेजना होने पर दोनों वृषण वीर्य की उत्पत्ति करने लगते हैं, यह वीर्य शुक्राशय Seminal Vesicles- में इकट्ठा होता रहता है। जैसी जैसी उत्तेजना की मात्रा होती है उसी के अनुरूप वीर्य भी यहाँ इकट्ठा हो जाता है। यह संगृहीत वीर्य कामोत्तेजना के समय शरीर से बाहिर निकल जाया करता है।

वृषण Testes जो दूसरा रस तैयार करता है उसे Internal Secretion (Sex hormone) ओज् कहते हैं। यह समूचे शरीर में व्याप्त हो जाता है *। इसी ओज् † के अनुरूप

---

* रस इक्षौ यथादध्नि, सर्पि स्तैलं तिले यथा।
सर्वत्रानु गतं देहे शुक्रं, संस्पर्शने तथा॥

—चरक संहिता

जैसे ईख में रस, दही में घी, तिल में तेल है वैसे ही शुक्र-ओज् भी शरीर के प्रत्येक परमाणु में विद्यमान रहता है।

† ओज् वास्तव में चीज क्या है इसे अभीतक शरीर विज्ञान के विशेषज्ञ नहीं जान पाये हैं। इसका विश्लेषण करना उनकी क्षमता के बाहर है।

ही मानव की प्रभा, चमक, आकर्षण व्यक्तित्व, मनोबल, आत्म-बल, कार्य क्षमता, तपस्या, साधना आदि निर्भर करते हैं। भारत के ऋषि मुनियों ने इसी रहस्य को समझा, इसे अपनाया, प्रमुख स्थान दिया। जो मानव अपना कल्याण एवं सम्पूर्ण विश्व का कल्याण करना चाहता है वह इसी साधना के पथ को अपनाता है एवं अपना जीवन सफल बनाता है। ब्रह्मचारी तपस्यामय जीवन बिताता है। तपस्या से उसकी काम उत्तेजना मर जाती है। सजी सजायी सुन्दर स्त्री को देख कर भी उसके मन में विकार नहीं उत्पन्न होता। जब उत्तेजना नहीं, विकार नहीं तब बाहरी रस-वीर्य भी बनता नहीं। और जब शुक्राशय (Seminal Vesicles) में वीर्य का स्टाक नहीं तब वीर्य क्षय भी नहीं। अतः पूर्ण ब्रह्मचारी के लिये निद्रावस्था में वीर्यक्षय का प्रश्न भी फिजूल-सा है। जबतक ब्रह्मचर्य साधना में कमी है तभी तक वीर्य क्षय सम्भव है। काम-विकार, काम उत्तेजना मानसिक चंचलता को रोकने के लिये तपस्या एक उत्तम साधन है। तपस्या से काम-विकार मर जाता है। आयुर्वेद शास्त्र कहता है कि तपस्या से ब्रह्मचारी नपुंसक बन जाता है। उसके काम उत्तेजना होती ही नहीं। जब उत्तेजना नहीं तब वीर्य की उत्पत्ति नहीं और उत्पत्ति के अभाव में वीर्यक्षय का प्रश्न फिजूल है।

जब ब्रह्मचारी कठोर तपस्या एवं साधना से बाहरी रस—वीर्य की उत्पत्ति को रोक लेता है, तब उसके वृषणों के लिये सिर्फ

एक काम रह जाता है वह है आभ्यन्तर रस Internal Secretion sexhormone ओज् को उत्पन्न करना। ऋषि मुनियों के मनोबल आत्मबल का कारण यह ओज् है। यही अमूल्य निधि है। मुनि इसी को उत्पन्न करता है और इसी की रक्षा करता है। हमने प्राचीन महात्माओं के बड़े बड़े आश्चर्यकारी कारनामे सुने हैं। इन सब का एक मात्र कारण यही आभ्यन्तर रस-ओज् है। तेरापन्थ सम्प्रदाय के अष्टम आचार्य एक दफे भिवानी पधारे। आपके विरोधियों ने प्रचार किया कि—इनके ललाट एवं सर में वारनिश की पालिस की जाती है और इसी से इनके ललाट में इतनी चमक है। जब लोगों को असली बात का पता लगा, तो वे उनके प्रशंसक बन गये। जैन साधु न तेल लगाता है, न साबुन स्नो या क्रीम। उसके लिये तो जीवन पर्यन्त स्नान भी निषेध है। ऐसी परिस्थिति में ललाट में इतनी चमक तेज प्रभा का एक मात्र कारण है आभ्यन्तर रस ओज्। ब्रह्मचर्य पालन का यही महत्व है। ब्रह्मचर्य का पालन जितना पुरुष के लिये जरूरी है उतना ही स्त्री के लिए भी। प्रजनन अंगों की रचना और उनके कार्यों के सम्बन्ध में स्त्री पुरुष में बहुत ज्यादा फर्क नहीं है, ऐसा शरीर विशेषज्ञों का मत है। ब्रह्मचर्य की दृष्टि में आभ्यन्तर रस अन्तः श्राव ओज्—(Internal-Secretion Hormone) का ही विशेष महत्त्व है और यह ओज् पुरुष में वृषण (Testes) उत्पन्न करते हैं, तो स्त्री में ओवेरी (ovary) ब्रह्मचारिणी स्त्री के चेहरे पर रौनक प्रभा, चमक,

तेज उसकी हिम्मत, वहादुरी विद्वत्ता, उसके स्वास्थ्य आदि का कारण यह ओज ही तो है।*

आधुनिक दूषित वातावरण में काम करने वाला, काम विज्ञान का अन्वेषण करने वाला वैज्ञानिक भले ही सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने को ढोंग कहे, असम्भव कहे, कपोल कल्पना कहे, परन्तु तपस्या मय जीवन विताने वाले ब्रह्मचारी के लिये ऐसा कहना ठीक नहीं। वह सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य पालनकर सकता है और करता है।

शील की नव-बाड़ इस व्रत की साधना के लिये जरूरी है। इनके अभ्यास से मानव-मन कठोर एवं मजबूत वन जाता है। उसकी काम-वासना धीरे धीरे मरने लगती है।

जिण लोप दीधी नव बाड़, तिणरा हुवै विगाड़ ।
खराबी होवै घणी ए, ब्रह्म भंग तणी ए ॥

---

*The female Gonads, the ovaries Corresponding to the testes in the males produce, develop and mature the precious vital force like Semen. This is the ovum. Though the woman does not actually lose, this out of her body as in the Case of Semen in the man, yet due to the Sexual act it leaves the ovaries and is taken up in the process of Conception to form the embryo. Repeated depletion of this force and the strain of child birth makes wrecks of healthy ladies works havoc with their strength beauty grace as well as their youth and mental power. Eyes lose the lustre and sparkle that are indicative of the inner forces The ovum and the hormones secreted by the ovaries are very essential for the maximum physical and mental well being of women.

पूर्ण ब्रह्मचारी के लिये नव-वाड़ का वड़ा महत्त्व है। जो ब्रह्मचारी इन नव वाड़ों में किसी एक वाड़ को भी भंग कर देता है पालन नहीं करता, वह ब्रह्मचारी नहीं रह सकता। उसका व्रत तो भंग होता ही है उसका जीवन भी विगड़ जाता है। ब्रह्मव्रत का भंग भयंकर अपराध है।

व्रत भांग सेवै परनार, ते गया जमारो हार।
फिट फिट होवै घणों ए, कुजस तिण तणो ए॥

मातृवत् परदारेषु—पर नारी माता के समान समझते हुए भी जो ब्रह्मचारी पर-स्त्री संभोग करता है वह ब्रह्मव्रत के भंग का महान अपराधी है। उसका मानव-जन्म व्यर्थ है। लोग ऐसे व्यक्ति को धिक्कारते हैं। उसकी निन्दा करते हैं, वदनामी करते हैं।

चोखे चित्त पालै शील, ते रहे मुक्ति में लील।
राखो नित्य आसता ए, पामें सुख सास्वता ए॥

शुद्ध एवं पवित्र मन से शील-ब्रह्मचर्य को पालन करना मुक्ति के अनन्त सुख में लीला करने के समान है, अर्थात् ब्रह्मचारी मुक्ति सुख का अनुभव किया करता है। ब्रह्मचर्य के महत्त्व में सम्पूर्ण रूप से विश्वास रखना स्थायी सुख प्राप्त करना है।

दिन दिन चढ़तै रंग, पालो व्रत अभंग।
मन समता धरो ए, शिव रमणी वरो ए॥

कवि कहता है—हे ब्रह्मव्रत के उपासक! दिन प्रति दिन नये उमंग नये उत्साह से ब्रह्मव्रत का पालन करो। इसे अखण्ड रूप से पालन करो। मन में इन्द्रिय-जन्य विषय विकार के प्रति समभाव धारण करो। सन्तोष को अपनाओ। ऐसा करने से तुम मुक्ति रूप रमणी को वर सकोगे। उस से आलिंगन कर सकोगे। यही तो हे ब्रह्मचारी! तुम्हारा चरम लक्ष्य है।

ब्रह्मव्रत ने श्री जगदीश, ओपमा कही बत्तीस।
दशवां अंग में कही ए, शूर पालै सही ए॥

भगवान् महावीर ने दशवें अंग में ब्रह्मव्रत का महत्त्व बताने के लिए बत्तीस प्रकार की उपमा दी है। जो मानव धर्म में शूर हैं वे ब्रह्मव्रत का दृढ़ता पूर्वक पालन करते हैं।

करण जोग पिछाण, ब्यौरा शुद्ध पिछाण।
चोखे चित्त पालज्यो ए, दूषण टालज्यो ए॥

हे ब्रह्मव्रती! तूं शुद्ध चित्त से इस व्रत का निर्दोष रूप से पालन कर। तीन करण एवं तीन योग का महत्त्व समझते हुए इस व्रत को स्वीकार कर। अपने जीवन को सफल बना।

तू कर्मठ युवक है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में रहने वाला मानव है। तू ने विज्ञान की बातें सुनी। अब तो सोच तुझे क्या करना है? क्षणिक सुख के लिये करोड़ों पुं-बीजों का नाश कर डालना क्या उचित है? इनके बलिदान के साथ साथ तेरा शरीर तेरा स्वास्थ्य भी नाश हो रहा है इस बात को न भूल जा।

यह भी याद रख—विषय सेवन से तेरी काम-पिपासा काम-वासना तृप्त होने वाली नहीं। ब्रह्मव्रत को अपना और शुद्ध मन से इसे पालन कर। तू जीवन में हर समय सुन्दर स्वास्थ्य को धारण करते हुए सुख और शान्ति का अनुभव करेगा।

व्रत पांचवां

अपरिग्रह अणुव्रत

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं, हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नालमेकस्य तत्सर्वं, मिति पश्यन्न मुह्यति ॥

समूची पृथ्वी पर जितने गेहूं, बाजरी चना मोठ जौ आदि धान्य हैं उन सब पर भी यदि तेरा कब्जा हो जाये, तो भी तेरी भूख शान्त होने वाली नहीं। संसार के समस्त हीरे, पन्ने, माणक मोती, सोना चांदी लोहा आदि का मालिक बन जाने पर भी तेरी तृष्णा मिटने वाली नहीं। संसार के सारे चतुष्पद पशुओं पर अधिकार हो जाने पर भी तेरी लालसा में कमी होने वाली नहीं। सुन्दर से सुन्दर संसार की समस्त युवती रमणियां भी यदि तेरी पत्नियां बन जाये, तो भी तेरी काम पिपासा मिटने की नहीं।

मानव को सन्तोष तो होता नहीं। और सन्तोष बिना सुख मिलने वाला नहीं। लालसा बढ़ती ही जाती है। कवि सुन्दर कहते हैं—

जो दश बीस पचास भये, शत होइ हजार तु लाख मंगेगी ।
कोटि अरब्ब, खरब्ब असंख्य धरापति होन की चाह जगेगी ॥
स्वर्ग पतालकु राज करौं, तृष्णा अधिकी अति आग लगेगी ।
सुन्दर एक सन्तोष बिना शठ, तेरि तु भूख कभी न भगेगी ॥

दश, बीस, पचास, सौ, हजार, लाख, क्रोड़, अरब, खरब इस प्रकार लालसा बढ़ती ही जाती हैं। सारी पृथ्वी का राजा बनने की इच्छा, स्वर्ग एवं पाताल का राज्य करने की लालसा। लोभ, लालच, परिग्रह संग्रह की भावना, कामना लालसा बराबर बढ़ती ही जा रही है। इसको रोकने का सिर्फ एक उपाय है—सन्तोष। मानव जहां एवं जिस जगह सन्तोष को अपनाता है वहीं और उसी स्थान पर वह सुख एवं शान्ति का अनुभव करने लगता है।

आधुनिक वातावरण में पलने वाले मानव को सन्तोष कहाँ ? वह तो—

चाहत है धन होय किसी विध, तौ सब काज सरै जिय राजी।
गेह चिनाय करूं गहना कछु, व्याही सुता-सुत बांटिये भाजी॥
चिन्तत यों दिन जाहि चले, जम आनि अचानक देत दगाजी।
खेलत खेल खेलारि गये, रहि जाय रुपी शतरंज की बाजी॥

कवि भूधरदास—

प्रत्येक मानव ने अनुभव किया है कि—

अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे।
आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थं दुःख साधनम्॥

अर्थ यानी धन कमाने में दुःख, रक्षा करने में दुःख, व्यय करने में दुःख, धन के चले जाने में दुःख—सब जगह दुःख ही दुःख तो हैं। धन दुःख का हेतु है। ऐसे धन को धिक्कार दिया

जाये या स्वागत किया जाये ? बड़ी विकट समस्या है। आज का मानव हर समय धन का स्वागत करने को तैय्यार है। धन कमाने को पागल है। दिन रात उसने एक कर रखा है। सोने की परवाह नहीं आराम की फुरसत नहीं, भोजन को वक्त नहीं, उसे तो सिर्फ धन चाहिये धन। झूठ कपट छल दगाबाजी फरेब, धोखा आदि धन कमाने के जितने भी साधन हैं सब को काम में लाना है। हमें संसार में रहना है। अपनी शान शौकत कायम रखनी है। इज्जत आबरू को बनाये रखना है, पुत्र पुत्रियों का विवाह ठाठ बाट से करना है—इन सब में धन की जरूरत है। अतः धन चाहिये धन। धन बिना काम कैसे चले ?

कर में है कलदार, मन चाह्या लूटो मजा।
दुनियाँ में दिलदार, चहराशाही चक्करिया ॥

आज जो अशान्ति है, कलह है, फूट है, पारस्परिक अविश्वास है उन सब का मूल कारण है—धन परिग्रह संग्रह की भावना। जबतक मानव के दिमाग में यह भावना बनी रहेगी, तबतक विश्व में शान्ति हो नहीं सकती। आपस में कम्पीटीशन चलती है। जिसमें ज्यादा ताकत है वही धन पर कब्जा बनाये रख सकता है। जिसकी लाठी उसकी भैंस।

जैन दर्शन कहता है—

नत्थि एरिसो पासो पडिबंधो अत्थि सव्व जीवाणं सव्व लोए। प्रश्न व्याकरण—

-- अखिल विश्व के समस्त जीवों के लिये परिग्रह के समान कोई बंधन नहीं।

जैन दर्शन ऐसे बंधन को तोड़ने का आदेश देता है। पांचवां अपरिग्रह अणुव्रत इसी सही दिशा में सही कदम है। यदि मानव सामूहिक रूप में इसे अपनावे तो संसार की अशान्ति मिटने लगे। मानव जाति चैन की वंशी बजाने लगे।

हिजहाइनेस आगा खां अतुल धन राशि के स्वामी हैं। अगस्त १९४९ में फ्रांस में मोटर कार में भ्रमण करते समय डकैत पिस्तौल का भय दिखा कर आपकी बेगम साहिबा के जवाहिरात लेकर गायब हो गये। जवाहिरात अमूल्य थें। अनुमान लगाया जाता है उनकी कीमत करीब ३००००० पौंड अर्थात् चालीस लाख रुपये थी। इस दुर्घटना को सुनकर प्रेस रिपोर्टर आपके पास गये, तो आपने हंसते हुए उनको कहा—× मैं अब सुखी मानव हूं। मेरे पास अब कीमती जेवर नहीं। मैं अब हर कहीं घूम फिर सकता हूं। अब मेरे भ्रमण में कौन रुकावट डालेगा? ऐसे मानव को कौन डकैत लूटने की चेष्टा करेगा जिसकी पाकेट में थोड़े से पैसे हो?

इस घटना के बाद परिग्रह के उपासक आगा खां ने जरूर अनुभव किया होगा कि असली सुख असली शान्ति परिग्रह में

× I am a happy man I have no more valueables left to loose I can now go about without any fear of being held up, because I am quite sure no one would want to hold up a man like me just to steal a few pounds, that may be found in his pockets.

नहीं, अपरिग्रह में है। न चिन्ता न फिकर। आज़ादी से घूमो फिरो। परन्तु सौ सौ भरी की सोने की बंगड़ियाँ और चमक चूड़ियाँ पहन कर ________________ जाने वाली लखपतियों की नारियाँ कब अपरिग्रह के महत्त्व को समझेंगी ? शायद आगा खां की तरह लूट जाने के बाद।

संसार में रगड़े झगड़े के मुख्य कारण दो हैं—कंचन और कामिनी। यदि किसी समाज की किसी देश की साधारण जनता कंचन और कामिनी के उपभोग में, संग्रह में नियम बना ले, सीमा बांध ले, मर्याद कर ले, तो वह समाज लोगों के सामने एक नवीन आदर्श पेश कर सकता है। चौथा ब्रह्मचर्य अणुव्रत और पांचवा अपरिग्रह अणुव्रत कामिनी और कंचन के सम्बन्ध में मर्याद-सीमा कर लेने का आदेश देता है।

परिग्रह धन सम्पत्ति की मर्याद न करने से लालसा कामना बढ़ती ही जाती है। दूसरे का धन, सम्पत्ति हड़पने की इच्छा प्रबल हो-उठती है। छलबल कपट कौशल द्वारा जैसे भी हो, इस परिग्रह संग्रह की इच्छा को पूरा करना ही होगा। गृहस्थ का परिग्रह बिना काम नहीं चलता। अतः प्रत्येक गृहस्थ के पास साधारणतया परिग्रह रहता ही है। धन से आज न्यारा कौन ?

पांचवे व्रत त्यागै परिग्रह, ते परिग्रहो मूरछा जाण।
तिणसूं निरन्तर जीव रे, पाप लागे छै आण ॥

पांचवे व्रत का नाम है अपरिग्रह अणुव्रत। परिग्रह पर जो मुर्छा या ममत्त्व भाव है वह निरन्तर पाप लगने का कारण है—

ए मोटो पाप छै परिग्रह, तिण थी गोता खाय।
सांसो हुवै तो देखल्यो, तीन मनोरथ * मांय॥

साधारण जरूरतों से ज्यादा परिग्रह का संग्रह करना महा मोटा अपराध है। ऐसा करके मानव संसार के परिभ्रमण को बढ़ाता है।

---

*जैन-दर्शन के अनुसार आदर्श-मानव तीन प्रकार की कामना करता है, अभिलाषा रखता है। इनका नाम है—तीन मनोरथ। पहिला मनोरथ है—परिग्रह त्याग की भावना। धन सम्पदा आदि के प्रति उदासीन वृत्ति। आधुनिक सभ्य समाज में रहने वाला व्यक्ति यदि इसे समझे, इसके आदर्श को अपनावे, अपनी जरूरतों में कमी करता रहे, तो आज का अशान्त वातावरण शान्त हो सकता है। सब सुख की नींद सो सकते हैं। दूसरा मनोरथ है—मुनि बनने की भावना। अपना सर्वस्व त्याग कर यहाँतक कि स्त्री पुत्र आदि की ममता भी छोड़ कर आत्म-कल्याण के लिये, संसार कल्याण के लिये त्यागमय जीवन विताने की भावना रखना। तीसरा मनोरथ है—शरीर की ममता का त्याग कर आजन्म अणशण व्रत अपनाना। यह बड़ा कठिन पथ है। सब जीवों से क्षमा मांगते हुए, अपने अपराधों के लिये माफी मांगते हुए अपने प्राणों की आहुति देना बड़ा कठिन कार्य है। शरीर का मोह प्राणों की ममता छोड़ देना कोई सीधा काम नहीं है। शान्त मन से मानव इस रास्ते को अपनाता है और मरणान्त कष्ट सहन करते हुए अपने प्राणों की बलि चढ़ाता है।

आज के संसार में नाना प्रकार के वाद हैं—ism हैं—Communism साम्यवाद, Socialism समाजवाद, Nazism नाजीवाद राजतन्त्रवाद, प्रजातन्त्रवाद, आदि आदि। सब एक दूसरे से भिन्न है। एक दूसरे को भला बुरा कोसते रहते हैं। समाजवादी या साम्यवादी कहता है—पूंजीवाद को खतम कर दो। पूंजी पतियों का गला घोंट दो। उनकी समस्त पूंजी छीन कर गरीवों में समान रूप से वितरण कर दो। इधर पूंजी-वाद कहता है—साम्यवादी संसार को तवाह करके छोड़ेंगे। एक वार यदि संसार की समस्त पूंजी गरीवों में मजदूरों में समान रूप से वितरण भी कर दी जाय तो क्या? हुंशियार व्यक्ति फिर भी पूंजी इकट्ठी कर ही लेंगे। सच पूछा जाय तो दोनों वाद गलत रास्ते पर हैं। जवतक मानव का हृदय नहीं वदलता, उसके मन में परिग्रह के प्रति पूंजी के प्रति घृणा उत्पन्न नहीं होती, तवतक दुनियां में शान्ति होगी नहीं। परिग्रह के प्रति घृणा होने से मानव इसे अशान्ति का, मानसिक वेचैनी का कारण समझने लगते हैं। उसे परिग्रह में सुख के वजाय दुःख ही अधिक दीखता है। साधारण लोग समझते हैं कि जिसके पास धन है, सम्पत्ति है वह वड़े मजे में है, आनन्द में है। परन्तु वे भूल करते हैं। पैसे वाले को रात में पूरी नींद नहीं आती। कोई चोर डकैत तो घर में नहीं घुस गये। ड्योढ़ी वाले जमादार ही ने तो घूस न खाली। तार आया मैंमनसिंह वाले कुष्टे (पाट) में आग लग गयी। वीमा उसका किया

हुआ था नहीं। मुनीम ने दश हजार रुपया उड़ा लिया। बड़े लड़के ने फाटका किया। घाटा लगा तो बैंक से रुपया उठा कर फाटके वालों को भेंट कर दिया। अमेरीका से माल इतना आया कि बाजार चौपट हो गया। घाटा अनाप सनाप हुआ। इधर इन्कम टेक्स वाले तंग कर रहे हैं। इतना रुपया जल्दी से जमा करावो, नहीं तो कानूनी कारवाई की जावेगी—इस प्रकार की हालत है आलीशान महलों में पलंगों पर सोने वाले सेठ साहब की। पूरी ताकत (Full speed) से पंखा चल रहा है फिर भी आज सेठ साहब बेचैन हैं। उनको नींद नहीं आ रही है।

मानव जानता है, पैसे वालों की यही दशा हुआ करती है। फिर भी परिग्रह से उसकी ममता नहीं छूटती। जबतक ममता है, मानव को सुख होगा नहीं।

जैन-दर्शन का अपरिग्रह वाद दुनियाँ में स्थायी शान्ति प्राप्त करने का रास्ता बताता है। प्रत्येक मानव के हृदय में परिग्रह के प्रति घृणा की श्रृष्टि करो। उसे समझावो बतावो कि परिग्रह अनर्थ का मूल है। यह तुम्हारे सुख और शान्ति को भंग कर देगा। रात और दिन तुम परिग्रह की चिन्ता में सूखते जाओगे। परिग्रह इतना ही रखो, जितना तुम्हारे लिये निहायत, जरूरी है। संसार में रहने के लिये परिग्रह जरूरी है फिर भी इसकी सीमा तो होनी चाहिये। दूसरों का हक़ छीन कर, अन्याय जुलम

और अत्याचार का रास्ता अपना कर तो परिग्रह संग्रह न करना चाहिये।

ए अनर्थ ज्ञानी भाषियो, नरक ले जावे ताण।
यति मार्ग नूं भंजणो, निषेध कियो इम जाण॥

परिग्रह संग्रह को ज्ञानियों ने अनर्थ का मूल बताया है। यह हाथ पकड़ कर खींच कर प्राणी को नरक में पहुंचा देता है। परिग्रह यति-संयम मार्ग का भंग करने वाला है।

एक साधारण गृहस्थ के लिये सम्पूर्ण रूप से परिग्रह त्याग सम्भव नहीं। संसार में रहने के नाते उसे सभी काम करने पड़ते हैं। परिग्रह बिना धन सम्पदा बिना आज कोई काम बनता नहीं। फिर भी परिग्रह की मर्यादा तो होनी चाहिये। अपरिग्रह अणुव्रत की कल्पना भी इसी उद्देश्य से की गयी है। हम जीवें और दूसरों को जीने दें Live and let live यही तो इस व्रत का आशय है। सिर्फ एक मानव लाखों करोड़ों व्यक्तियों का हक छीन कर स्वयं करोड़पति अरबपति कुबेरपति बन जावे, ऐश अराम करे और दूसरे दाने दाने के लिये भीख मांगते फिरें यह आज की दुनियां बर्दास्त नहीं कर सकती। तुम बड़े बड़े महलों में आनन्द मनाओ और हमें फुटपाथ पर रह कर जीवन गुजारना पड़े, यह हम सहन नहीं कर सकते। तुम विवाह शादी में पांच पांच हजार मेहमानों को मिठायी खिलावो और हमारे बच्चे भूख से कराहते रहें, यह हमें मंजूर नहीं। दुनियां में ऐसी

विषमता को दूर करने का एक मात्र साधन है जैन दर्शन का यह अपरिग्रह अणुव्रत। इस अणुव्रत को अपनाने से मानव अपनी आवश्यकताओं में कमी करने लगता है। सीधा सादा जीवन अपनाता है। सादगी से रहता है। परिग्रह को वह कोई महत्त्व नहीं देता। वह परिग्रह को हेय समझता है, उपादेय नहीं।

परिग्रह नव प्रकार का है। देखिये कवि के शब्द—

खेत्तु वत्थु हिरण सुवर्ण तणो, धन धान वलि जाण।
द्विपद ने चोपद तणो, कुम्भीधातु तणू प्रमाण॥
खेत उघाड़ी भूमिका, वत्थु हाट हवेली जाण।
रूपा ने सोना तणूं, करै शक्ति सारु पच्चखाण॥
सचित्त अचित्त मिश्र द्रव्य छै, यां सगलां रो करै प्रमाण।
मूर्छा ते अभिन्तर परिग्रहो, तिणसूं पाप लागै छै आण॥
बारज परिग्रहो नव जाति रो, ममता करि ग्रह्यो छै ताण।
तिण सूं यांने परिग्रह कह्यो, तिण थी पाप लागै छै आण॥

परिग्रह के नौ भेद हैं –

(१) खेत्तु — खुली जमीन खेत आदि का परिमाण करना।

(२) वत्थु — मकान इमारत बगीचा आदि ढकी जमीन का परिमाण करना।

(३) हिरण्य — चांदी व चांदी से बनी वस्तु के उपयोग का परिमाण करना।

(४) सुवर्ण — सोना व सोने से बने जेवर आभूषण वर्तन आदि के उपयोग का परिमाण करना।

(५) धन — रुपये, मोहर, सिक्के, करेंसी नोट, गवर्नमेंट के कागजात् हीरा मोती, जवाहिरात, व्यापार में लगी हुयी रकम आदि का परिमाण करना।

(६) धान्य — गेहूं, चना, जौ, बाजरी आदि गल्ला अनाज़ को रखने की मर्यादा करनी।

(७) द्विपद — दो पैर वाले मानव—नौकर चाकर, मुनीम, गुमास्ता, दासदासी आदि को रखने का परिमाण करना।

(८) चौपद — चार पैर वाले पालतू जानवर—गाय, भैंस, ऊँट, घोड़ा आदि को रखने व उपयोग में लाने का परिमाण करना।

(९) कुप्य धातु—तांबा, लोहा, पीतल, अल्युमीनियम, कांसी आदि धातु व उनसे वनाये वर्तन, फरनीचर, मोटर, वायुवान आदि का परिमाण करना।

इस प्रकार जैन-दर्शन में परिग्रह के नौ भाग किये गये हैं। इनके वजन, माप, संख्या व मूल्य आदि को ध्यान में रखते हुए अपनी शक्ति, सामर्थ्य व वैराग्य वृत्ति के अनुसार इनके उपयोग का परिमाण करना चाहिये और धीरे धीरे इस परिमाण में भी कमी करते रहना चाहिये। द्रव्य तीन प्रकार के हैं—(१) सचित्त-जीव सहित, (२) अचित्त–निर्जीव और (३) मिश्र–सचित्त एवं

अचित्त का मिश्रण। इन तीन प्रकार के द्रव्यों का परिमाण करना चाहिये। परिमाण करने का उद्देश्य है—अपनी जरूरतों में कमी करते रहना। अपनी दैनिक आवश्यकताओं को घटाते रहना।

मानव जैसे जैसे अपनी जरूरतों में कमी करता है वैसे वैसे वह अपने को हल्का अनुभव करता है। सुखी अनुभव करता है। उसके झंझट धीरे धीरे घटने लगते हैं।

उपरोक्त नव प्रकार के परिग्रह में मानव की जो आसक्ति है, प्रेम है, ममत्त्व है, अपनापन है, मूर्छा है, वह आभ्यन्तर परिग्रह कहलाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि धन, धान्य, सोना चांदी आदि नव जाति का परिग्रह बाह्य परिग्रह है और इन पर जो आसक्ति है, ममत्त्व है वह आभ्यन्तर परिग्रह है। अपनी सम्पत्ति की मर्याद करनी बाह्य परिग्रह का नियन्त्रण करना है और सम्पत्ति से आसक्ति मिटानी आभ्यन्तर परिग्रह पर काबू पाना है। बाह्य व आभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रह की मर्याद करनी चाहिये। दोनों प्रकार का परिग्रह अनर्थ का कारण है। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये।

मूच्छा परिग्गहो वुत्तो—किसी वस्तु पर मूर्छा रखना, ममत्त्व रखना आसक्ति रखना परिग्रह है। परिग्रह मानव को पागल बना देता है। वह अपने अस्तित्व को भूल जाता है। चांदी के चन्द टुकड़ों के लिये वह मा बाप भाई बहिन मित्र पुत्र आदि से झगड़ा करता रहता है। मामला मुकदमा करता है। कभी कभी

तो अपने हाथ से व गुण्डों के द्वारा अपने प्रिय सन्बन्धी का खून भी करवा देता है। हम रोजाना ऐसे रोमांचकारी हत्याओं का वर्णन अखबारों में पढ़ा करते हैं और परिग्रह अनर्थ का मूल है यह भी अनुभव करते हैं परन्तु परिग्रह में कमी करने का या परिग्रह के प्रति आसक्ति घटाने का हम नाम भी नहीं लेते। गन्दे एवं मलिन वातावरण का ज़हर हमारे शरीर के प्रत्येक रोम में समा गया है और परिग्रह संग्रह ही हमारे जीवन का मूल मंत्र वन गया है। विप का प्रभाव इतना गहरा है कि इच्छा रहने पर भी हम इसे छोड़ नहीं सकते। आज मानव-जीवन की सफलता परिग्रह-संग्रह की मात्रा पर निर्भर करती है। जिसने अधिक पैसा कमाया, पोते पड़पोते तक के लिये धन इकट्ठा किया, उसीका मानव-जीवन सफल है। वस पैसा ही है जीवन की सफलता आंकने का हमारा माप-दण्ड, हमारा कांटा, हमारा तराजू।

पइसो जग में प्रान, पइसो ही जग में प्रभु।
पइसा रो सनमान, चहुं दिश में है "चकरिया" ॥

आदर्श-गृहस्थ का माप-दण्ड भिन्न है। वह परिग्रह के प्रति समभाव धारण करता है, त्याग वृत्ति को प्रधानता देता है।

परिग्रह नूं परिहार, श्रावक करे विचार।
समता उर धरै ए, नव भेदे करै ए॥
खेत्तु वथु छै एह, सोनों रूपो तेह।
धन धान द्विपदा ए, कुम्भीधातु चौपदा ए॥

ए नव विधि संख्या थाय, त्यांरी वंच्छा देवै मिटाय।
तृष्णा परिहरै ए, मन समता धरै ए॥

एक सद्गृहस्थ नव प्रकार के परिग्रह की असारता को समझते हुए परिग्रह के प्रति समभाव धारण करता है, त्याग वृत्ति को अपनाता है। धन, धान्य आदि सब प्रकार के परिग्रह की आशा पिपासा, वांछा, लालसा में कमी करता है। तृष्णा लोभ लालच को घटाता है,

ममता बुरी बलाय, चिहुं गति में भटकाय।
घणो रड़बड़ै ए, नहीं जक पड़ै ए॥
मन सूं करौ विचार, ए नरक तणूं दातार।
एह नें टालवो ए, व्रत नें पालवो ए॥

परिग्रह के प्रति जो आसक्ति है, ममत्त्व है वह मानव को बेचैन बना देती है। उसे अशान्त एवं डावांडोल बनाये रखती है। उसे थोड़ी देर के लिये भी ज़क नहीं पड़ती, आराम नहीं मिलता। वह परिग्रह संग्रह के लिये इधर उधर चक्कर लगाता ही रहता है। जिस मानव को धन कमाने की जितनी मात्रा में भूख होगी, उतना ही वह चक्कर लगावेगा। भूख वह सहन करता है, प्यासा वह रह जाता है। स्वास्थ्य भले ही बिगड़ जाय उसे परवाह नहीं। उसे तो धन चाहिये, धन। चमकते हुए रुपये। हर प्रकार की जोखिम उठाने को वह तैयार है। यदि समुद्र के

अथाह तल में मोती मिलने की गुंजाइश हो, तो वह जान पर खेल कर भी समुद्र में गोता लगाने को तैयार है। दो तीन या चार हजार फुट जमीन खोदने पर भी यदि उसे सोना दीखे, तो वह सोने की तलाश में पृथ्वीतल की उस भयंकर गरमी व नमी को सहन करने को तैयार है। प्राण चले जाय उसे परवाह नहीं, उसे तो धन चाहिये। भला धन के पीछे पड़े ऐसे मानव को शान्ति कहाँ? वह तो चक्कर ही लगावेगा। इस जन्म में ही नहीं मरने पर भी अपना काम चालू रखेगा। एक दो जन्म में तो क्या अनन्त जन्मों में भी वह अपना क्रम तोड़ने वाला नहीं।

"इच्छा हु आगास समा अणन्तया"—इच्छा आकाश के समान अनन्त है। इस इच्छा की पूर्ति कभी होने वाली नहीं। यह समझ कर आदर्श गृहस्थ मन में ऐसा सोचता है कि—परिग्रह नरक का कारण है। मैं नरक से घृणा करता हूं, उसे दूर ही से नमस्कार करता हूं। अतः मुझे परिग्रह के प्रति अनासक्त रहना चाहिये। अपरिग्रह व्रत को अपनाना चाहिये। इस व्रत के पालन से ही मुझे वास्तविक सुख व शान्ति की प्राप्ति होगी, मेरा जीवन सफल बनेगा।

नव जाति रो परिग्रह ताहि, विचार करी मन मांहि।
मूरछा परिहरो ए, मार्ग नहीं मुक्त रो ए॥
ए मोटो प्रतिबंध पाश, करै बौध बीजरो नाश।
मार्ग छै कुगति रो ए, नहीं छै मुक्ति रो ए॥

परिग्रह छै मोटो फन्द, कर्म तणूं छै बंध।
नरक ले जावै सही ए, तिहां मार घणी कही ए ॥

परिग्रह मुक्ति का बाधक है। अतः परिग्रह में आसक्ति मत रखो। यह एक महान बन्धन है। यह मानव के सद्ज्ञान का नाश करता है। सम्यक्त्व का विनाश कर डालता है। यह मानव को सुपथ से हटा कर कुपथ पर चलने की प्रेरणा करता है। नरक गति में ला पटकता है। यहाँ नाना प्रकार के कष्ट सहन करते करते, मार खाते खाते प्राणी तंग आ जाता है। मरना चाहता है परन्तु मर नहीं सकता। बेहोश होना चाहता है परन्तु बेहोश भी हो नहीं सकता। उसे तो अपने पूर्व कृत कर्मों का फल भोगना है। उसे नरक में जाना होगा, पूरे होश में रह कर महा भयानक कष्टों को भोगना होगा। कराह कराह कर अपने आयुष्य को पूरा करना होगा। ऐसा फल होता है परिग्रह संग्रह का व परिग्रह में ममत्व रखने का। परिग्रह से मानव अंधा बन जाता है। अच्छे काम उसे सूझते नहीं। धर्म को वह ढोंग समझता है।

परिग्रह महा विकराल, मोटो छै माया जाल।
तिण में खूतां सही ए, धर्म पावै नहीं ए ॥

परिग्रह एक प्रकार का बड़ा भयंकार माया-जाल है। सुनहरा फंदा है। जहाँ मानव एक बार इसमें फंसा कि फिर वह निकल नहीं सकता। वह अपनी असलियत को खो बैठता है।

अपना अस्तित्व भूल जाता है। धर्म के प्रति उसे कोई रुचि नहीं रहती। उसे धर्म करने को, धर्म का रहस्य समझने को फुरसत कहां?

कंचन और कामिनी मानव को संसार में फंसा कर रखने वाली दो खतरनाक वस्तुयें हैं। यदि मानव अपना कल्याण चाहता है, तो इन पर ममत्व न रखे। कवि कहता है—

कनक कामणी दोय, त्यां सेयाँ दुर्गति होय।
फन्द छै मोटको ए, त्याँसूं खावै धक्को ए॥

कनक और कामिनी एक बड़ा फन्दा है, जाल है, बन्धन है। इस बंधन में फंसा हुआ मानव धक्का खाता है, दुर्गति में जाता है। दूरदर्शी गृहस्थ इस सुनहरे फंदे से बचना चाहता है। अतः वह पहले से ही सावधान हो जाता है। वह कहता है—

कनक कामणी दोय, पल्ला न पकड़ावै कोय।
तिण फंद में नाख्यो सही ए, निकल सकै नहीं ए॥

कनक और कामिनी से मैं दूर ही रहूं तो ठीक रहे। कोई इनसे मेरा पल्ला न पकड़ावे। मेरा स्पर्श न करावे। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि इनके चंगुल में एक बार फंस जाने पर कोई निकल नहीं सकता। इन दो दुर्गम घाटियों को कोई पार नहीं कर सकता।

चलौ चलौ सब कोई कहै, पहुंचै विरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय॥

हमने परिग्रह की धन सम्पदा की असलियत समझी। परिग्रह संग्रह से दुनियां में अबतक तो किसी को स्थायी सुख मिला नहीं। थोड़ी देर के लिये भले ही मानव इन्द्रिय-जन्य परिग्रह सुख का अनुभव कर ले, परन्तु अन्त में यह दुःख का ही कारण हुआ करता है। परिग्रह-संग्रह में आसक्त मानव का पतन भी जल्दी ही हो जाया करता है। परिग्रह की लालसा मानव को जुल्मी, अत्याचारी, बना कर उसका भविष्य अन्धकारमय कर डालती है। परिग्रह अनर्थ का मूल है। संसार के महात्माओं का ऐसा कहना है। क्रिस्तान धर्म के प्रवर्त्तक क्राइष्ट ने कहा है—
It is possible for a camel to pass through a needles Eye but it is impossible for a rich man to enter the gates of heaven.

सुई के छिद्र से ऊंट निकल सकता है—यह सम्भव है परन्तु परिग्रह संग्रह का उपासक धनो मानव स्वर्ग के फाटक में प्रवेश कर सके—यह असम्भव है। अर्थात् साधारणतः धनी मानव जुल्मी होता है, वेरहम होता है, अत्याचारो होता है। उसका हृदय कठोर होता है। अतः उसके लिये स्वर्ग में कोई स्थान नहीं रहता।

ऐसे अनर्थकारी परिग्रह का विना जरूरत संचय करना, उसे अपने अधिकार, अपनी मालकियत में रखना जब इतना बुरा काम है, तो फिर ऐसे परिग्रह को दूसरों को देने से धर्म कैसे माना

जाय ? जो जहर हमारे शरीर के लिये महा खतरनाक है, वही जहर दूसरे के लिये अमृतमय कैसे हो सकता है ?

आज यदि किसी भीखमंगे को हम धन देकर उसे धनी बना दें तो कल वही दरिद्र भिखारी अपने नये प्राप्त-धन के अहंकार में दूसरों पर रौब जमाना, हुकुमत करना आरम्भ कर देगा। ज़ुल्म और अत्याचार उसके लिये साधारण-सी बात बन जावेगी। किसी निर्धन को सिर्फ पैसे दे देने मात्र से धर्म नहीं हुआ करता। कवि के शब्द देखिये—

परिग्रह दीधां कहै धर्म, ते भूल्या अज्ञानी भर्म।
कर्म घणा सही ए, समझ पड़ै नहीं ए॥
इण परिग्रह तणा दलाल, त्यां में पिण होसी हवाल॥
दुःख नरकां तणा ए, सहसी अति घणा ए॥

जो परिग्रह देने मात्र को धर्म कहते हैं, वे अज्ञान में हैं, भ्रम में हैं। उनके पूर्व कर्मों का बंध बड़ा जबर्दस्त है। वे सीधे रास्ते पर चल नहीं सकते। जो मानव परिग्रह की दलाली करते हैं और धर्म के नाम पर दूसरों को परिग्रह दिलाने की चेष्टा करते हैं, वे सद्गति प्राप्त कर नहीं सकते। क्योंकि परिग्रह अनर्थ का मूल है। इस प्रसंग में कवि के शब्द काफ़ी कटु हैं परन्तु वे सत्य एवं दलील के आधार पर सही उतरते हैं। जब परिग्रह स्वयं ही जहर है, तो फिर इस जहर की दलाली करने वाले मानव की यही हालत तो होनी चाहिये।

जैन-दर्शन में तीन करण एवं तीन योग का बड़ा महत्त्व है। त्याग करते समय इनका (करण योग) ध्यान रखना जरूरी है।

ए राख्यां लागै छै कर्म, रखायां पिण नहीं धर्म।
तीन करण सारखा ए, कीज्यो पारखा ए॥
ए परिग्रह ना दातार, त्यांरा सावद्य योग व्यापार।
मार्ग नहीं मोखरो ए, छांदो इण लोकरो ए॥

परिग्रह संग्रह करना, उसे अपने पास रखना कर्म बंध का कारण है और इसे दूसरे के पास रखाना भी कर्म बंध का हेतु है। इसमें धर्म कहाँ? बिना विचारे परिग्रह का दान करने वाला सावद्य कार्य करता है, वह बेकारी फैलाता है। हट्टे कट्टे युवकों को आलसी और भिखमंगे बनाने में प्रोत्साहन देता है। जिसका मांगने से पेट भर जाये, वह काम क्यों करे?

आज की गवर्नमेन्ट भी इस प्रकार के दान को समाज के लिये देश के लिये घातक समझती है और Beggars Act जैसे कानून बना कर इस अनाचर को, धर्म के नाम पर दिये जाने वाले दान को, रोकना चाहती है। अतः ऐसे विवेकहीन कार्य को मोक्ष साधन का हेतु कैसे मान लिया जाय? परन्तु जो मानव वृहत् सम्पत्ति का स्वामी होता है वह समाज के कल्याण के लिये अपनी यशकीर्ति के लिये नाम कमाने के लिये परोपकारी लोकोपकारी कार्यों में अपना धन खर्च किया करता है। आम जनता को इससे आराम मिलता है। वे बदले में उसका गुणगान करते हैं। ये सारे

काम संसार से सम्बन्ध रखते हैं। समाज में रहने के नाते समर्थ व्यक्ति ऐसा किया करते हैं, यह उनका सामाजिक कर्तव्य है।

जैन-साहित्य में चार प्रकार का आहार भोजन माना गया है—'

(१) अशन — दाल रोटी।
(२) पान — पेय पदार्थ जैसे पानी आदि।
(३) खादिम— फल मेवा आदि।
(४) स्वादिम—पान सुपारी इलायची आदि सुगंधित द्रव्य।

अशणादिक च्यारूं आहार, श्रावक रे परिग्रह मझार।
ते खावें, खवावें सही ए, तिण में धर्म नहीं ए॥

अशन पान आदि चार प्रकार का आहार परिग्रह माना गया है। मानव इस आहार को स्वयं खाता पीता है, दूसरों को भी खिलाता पिलाता है। उसे संसार में जीवित रहना है और दूसरों के साथ हिल मिल कर रहना है। अतः उसे खाना पड़ता है खिलाना भी पड़ता है। यह उसका सामाजिक नियम है, कर्तव्य है। इस में धर्म का क्या सम्बन्ध है? इतना ही नहीं परन्तु—

श्रावक ते मांहो मांहि, देवें लेवें छै ताहि।
ते सघलो ही परिग्रहो ए, इण में शंका मत धरो ए॥

श्रावकों के आपस में नूंत पांत होती है। विवाह शादी आदि शुभ अवसरों पर न्योंता दिया जाता है जिमाया जाता है।

देना और लेना दोनूं चलता है। ये सारे काम परिग्रह में शुमार है।

सामाजिक-आडम्बर दिन प्रति दिन बढ़ रहा है। नयी नयी रीति रिवाजों का आविष्कार होता है। बड़े आदमी रिवाजों को बढ़ाने में ही अपना बड़प्पन समझते हैं और मध्यम श्रेणी वाले उनका अनुकरण करना ही अपना अहोभाग्य मानते हैं। आर्थिक स्थिति चाहे कितनी ही खराब हो, विवाह शादी के शुभ अवसर पर कर्ज कर के भी अपनी शान कायम रखना चाहते हैं। साधारण जनता कर्ज़ के भार से पिसी जा रही है फिर भी रीति रिवाज घटाने का, विवाह शादी में सादगी लाने का कोई विचार तक नहीं करता। सेठ दुलीचन्द के पुत्र के विवाह में हमने विदाम की कतलियां एवं बागबजार का रसगुल्ला, जयपुर का कलाकन्द और बीकानेर का भुजिया खाया था। अब हमारे बेटे का विवाह है, तो हम भी अपने परिवार एवं इष्ट मित्रों को वही मिठाइयां खिलावेंगे, तभी तो हमारी इज्जत रह सकेगी। दो हजार का बेसी कर्ज़ लेलेंगे बस इतनी ही तो बात है।

हम दूसरों के यहां जीमनवार में जाते हैं, तो मौका पड़ने पर हमें भी उसी के अनुरूप जीमनवार करनी होगी। पुत्र के विवाह में यदि हम २० हजार का दायजा लाये हैं, तो पुत्री के विवाह में २० हजार का दायज़ा भी देना पड़ेगा। यह तो बराबर का पारस्परिक व्यवहार है, देना लेना बराबर है। ये सारे काम परिग्रह के अन्तर्गत हैं। धर्म का इनसे क्या वास्ता? मानव

स्वयं भोजन करता है पेट भरने के लिये, दूसरों को खिलाता है-यश कीर्ति के लिये। इसी प्रकार गृहस्थ का लेना व देना पारस्परिक सामाजिक व्यवहार है। इन कामों में मानव जितना अनुरक्त रहता है, फंसा रहता है उतना ही उसका संसार-परिभ्रमण बढ़ता है।

द्रव्य तीन प्रकार के हैं—

सचित्त—वे द्रव्य, जिनमें जीवन-शक्ति हो, जो सुख दुःख का अनुभव करते हो। चेतन प्राणी इस में शुमार हैं।

अचित्त—वे द्रव्य, जिनमें जीवन का कोई अंश न हो। संसार के सारे जड़ पदार्थ अचित्त हैं। इन्हें सुख दुःख का कोई अनुभव नहीं होता।

मिश्र — बहुत से ऐसे भी द्रव्य हैं जिनमें सचित्त एवं अचित्त यानी जड़ और चेतन का मिश्रण होता है।

जैन-दर्शन के ग्रन्थों * में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सचित्त व अचित्त सभी प्रकार के द्रव्य जिनको गृहस्थ रखता है परिग्रह के अन्तर्गत हैं।

सचित्त अचित्त मिश्र द्रव्य, तिण में आगे पीछे सर्व ।
ए सगलो परिगरो ए, ते ममता मांहि खरो ए ॥
सचित्त अचित्त सघला ही ताहि, गृहस्थ रे परिग्रह मांहि॥
कह्यो उववाई उपांग में ए, वलि सुयगडाअंग में ए ॥

* उववाई, उपांग सुयगडाअंग आदि।

सचित्त अचित्त एवं मिश्र द्रव्य अनन्त है। मानव इनके भोग उपभोग में रात दिन लगा है फिर भी उसकी तृप्ति नहीं हो रही है। जिस गृहस्थ ने त्याग का महत्त्व समझा और इन द्रव्यों के उपयोग के सम्बन्ध में जो नियम लिया, जिन द्रव्यों का त्याग किया वह उसका व्रत है एवं जिन द्रव्यों का उसने आगार रखा, उनके भोग उपभोग में छूट रखी, वह उसका अव्रत है। जैन सूत्रों में व्रत एवं अव्रत का सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है। श्रीमद् भागवद्गीता का त्याग और भोग एवं जैन दर्शन का व्रत एवं अव्रत एक ही वस्तु है। मानव को त्याग में जितना आनन्द मिलता है उतना भोग में नहीं। त्याग का आनन्द स्थायी है, टिकने वाला है। भोग का आनन्द क्षणिक है, जल्दी ही खत्म होने वाला है। अतः सद्-गृहस्थ को धीरे धीरे त्याग मार्ग की ओर बढ़ते रहना चाहिये और भोग मार्ग में कमी करते रहना चाहिये। व्रत में वृद्धि करो अव्रत को घटाओ, यही तो मानव का लक्ष्य होना चाहिये।

त्याँरो श्रावक कियो प्रमाण, त्याग्यो ते व्रत पिछाण।
बाकी अव्रत में राखियो ए, सूत्र छै साखियो ए॥

द्रव्य के उपभोग में आदर्श-गृहस्थ परिमाण करता है, मर्याद बांधता है, त्याग करता है, यही उसका व्रत है। अपनी कमजोरियों के कारण वह श्रावक कतिपय द्रव्यों का आगार रखता है। उसके उपभोग की छूट रखता है। यह उसका

अव्रत है, आगार है। हमारा आदर्श व्रत है, त्याग है। अव्रत नहीं, भोग नहीं।

भूखे को रोटी दो—धर्म होगा। प्यासे को पानी पिलाओ, धर्म होगा। गरीब को कपड़ा दो, पैसा दो—धर्म होगा। अकाल के समय आम जनता में अन्न का वितरण करो, साग सब्जी का बन्दोबस्त करो—धर्म होगा। हरी भरी खेती पर टीड्डी दल ने हमला किया, खेती चौपट होने लगी। खेती की रक्षा के लिये टिड्डी दल पर आक्रमण करो, खतरनाक रसायनिक द्रव्यों को काम में लाकर टिड्डी दल का खात्मा कर दो—बड़ा धर्म होगा। इस प्रकार हम देखते हैं हर सामाजिक काम में लोग धर्म की ओट ले लेते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं। शराबी को शराब न मिली, वह बेचैन है। कहता है – बाबू मेहरबानी करके शराब पिलादो बड़ा धर्म होगा। मेरी आत्मा तुमको आशीर्वाद देगी। युवती विधवा काम-पीड़ा से बेचैन है। उसका पुनर्विवाह करा देना बड़ा धर्म गिना जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि लोग परिग्रह से धर्म करना चाहते हैं परन्तु जो परिग्रह स्वयं ही अनर्थ का मूल है उसे भोगने या भोगवाने में धर्म कैसे होगा? भूखे को खिलाना, प्यासे को पिलाना, नंगे को ओढ़ाना, अकाल, में सहाय्य करना आदि सारे काम समाज में रहने के नाते समर्थ मानव को करने पड़ते हैं। यह उसका सामाजिक कर्तव्य है। परन्तु इन कामों का धर्म से क्या सम्बन्ध? पैसे से यदि इस प्रकार के सस्ते

धर्म सम्भव होते, तब तो फिर Lord Jesus Christ स्वर्ग में धनिकों के प्रवेश पर रुकावट न डालते।

परिग्रह दियो धर्म हेत, तिण री आज्ञा देत।
कहि कहि ने दिरावता ए, एहवो धर्म करावता ए॥
धन थी धर्म न थाय, तीन काल रे माँय।
साँचो करि जाणिजो ए, शंका मति आणिजो ए॥

धर्म के नाम पर परिग्रह धन दौलत भोजन वस्त्र आदि किसी को देना, दिलाना व देने वाले को अच्छा समझना क्या उचित है? परिग्रह स्वयं त्याज्य है, छोड़ने योग्य है। फिर ऐसे परिग्रह से धर्म कैसे? जैन दर्शन में जगह जगह परिग्रह को दुःख का हेतु माना गया है।

चित्तमंतमचित्तं वा, परिगिज्झ किसामवि।
अन्नं वा अणु जाणाइ, एवं दुक्खा ण मुच्चइ॥

सुयगड़ांग

जो मानव सचित्त (जीव सहित) व अचित्त (जीव रहित) कम या अधिक मात्रा में स्वयं परिग्रह रखता है, परिग्रह रखने के लिये दूसरों को आदेश देता है एवं परिग्रह रखने वाले व्यक्ति का समर्थन करता है, उसे अच्छा समझता है वह दुःख से कभी छुटकारा नहीं पाता। अर्थात् परिग्रह रखने वाला, रखाने वाला व परिग्रह को अच्छा समझने वाला कभी भी आत्म उत्थान का कार्य

नही कर सकता। वह संसार में फंसा रहता है। उसके लिये तो दुनियाँ में टका ही सार है—

टका ब्रह्मा, टका विष्णु टका दिव्य माहेश्वर:—

रुपया, चमकता हुआ रुपया, टनटनाता हुआ रुपया, ब्रह्मा है, विष्णु है, महेश है। रातदिन वह एक ही ध्यान में मस्त है—भज कलदारं, भज कलदारं, कलदारं भज कलदारं—यही उसकी माला है, जाप है। ऐसे मानवों के प्रति कवि के शब्द भी देखिये—

परिग्रह माँहि रक्त, त्याँ ने आवे नहीं सम्यक्त।
मुरछा तिण में सही ए, समझ पड़ै नहीं ए॥
ज्याँरे परिग्रह सूं परतीत, तेतो होसी घणा फजीत।
नरकाँ जावसी ए, जोखाँ खावसी ए॥

जो मानव परिग्रह संग्रह में तल्लीन है, अनुरक्त है, आसक्त है उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती। सच्चे एवं यथार्थ ज्ञान से वह दूर है। परिग्रह के प्रति ममत्व रहने से मानव अपना साधारण विवेक खो बैठता है। ऐसा विवेकहीन मानव महा निकृष्ट स्थान—नरक में निवास किया करता है जहां भयंकर जोखें उसका रक्त चूसती है।

इण थी वधे संसार, जावे नरक निगोद मझार।
घणो रड़वड़े ए, जक नहीं पड़े ए॥

परिग्रह संग्रह संसार परिभ्रमण की वृद्धिका मुख्य कारण है। परन्तु मानव इसके पीछे पागल है, वेचैन है। उसे क्षण भर की भी शान्ति नहीं मिलती, जक नहीं पड़ती। वह धन के लिये परिग्रह के लिये भागता है, दौड़ता है, चक्कर लगाता है, रड़-बड़ता है, इसके पीछे मर मिटता है। पुनः जन्म लेता है फिर अपना पुराना धन्धा चालू रखता है। परिग्रह में उन्मत्त होकर वह कभी नरक में जाता है कभी निगोद में। शान्ति उसे कहां ?

इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि,
इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं।
तं एव मेवं लालप्पमाणं,
हरा हरंति त्ति कहं पमाओ॥

उत्तराध्ययन १४-१५

यह वस्तु मेरी, यह मेरी नहीं। यह काम मुझे करना, यह नहीं करना—इस प्रकार के विचारों के उधेड़ बुन में लगे हुए मानव के काल रूप चोर एक दिन अचानक प्राणों को हर लेता है। उसे परलोक में पहुंचा देता है।

पुत्ता म' त्थि धनम्म' त्थि इति बालो विहञ्ञति।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि कुतो पुत्तो कुतो धनं॥

धम्मपद-५-३

मेरा पुत्र, मेरा धन—इस प्रकार सोच कर मूर्ख मानव परेशान

होता है। मनुष्य अपना आप नहीं है, पुत्र और धन इसके कहाँ तक होंगे ?

जैन-दर्शन के अनुसार गृहस्थ-जीवन में त्याग और अत्याग, व्रत और अव्रत का बड़ा महत्त्व है। इसको समझ लेने से मानव आत्म उत्थान की ओर अग्रसर होने लगता है। दुनियाँ में अनन्त भोग्य वस्तुयें हैं। एक जन्म में तो क्या, अनन्त जन्मों में भी इन अनन्त वस्तुओं के अनन्तवें भाग को भी भोगा नहीं जा सकता। लालसा पिपासा, भोगने की इच्छा का कभी अन्त होगा नहीं। इनको जितनी अधिक मात्रा में भोगा जाता है, लालसा बढ़ती ही जाती है। अतः मानव भव के इस छोटे-से जीवन में कहीं न कहीं तो सन्तोष करना ही होगा।

सचित्त अचित्त द्रव्य ताहि, गृहस्थ रे अव्रत माँहि।
ज्याँरो त्याग कियो नहीं ए,त्याँरो पाप लागे सही ए॥
तीन करणा लागे पाप, तिणसूं दुःख भोगवे आप।
त्यांने त्याग्यां व्रत होसी ए, जब होसी खुशी ए॥
करण जोग घालीजें जाण, कीजे शुद्ध पचक्खाण।
चोखे चित्त पालजो ए, दूषण टालजो ए॥

दुनियाँ सचित्त एवं अचित्त द्रव्य से भरपूर है। जड़ और चेतन समूची दुनियां को ठोस ठोस कर भरे हुए हैं। मानव अपने सुविधे अनुसार जब चाहे इनको काम में लाया करता है।

इनका उपयोग कर सकता है। अतः ये सब अव्रत में हैं। गृहस्थ ने इन में से एक का भी त्याग तो किया नहीं। अतः अत्याग भावना के कारण उसे निरन्तर पाप लग रहा है। मानव-मन में हर समय इन सबको काम में लाने की लालसा बनी है। जब मौका मिलता है इनका उपयोग करता है। परन्तु जरा-सा सोचें। संसार का सर्व श्रेष्ट प्राणी मानव है। मानव भी एक नहीं अनेक हैं। ऐसे अनेक मानव इन वस्तुओं का उपभोग करना चाहते हैं। अपनी शक्ति और सामर्थ्य अनुसार इनको भोगने के लिये इन पर अधिकार जमाना चाहते हैं। नतीजा होता है— संघर्ष, युद्ध, और अशान्त वातावरण। इसे रोकने का एक मात्र उपाय है अपनी जरूरतों को सीमित करना, परिग्रह की मर्याद बांधनी। जब मानव अपनी जरूरतों की सीमा कर लेता है तब सीमा के बाहर की वस्तुओं के प्रति उसे कोई आकर्पण नहीं रह जाता। जिन जिन वस्तुओं का उसने त्याग किया वह व्रत है। जो मानव जितना अधिक त्याग करता है, जितना अधिक अपनी जरूरतों को घटाता है वह उतना ही सुख और शान्ति का अनुभव करता है। उसका छोटा-सा संसार है, छोटा-सा घर है, छोटा-सा परिवार है। मामूली जरूरतें हैं। सीधा सादा आडम्बर हीन जीवन है। वह सन्तोपी है, अतः परम सुखी है।

व्रत छट्ठा

दिग् विरति व्रत

एक जमाना था जब लोग गांवों में रहते, खेती करते, सूत कातते, कपड़ा बुनते, छोटे छोटे औजार बनाते और अपना गुजारा करते। सुख और शान्ति से जीवन बिताते। मोटा खाना पीना और सादगी से रहना।

जमाना बदला, हवा बदली, विज्ञान ने तरक्की की। मानव ने दुनियां के कौने कौने को छान डालने की चेष्टा की। वह सफल भी हुआ और आज यह हालत है कि मानव चन्द्र-लोक की यात्रा करने की चेष्टा कर रहा है। सम्भव है आगे चल कर वह तारे और नक्षत्रों पर भी अपना झंडा गाड़ने का प्रयत्न करे।

वह रेल मोटर वायुयान व समुद्री जहाजों में बैठ कर तेज रफ्तार से दुनियां में भ्रमण करता है। १०-१५ दिन में— Round the world Tour—समूची दुनियां की सैर करने वाले अनेक युवक मिलते हैं।

मानव कहां से कहां चला गया? कितनी तरक्की कर ली उसने? मौज से बैठा हुआ वह हवा में उड़ा जा रहा है। अथाह पानी के नीचे पनडुब्बियों में आराम से बैठ कर वह तैरता जा रहा है। एयर कन्डीसन्ड रेल के डिब्बे में वह पृथ्वी तल को रौंदते हुए भागा जा रहा है। मानव की सुख सुविधा के लिये विज्ञान ने सब साधन उपस्थित किये। पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण

ऊंचे नीचे, जिधर चाहे मानव आराम से परिभ्रमण कर सकता है। यात्रा में कोई कष्ट नहीं, कोई तकलीफ नहीं। फिर भी मानव आज बेचैन है। वह भीतर ही भीतर रो रहा है। उसके झंझट इतने बढ़ गये हैं कि वह इन यात्राओं से तंग आ गया है। उसे जीवन में सुख और शान्ति नहीं मिल रही है। विज्ञान की चकाचौंध ने उसे भ्रम में डाल दिया है और वह पौद्गलिक वस्तुओं में सुख की खोज़ कर रहा है। क्षणिक सुख जरूर मिलता है परन्तु फिर दुःख तैयार है। जीवन के झंझटों से उसे एक मिनिट भी फ़ुरसत नहीं।

ऐसे कृत्रिम वैज्ञानिक जीवन से तंग आकर मानव ने अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह—इन पांच अणुव्रतों को आंशिक रूप से अपनाया। अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनु-सार नियम लिये। व्रत धारण किये। इस नये जीवन में मानव को सुख और शान्ति के दर्शन हुए। बहुत से झंझटों से उसे राहत मिली। जीवन में उसने हल्कापन अनुभव किया।

उसे सुख और शान्ति का सुन्दर मार्ग हाथ लगा। अब वह इस रास्ते से और आगे बढ़ना चाहता है। अपनी आवश्कताओं अपनी जरूरतों में वह और संकोच करना चाहता है। अपनी कमजोरी का ख्याल रखते हुए अणुव्रत अपनाते समय उसने इनमें बहुत-सी छूट रखी थी वह छूट सर्व स्थानों के लिये खुली थी। उसकी कोई सीमा न थी। अब वह उस छूट को सीमा बद्ध करना चाहता है।

पांच अणुव्रतों में रखी हुयी छूटों को सीमित करने के लिये तीन गुणव्रतों का विधान है। उनके नाम हैं—

(१) दिग् विरति व्रत।

(२) भोगोपभोग परिमाण व्रत।

(३) अनर्थ दण्ड विरति व्रत।

"गुणाय चोप काराय अणुव्रतानां व्रतं गुणव्रतम्"

अणुव्रतों के गुणों को बढ़ाने वाला, उनका उपकार करने वाला उनकी पुष्टि करने वाला व्रत गुणव्रत कहलाता है।

दिग् विरति व्रत में मानव यात्रा—गमनागमन के लिये दिशा की मर्याद् करता है। पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ऊँची नीची जो भी दिशायें हैं वह उन दिशाओं में आने जाने की या कार्य करने की सीमा बांधता है अर्थात् प्रत्येक दिशा में वह इतनी मीलों के दायरे में रहते हुए ही अपने सारे काम करेगा। इस दायरे के बाहिर वह किसी भी हालत में, किसी भी कार्य के लिये न आ जा सकेगा।

दिग् गमन की मर्याद करने वाला केवल स्वयं आने जाने का ही त्याग नहीं करता परन्तु सीमा से बाहर रहने वालों के साथ व्यापार का सम्बन्ध, लेने देने का सम्बन्ध, पत्र-व्यवहार का सम्बन्ध आदि सब का त्याग करता है। प्रमाणित क्षेत्र के बाहर वह किसी के साथ किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं रखता। इस प्रकार से दिग् विरति व्रत अपनाने से मानव के गमनागमन व कार्य क्षेत्र का एक दायरा हो जाता है। दुनियां में दूर दूर

तक चक्कर लगाने की उसकी भूख मिट जाती है। जीवन के बहुत-से झंझटों से उसका छुटकारा हो जाता है। अपने सीमित दायरे में रहते हुए वह अपना सारा काम व्यवस्थित रूप से किया करता है।

अपने कार्य क्षेत्र की मर्याद करने के पश्चात् मानव दूसरा गुण-व्रत भोगोपभोग परिमाण व्रत—अपनाता है। इसमें वह भोग्य वस्तुओं के व्यवहार की मर्याद करता है और फिर तीसरे गुणव्रत—अनर्थ दण्ड विरति व्रत—में तो मानव और भी संकोच करता है। विना प्रयोजन विना मतलब वह कोई भी हिंसामय कार्य नहीं करता।

पांच अणुव्रत धारतां, मोटी बांधी पाल।
छोटां री अव्रत रही, ते पाप आवै दगचाल॥
तिण अव्रत ने मेटवा भणी, पहिलो गुणव्रत देख॥
दिशि मर्यादा मांड ने, टालै पाप विशेष॥

सुख और शान्ति के इच्छुक मानव ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह—इन पांच अणुव्रतों—नियमों का प्रण लिया। अपनी कमजोरी का ख्याल रख कर उसने इन नियमों में छूट-आगार भी रखा। अब वह इस छूट, आगार व अव्रत के क्षेत्र का संकोच करता है। दिशा की मर्याद करता है अर्थात् इतनी हद् इतनी सीमा के अन्तर्गत रह कर ही वह अपनी छूट अपने आगार का उपयोग कर सकेगा। इस नियम के धारण

करने से उसके अव्रत सेवन की, आगार की व छूट की सीमा बंध गयी। पांच अणुव्रत रूप पाल-रक्षापंक्ति में जो अव्रत रूप छिद्र रह गये थे, इस दिग् विरति व्रत से वे छिद्र बहुत कुछ अंशों में रुक जाते हैं।

दिग् विरति व्रत, व्रत संख्या के क्रम से, छट्ठा व्रत है और गुणव्रत की अपेक्षा से, पहला गुणव्रत है।

छट्ठो व्रत श्रावक तणूं, करै दिशि तणूं परमाण।
हिंसादिक त्यां छऊं दिशा तणी, मन में समता आण॥

छट्ठे व्रत-नियम में गृहस्थ पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ऊंची नीची—इन छव दिशाओं में गमनागमन आदि की एक मर्याद करता है। इस मर्यादित सीमा का वह कभी उलंघन नहीं करता। वह संतोष वृत्ति से अपना जीवन यापन करता है।

जीवन को सुखी बनाने के लिये सारे झंझटों से छुटकारा पाने के लिये और शान्ति से जीवन बिताने के लिये इस दिग् विरति-व्रत का खास महत्त्व है। ऐसे मानव अनेक हैं जिनका व्यापार आज की वैज्ञानिक दुनियां में प्रायः सब प्रमुख शहरों में फैला हुआ है। वायुयान की सुलभता के कारण ऐसा मानव अपने व्यापार को संभालने के लिये अथवा व्यापारिक झमेलों को सलटाने के लिये, बार बार हवाई-जहाज में चक्कर लगाता है। हवाई-यात्रा खतरे से खाली नहीं। कभी इंजिन फेल करता है। कभी पेट्रोल की टंकी में आग लग जाती है। कभी

वायुयान पहाड़ की चोटी से टकरा जाता है। कभी कुहासे में रास्ता भूल जाता है। कोई भी कारण हुआ कि दुर्घटना तैयार है। दुर्घटना होते ही दुनियाँ में व्यापार का जाल बिछाने वाला मानव चकनाचूर होकर पृथ्वी तल पर बिखर जाता है। ऐसा मानव यदि दिशा की मर्याद करले। व्यापार को घटा कर अपने गमनागमन व कार्य क्षेत्र का छोटा-सा दायरा रखे, तो वह बहुत से झंझटों से बच जाता है। वह शान्ति का अनुभव करता है।

छव प्रकार की दिशाओं में साधारण गृहस्थ को गमनागमन व कार्य क्षेत्र के लिये कितनी मर्याद करनी चाहिये इस प्रसंग में कवि श्री के शब्द देखिये—

ऊंची नीची दिशि कोस बे च्यार, तिण बाहिर सावद्य परिहार।
त्रिछी दिशि पांच सय प्रमाण, इण विधि दिशि तणो पचखाण॥

आकाश में ऊंचा उठना और उड़ना आनन्द दायक हो सकता है परन्तु ऊपर आकाश की हवा हल्की होती है। मानव को श्वास लेने में दिक्कत होती है। ज्यादा ऊपर जाने से तो मानव जीवन को खतरा भी हो सकता है। अतः ऊंची दिशा की मर्याद कवि के शब्दों में दो से चार कोस तक काफी है। पृथ्वी तल को फोड़ कर जमीन में नीचे उतरना भी बड़ा खतरनाक है। पापी पेट के लिये कोयले की खानों में काम करने वाले बिचारे गरीब मजदूर जमीन तल की भयंकर गरमी और नमी को सहन

तो करते हैं, परन्तु यह स्वास्थ्य के लिये बड़ी खतरनाक है। चार कोस तक की सीमा बांध लेने से गृहस्थ इस से नीचे जाने की चेष्टा नहीं करता और वह इस नियम के कारण बहुत से खतरों से बच जाता है।

कवि की भावना के अनुसार पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण-प्रत्येक दिशा में पांच सौ कोस (एक हजार मील) तक गमनागमन व कार्य-क्षेत्र की हद बांध लेना साधारण मानव के लिये काफी है। हर मानव को अपनी सुविधा एवं वर्तमान परिस्थिति को देख कर इस सीमा में कमी वेसी रख लेनी चाहिये। अन्वेषण-प्रेमी वैज्ञानिक मानव आज की दुनियां * के क्षेत्र फल जितनी भी हद बांध ले तो भी कुछ सीमा में तो वह आ ही गया। चन्द्रलोक गमन के खतरे से तो वह बच ही जावेगा। असल में मानव दिशा की सीमा जितनी कम रखेगा उतना ही वह सुखी बनेगा। कुछ भी हो अपनी मजबूती और दृढ़ता के अनुरूप उसे सीमा तो कर ही लेनी चाहिये। मर्यादा होते ही उसकी लालसा आकांक्षा भी सीमित हो जाती है और वह अपने सीमित दायरे में रहते हुए अपनी आजीविका खूब व्यवस्थित ढंग से चलाता है।

---

* आज के वैज्ञानिकों की दुनियां बहुत छोटी है। इसी दुनियां में वे घूमते फिरते और अन्वेषण करते हैं। इस दुनियां में जन गणनानुसार करीब २॥ अरब मानव रहते हैं। जैन दर्शन के लोकाकाश का यह एक अति सूक्ष्म अंश है।

पृथ्वी आदिक जीव न मारे,
छोटाइ झूठ तणुं परिहार।
चोरी न करे मैथुन टाले,
धन सुं ममता पाछी वाले॥
मांहि बैठो बाहिरलो लेवो देवो,
तिण रा त्याग करे स्वयमेवो।
बाहिरली वस्तु मांहि मंगावे नांही,
मांहिली वस्तु बाहिर दे नांहि॥

दिशा की मर्याद करते ही मानव का कार्य-क्षेत्र संकुचित हो जाता है। अपनी मर्यादित सीमा के बाहिर जाकर वह कभी हिंसा नहीं करता, भूठ नहीं बोलता, चोरी नहीं करता, व्यभिचार सेवन नहीं करता, धन परिग्रह में ममत्व नहीं रखता, अपनी सीमा का वह किसी हालत में उलंघन नहीं करता। सीमा के बाहिर से वह किसी भी वस्तु को नहीं मंगाता और न कभी सीमा के बाहिर किसी वस्तु को भेजता ही है। अपने दायरे के बाहिर रहने वाले लोगों के साथ वह कोई लेन देन व पत्र व्यवहार नहीं करता।

मानव का कार्य क्षेत्र जितना संकुचित होगा उतना ही वह सुख और शान्ति का अनुभव करेगा। जिस आदमी का व्यापारिक क्षेत्र जितना बड़ा होता है वह उतना ही दुःख भी

पाता है। नाना प्रकार के व्यापारिक लेन देन के झंझट उसका कभी पिण्ड छोड़ते नहीं। एक झंझट मिटता है, तो दूसरा तैयार है। दूसरा मिटा, तो तीसरा कमर कसे खड़ा है। जीवन मिट जावेगा, खत्म हो जावेगा। परन्तु झंझट तो फिर भी खड़ा का खड़ा रह जावेगा। अतः शान्तिमय, सुखमय, सन्तोषमय जीवन विताने वाले के लिये तो दिग् विरति व्रत एक अनुपम साधन है।

जघन्यतो एक आश्रव त्यागे कोई,
उत्कृष्टा आश्रव त्यागे पाँचुंई।
एक करण तीन जोग सुं जाण,
बारला आश्रव रा करे पचक्खाण॥

कांई दोय करण तीन जोग से ताइ,
त्याग करी अव्रत दे मिटाइ।
कांई तीन करण तीन जोग सुं जान,
पाँचु आश्रव रा करे पचक्खाण॥

बारला आश्रव ना कीधा त्याग,
अव्रत छोड़ी छै आण वैराग।
क्षेत्र थकी सर्व क्षेत्र में जाण,
काल थकी जावजीव पचक्खाण॥

मानव-जीवन को नीचे गिराने के रास्ते, कर्म प्रवेश के मार्ग

अर्थात् आश्रव* द्वार पांच है—हिंसा, झूठ, चोरी, स्त्री सेवन और परिग्रह संग्रह। एक साधारण गृहस्थ सम्पूर्ण रूप से इन पांच आश्रवों के सेवन का त्याग नहीं कर सकता। यह सम्भव नहीं परन्तु फिर भी अपनी मजबूती के अनुसार इनके उपयोग में आश्रव सेवन में एक हद तो बांध ही सकता है। इस हद-सीमा के बाहिर वह आश्रव सेवन का त्याग कर लेता है। कोई एक आश्रव का, कोई दो का, कोई तीन का, कोई चार का और कोई पांचों का। पुनः अपनी वैराग्य वृत्ति व मजबूती को देख कर वह एक करण तीन योग व दो करण तीन जोग व तीन करण तीन योग से अपनी मर्यादित सीमा के बाहिर जाकर आश्रव सेवन का त्याग करता है। यह त्याग जीवन पर्यन्त सर्व क्षेत्रों के लिये है। श्रावक-शिष्य दिग् विरति व्रत अपनाते समय प्रतिज्ञा करता है—हे गुरुदेव! मैं ऊँची नीची पूर्व पश्चिम आदि दिशा में जाने का परिमाण करता हूं। मैं खुद अपनी इच्छा से मर्यादित दिशा से आगे जाकर हिंसा, असत्य, चौर्य, स्त्री सेवन एवं परिग्रह संग्रह—इन पांच आश्रवों के सेवन करने का त्याग करता हूं। मैं जीवन पर्यन्त मन से, वचन से और शरीर से इस व्रत का पालन करूंगा।

परन्तु ऐसा नियम लेते समय, दिशा की मर्याद करते समय कमजोर गृहस्थ कुछ आगार-छूट रख लिया करता है। जो मजबूत

---

*आश्रव सम्बन्धी पूरी जानकारी के लिये जीव-अजीव पुस्तक का अध्ययन करना चाहिये। करण और योग का विवेचन भी इसी पुस्तक में मिलेगा।

और दृढ़ है वह कोई छूट नहीं रखता। विपत्ति का, प्रतिकूल परिस्थिति का, वह दृढ़ता से सामना करता है। वह प्राणों पर खेल जाता है पर अपने नियम में वट्टा नहीं लगने देता। आगार या छूट रखने से अव्रत रूप पाप लगता रहता है परन्तु कमजोर मानव का तो यही सहारा है। आगार के कारण प्रतिकूल परिस्थिति में नियम भंग हो जाने पर भी व्रत भंग का दोष नहीं लगता।

कमजोर मनोबल वाले मानव के लिये आगार सहारा क्यों है इसे समझाने के लिये कवि उदाहरण पेश करता है—

कोई देवादिक तिण ने नाखे वार,
तो पिण नहीं सेवै आश्रव द्वार।
कोई कष्ट पड्याँ राखे छै आगार,
पोता री कचाइ जाणे तिवार॥
कोई मंत्री देवादिक ने बुलावै,
तिण आगे आप रो काम करावै।
ते पिण छट्ठो व्रत लियो तिण वार,
इतनूं पहिलाँ राख्यो आगार॥
इत्यादिक राखे आगार अनेक,
आगार विनाँ करे नहीं एक।

आगार राख्याँ अव्रत पाप लागे,
विन आगार कियाँ व्रत भांगे ॥

मानव ने दिशा की मर्याद बांधी। इसी मर्याद के बाहिर पांच आश्रव सेवन का त्याग किया। संयोग वश किसी शक्तिशाली मानव या देव ने उस मानव को उस मर्यादित सीमा के बाहिर जवरन् उठा कर पटक दिया। ऐसी विकट और प्रतिकूल परि-स्थिति में वह विचारा क्या करे ?

यदि वह आश्रव सेवन करता है, तो व्रत भंग का दोषी बनता है और अगर आश्रव सेवन नहीं करता, तो प्राणों से हाथ धोता है। व्रत धारण करते समय आगार-छूट रखने वाले ऐसी परि-स्थिति में अगर आश्रव सेवन करें, तो व्रत भंग के अपराधी नहीं।

इसी प्रकार से यदि ऐसे मानव पर कोई भयंकर विपत्ति कष्ट आ पड़े और कष्ट को मिटाने के लिये मंत्र प्रभाव से किसी देव भूत यक्ष को मर्यादित सीमा के बाहिर से बुलाना पड़े, अथवा भयंकर मरणान्त कष्ट के समय मर्यादित क्षेत्र से बाहिर के किसी डाक्टर को बुलाना पड़े, दवा मंगानी पड़े, तो आगार रखे हुए मानव को व्रत भंग का दोष नहीं लगता। जिनको अपनी मजबूती पर पूरा भरोसा नहीं वे दिशा-व्रत अपनाते समय आगार छूट रख लिया करते हैं। आगार-छूट से अव्रत रूप पाप जरूर लगता रहता है परन्तु संकट के समय यह एक सहारा है। आगार

मानव की कमजोरी का चिह्न है। यह आदरणीय नहीं, फिर भी कमजोरों के लिये यह जरूरी है।

छट्ठे दिग् विरतिव्रत को समाप्त करते हुए कवि कहता है कि—

छट्ठा व्रत रो यहु विस्तारो, ते कहतां नहीं आवे पारो।
ये संक्षेप कह्यो विस्तार, बुद्धिवन्त जाण लेसी अनुसार॥

छट्ठा व्रत बहुत विस्तृत रूप से भी बताया जा सकता है परन्तु मैंने तो इसे संक्षेप में ही समझाने की चेष्टा की है। सुविज्ञ पाठक व्रत के रहस्य को समझें और अपने कार्य-क्षेत्र की मर्याद करके जीवन के झंझटों में कमी करें और सुख शान्ति के साथ जीवन बितावें।

छट्ठे व्रत एहवा पचक्खाण, माँहि घणा द्रव्यादिक जाण।
तेहनी अव्रत टालण काज, सातमूं व्रत कह्यो जिनराज॥

छट्ठे व्रत में गृहस्थ ने जो दिशा की मर्याद की, कार्य-क्षेत्र की सीमा बांधी, उस सीमित क्षेत्र में अनेक मानवोपयोगी द्रव्य विद्यमान हैं। इन द्रव्यों के व्यवहार की, भोग उपभोग की मर्याद करने के लिये सातवें व्रत का विधान किया गया है।

व्रत सातवां

भोगोपभोग परिमाण व्रत

भोग्य वस्तुयें अनन्त हैं। यदि इनको भोगने के लिये प्राणी अनन्त बार भी जन्म धारण करे, तो भी इन सब को तो भोग नहीं सकता।

"न भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता"—भोगों का भोग्य सामग्री का अन्त नहीं होता, परन्तु मानव का अन्त हो जाता है। इन द्रव्यों को कितना ही भोगो, भूख मिटने वाली नहीं। जितना ही अधिक भोगा जाता है भूख उतनी ही अधिक बढ़ती है।

नामी स्टोरों और कम्पनियों के चकाचौंध मचाने वाले शौ-रूम (Show Room) को देख कर मानव-मन में उन सारी वस्तुओं को खरीद लेने की कल्पना उठती है। यदि अंटी गरम हो और फोकट की कमाई हो, तो सम्भव है बहुत-सी सुन्दर सुन्दर नये डिजाइन वाली वस्तुयें खरीदी जाय। इन स्टोरों में फिर विलायत से नयी वस्तुओं का नया चलान आता है। मानव-मन पुनः पिघल जाता है। बैंक बैलेंस में कमी आ ही जाती है। आखिर एक मानव कितनी चीज खरीदेगा।

हम युवक हैं। शौकीन हैं। कला से परिपूर्ण एवं विलासिता की प्रतीक अनेक वस्तुयें हमारे घर में देखने को मिलेगी। दो रेडियो सेट हैं। तीन टेलीफोन हैं। पांच रोलस राय मोटरें हैं। वायुयान खरीदने की बात चीत चालू है। सभी वस्तुयें हमारे

पास हैं फिर भी नये डिजाइन वाली वस्तुओं को खरीदे बिना हम से रहा नहीं जाता। हम आदत् से लाचार हैं।

लोग कहते हैं मैं अधेड़ हो गया हूं। धोले भी चमकने लगे हैं। चेहरे में झुर्रियां भी दीखने लगी हैं। परन्तु मेरा मन अभी जवान है। क्यों न भोग्य वस्तुओं का ज्यादा से ज्यादा मजा लूटूं? आखिर मेरे इस विशाल धन का होगा क्या?

बुढ़ापे ने आ घेरा। शरीर की शक्ति क्षीण होने लगी। रोगों को भी मोटा शिकार हाथ लग गया। डाक्टरों को मैंने बुलाया। मुंह मांगा धन दिया। फिर भी वे मुझे आराम न पहुंचा सके। संसार की सुन्दर से सुन्दर भोग्य सामग्री मेरे विशाल भवन में सजायी पड़ी है, परन्तु मैं लाचार हूं। एक को भी भोग नहीं सकता। इधर मृत्यु भी तकादा पर तकादा कर रही है।

अब मैंने समझा, भोग्य वस्तुओं की असारता समझी। इनसे मुझे महा प्रस्थान के समय कोई सहारा मिलने वाला नहीं। मैंने अपने जीवन को बरबाद कर डाला। इनके पीछे मैं पागल था और पागलपन में अपना सब कुछ गंवा दिया। आचार्य श्री ने मुझे खूब समझाया भी था, परन्तु मैंने कोई ध्यान न दिया। अब क्या हो?

इन भोग्य वस्तुओं की ऐसी असारता को समझते हुए इस सातवें व्रत को धारण करना चाहिये। अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार भोग्य पदार्थों के उपयोग में कमी करते रहना

चाहिये। जीवन को सुखी बनाने का यह सर्वोत्तम साधन है। भोग्य सामग्री में मर्याद ही इस व्रत का उद्देश्य है।

सातमूं व्रत श्रावक तणूं,
तिण में उपभोग परिभोग नां त्याग।
गमती वस्तु त्यागै तेहने,
आवै छै वैराग।

सातवें व्रत में उपभोग और परिभोग में काम आने वाले द्रव्यों का यथाशक्ति त्याग करने का विधान है। अपनी प्रिय वस्तु का त्याग तभी सम्भव है, जब मन में वैराग्य भावना हो।

भोग आवे एक वार में, ते कहिये उपभोग।
वारंबार भोग आवै जीव ने, तिण ने कह्यो छै परिभोग॥

भोग्य वस्तुयें अनेक प्रकार से काम में लायी जाती है। कई वस्तुयें तो ऐसी हैं, जो सिर्फ एक ही वार भोगने में काम आती है। इनका नाम है उपभोग, जैसे—भोजन पानी आदि। कई वस्तुयें ऐसी हैं, जो बारबार काम में लायी जाती है। इनको कहते हैं परिभोग, जैसे—वस्त्र, शय्या आदि। जो व्यक्ति जितनी मात्रा में इन उपभोग व परिभोग वस्तुओं का त्याग करता है, अपनी जरूरतों में कमी करता है, वह व्रत है। धार्मिक दृष्टि से तो व्रत लाभदायक है ही, सामाजिक, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से भी देखा जाय, तो इस व्रत की उपयोगिता प्रत्यक्ष सिद्ध है। मानव-

समाज ही को लीजिये। अनेक मानव हैं सभी तो पौद्गलिक सुख के इच्छुक हैं। सभी तो इन वस्तुओं को भोगना चाहते हैं। परन्तु मनुष्य का स्वभाव ऐसा है कि वह अपने लिये अपने समाज के लिये, अपने देश के लिये व अपने राष्ट्र के लिये ज्यादा से ज्यादा इन पौद्गलिक भोग्य वस्तुओं पर अपना अधिकार चाहता है, अपने कब्जे में रखना चाहता है। दूसरे राष्ट्र वालों को भी इन्हीं चीजों की जरूरत है। उन्हें मिलती नहीं। वे वंचित रह जाते हैं। उनके मन में उस राष्ट्र के प्रति द्वेष-भावना जागृत होती है। युद्ध होता है, नर संहार होता है, रक्त की नदियां बहती हैं। जो ताकतवर होता है वही इस विशाल भोग्य सामग्री का स्वामी बन जाता है। कमजोर कुचल दिया जाता है। कमजोर के मन में द्वेष-भावना बनी रहती है। वह मौका पाकर फिर बगावत करता है, क्रान्ति मचाता है। फिर वही खून की नदियां। असल में पूछा जाय, तो युद्धों का मूल कारण है—भोग्य सामग्री, उपभोग परिभोग।

यदि प्रत्येक मानव उपभोग परिभोग की असारता समझ ले और अपनी भोग्य सामग्री में कमी करता जाय, तो कोई भी व्यक्ति उससे द्वेष न करेगा। वह स्वयं भी सुख और शान्ति का अनुभव करेगा, सारे झंझटों से बचा रहेगा। कहा जाता है कि यदि तुम्हें अपने शत्रु, वैरी बढ़ाने हों, तो धन इकट्ठा करो जितना धन संचय करोगे उतने ही दुश्मन भी बढ़ जावेंगे। धन सीधी तरह से तो मिलता नहीं। हजारों गरीबों का हक छीनोगे

उन पर जुलम अन्याय अत्याचार करोगे, इन्कमटैक्स सेलटैक्स की चोरी करोगे, ब्लैक मारकेट करोगे, नौकरों चाकरों को तन्ख्वाह तो दोगे कम और काम कराओगे ज्यादा। व्यापारियों को तोल में कम दोगे और वेसी लोगे,—इन सारे कामों को करोगे तो धन मिलेगा और यह निश्चित है कि इन कामों में जो तुम्हारे सम्पर्क में आवेगा वही तुम्हारा भीतर ही भीतर दुशमन बन जावेगा और मौका पड़ने पर प्रतिशोध लेगा ही। अतः यह निश्चित है कि धन से, भोग्य सामग्री की बहुलता से मानव सुखी नहीं हुआ करता। अमेरीका आज दुनियाँ में सब से धनी देश है। युद्ध का खतरनाक सामान भी उसके पास मौजूद है। विलासिता की भी अधिकांश सामग्री अमेरीकनों के पास हैं। परन्तु आज अमेरीका रूस के भूत से डर रहा है, वह आत्म रक्षा के लिये अपना पैसा पानी की तरह बहा रहा है। कहीं उसका धन छिन न जाय। कहीं भोग्य सामग्री से वह वंचित न हो जाय। यह भय ही अमेरीका को खाये जा रहा है। जब अमेरीका का अधिकांश धन समाप्त हो जावेगा, जब वहाँ भोग्य सामग्री की बहुलता घट जावेगी जब वह दूसरे राष्ट्रों की सम श्रेणी में आ जावेगा, तब अमेरीका का भय भी भाग जावेगा। उसे बेचैनी भी न रहेगी। वह सुख की नींद सोवेगा। दुनियाँ में विषमता है, इस लिये तो अशान्ति है।

यदि मानव जैन-आदर्श पर चले, भोग्य सामग्री के उपयोग में कमी करता रहे अपनी जरूरतों को घटाता रहे, सादगी से

अपना जीवन व्यतीत करे, तो उसका जीवन परम सुखी बन सकता है। ऐसा व्यक्ति ही दुनियां में शान्ति बनाये रखने में सहायक हो सकता है।

आज दुनियां की आंखें पूंजीपतियों पर टिकी है। पूंजी-पतियों की विशाल धन-राशि एवं उनके विलासी जीवन में सहायक भोग्य सामग्री की बहुलता, साधारण जनता की दृष्टि में खटक रही है। जनता भूखी है, प्यासी है, गृहहीन है, वस्त्रहीन है। वह रइसों की रंगरेलियां देख कर मन ही मन क्रान्ति मचाने की सोच रही है। यदि ऐसा देख कर पूंजीपति चेत जांय, अपनी विलासिता पूर्ण रंगरेलियां बंद करदें भोग्य सामग्री में कमी करदें, धन का भी सदुपयोग करें, तो वे अब भी साधारण जनता को अपना मित्र बना सकते हैं। नहीं, तो नतीजा वही होगा, जो अब तक दुनियां में होता आया है।

भगवान महावीर ने उपभोग को अव्रत कहा है और अव्रत त्याज्य है।

उपभोग परिभोगनी, अव्रत कही भगवान।
त्यांरो त्याग करै सत्गुरु कने ते सातमूं व्रत प्रधान॥

उपभोग परिभोग अव्रत है। सद्गुरु की शाक्षी से या स्वयं इनका त्याग करने से व्रत होता है। जितनी मात्रा में इनका त्याग किया जाता है उतना ही व्रत है। उपभोग परिभोग अर्थात् भोग्य सामग्री को भोग करते समय क्षणिक आनन्द जरूर

मिलता है, परन्तु इसका नतीजा, इसका फल वड़ा वुरा होता है। इनको किम्पाक फल की उपमा दी गयी है।

उपभोग परिभोग काम छै, ते भोग महा दुःख खान।
किम्पाक फल नी दीधी ओपमा, भगवन्त श्री वर्धमान ॥

किम्पाक फल देखने में वड़ा सुन्दर, खाने में वड़ा स्वादिष्ट होता है, परन्तु खाने के वाद इसका नतीजा वड़ा भयंकर होता है। उपभोग परिभोग भी भोगने के समय वड़े आनन्द दायक हैं, परन्तु इनका परिणाम महा दुःखदायी है। ये मानव को वेचैन एवं दुःखी बनाते हैं।

सातवें व्रत में उपभोग परिभोग में काम आने वाले २६ प्रकार के द्रव्य वताये गये हैं। कवि ने पद्यों में इन छव्वीस द्रव्यों के नाम कितनी सुन्दरता से पेश किये हैं—

अंगोछा, दांतण फल अभिङ्गन, उवटण, पीठी ने मज्जन।
वस्त्र, विलेपन, पुष्प, आभरण, धूप खेवण, पीवण ने भक्खन ॥
उदन, सूप, विगय साग विमास, महूर, जीमण, पाणी, मुखवास।
वाहन, सयन पन्नी सचित्त, द्रव्य संख्या करि त्यागे एक चित्त ॥

(१) उल्लणिया विहि—रुमाल विधि—गीले शरीर को पोंछने के लिये अंगोछा Towels तौलिया आदि की मर्यादा करनी।

(२) दन्तवण विहि—दंतवन विधि—दांत साफ करने के लिये दंतुन, मंजन, पेस्ट, टुथपाउडर आदि की मर्याद करनी।

(३) फल विहि—फल विधि—केश एवं मस्तक को स्वच्छ एवं साफ करने के लिये आंवला, अरीठा व अन्य प्रकार के फलों की मर्याद करनी।

(४) अब्भंगण विहि—तेल मर्दन विधि—शरीर पर मालिश करने के लिये (For Massage) सरसों, तिल, नारियल आदि तेलों की मर्याद करनी।

(५) उव्वट्टण विहि—पीठी विधि—शरीर के चिकनेपन व मैलेपन को हटाने के लिये उवट्टन, पीठी, साबुन छाछ आदि की मर्याद करनी।

(६) मज्जण विहि—स्नान विधि—स्नान करने के जल का परिमाण करना।

(७) वत्थ विहि—वस्त्र विधि—पहिनने में काम आने वाले वस्त्रों की मर्याद करनी।

(८) विलेवण विहि—विलेपन विधि—शरीर को सुगन्धित करने के लिये लेपन में काम आने वाले द्रव्य-चन्दन, केशर कुंकुम, सेन्ट, स्नो, क्रीम आदि के उपयोग में मर्याद करनी।

(६) पुप्फ विहि—पुष्प विधि—सूंघने के लिये फूल, तमाखू, स्मेलिंग-साल्ट आदि द्रव्यों की मर्याद करनी।

(१०) आभरण विहि—आभूषण विधि—आभूषण व गहनों की मर्याद करनी।

(११) धूवण विहि—धूप विधि—धूप खेने में काम आने वाले पदार्थों—लोबान, अगर बत्ती आदि—की मर्याद करनी।

(१२) पेज्ज विहि—पेय विधि—पीने में काम आने वाले पदार्थों की मर्याद करनी जैसे—दूध, चाय, रबड़ी, शरबत, सोडा, लेमन आदि आदि।

(१३) भक्ख विहि—भक्ष्य विधि—भोजन के लिये पक्कान्न व मिठाई आदि की मर्याद करनी।

(१४) ओदण विहि—ओदन विधि—रन्धे हुए, उबाले हुए चावल, खिचड़ी घूघरी आदि की मर्याद करनी।

(१५) सूव विहि—दाल विधि—मूंग, मोठ, चना, रेहड़, आदि दालों की मर्याद करनी।

(१६) विगय विहि—विगय विधि—घी, तेल, दूध, दही आदि की मर्याद करनी।

(१७) शाक विहि—शाक विधि—साग भाजी Vegetables की मर्याद करनी।

(१८) महुर विहि—मधुरफल विधि—पके हुए मधुर फलों Fruits की मर्याद करनी जैसा—सन्तरा, केला, आम, जाम आदि।

(१९) जेमण विहि—भोजन विधि—भूख को मिटाने के लिये भोजन में काम आने वाले पदार्थों की मर्यादा करनी जैसे—रोटी।

(२०) पाणीय विहि—पानी विधि—पीने के लिये पानी की मर्याद करनी।

(२१) मुहवास विहि—मुखवास विधि—भोजन के पश्चात् मुख शुद्धि के लिये, चबाये जाने वाले पदार्थ जैसे—पान, सुपारी, इलायची, पिपरमेंट, सौंफ, धनिया आदि की मर्याद करनी।

(२२) वाहण विहि—वाहन विधि—सवारियों की मर्याद करनी। रेल, मोटर, साइकल, तांगा, ट्राम बस रिक्सा बैलगाड़ी, ऊंट इक्का आदि चीजें सवारियों के काम आया करती हैं।

(२३) शयण विहि—शयन विधि—सोने और बैठने के काम आने वाले शय्या, पलंग, मांचा, ढोलिया, कुर्सी, सतरंजी, पाट, बाजोट आदि पदार्थों की मर्याद करनी।

(२४) पन्नी विहि—पैर की रक्षा के लिये पहने जाने वाले जूता चप्पल, खड़ाउ, स्लीपर, मौजा आदि पदार्थों की मर्याद करनी।

(२५) सचित्त विहि—सचित्त विधि—हर तरह की सचित्त वस्तु जो भोजन में व मुंह में डालने में आवे उसकी संख्या आदि की मर्याद करनी।

(२६) द्रव्य विहि—द्रव्य विधि—खाने, पीने, पहिनने आदि में काम आने वाले सचित्त व अचित्त पदार्थों की मर्याद करनी।

इस प्रकार से उपभोग एवं परिभोग की सामग्री को २६ भागों में बांटा गया है। वास्तव में यह सामग्री असंख्यात है। मानव भव के छोटे-से जीवन में एक मानव इन सबका व्यवहार नहीं कर सकता। यदि मानव का दिल और दिमाग मजबूत हो, तो मामूली-सी उपभोग परिभोग सामग्री से वह अपना जीवन सुखमय बना सकता है। इस सामग्री को त्याग करने से मानव को जितना सन्तोष और सुख मिलता है, भोग में वह आनन्द नहीं। जिसकी जरूरतें जितनी ज्यादा होगी उसको उतना ही झंझट भी रहेगा।

भोग्य सामग्री की असारता समझ कर जो मानव वैराग्य वृत्ति से इन वस्तुओं की संख्या व परिमाण के सम्बन्ध में नियम लेता है, मर्याद करता है, वह धन्य है। प्रत्येक वस्तु का अलग अलग नाम लेकर करण एवं योग सहित त्याग करना चाहिये।

ए छब्बीस बोल तणूं प्रमाण, धन्य त्यागै ते समता आण।
नाम लेई विवरो कर लीजे, करण जोग घाली व्रत कीजे ॥

मनुष्य कमजोर प्राणी है। उसका मन चारों तरफ हर समय चक्कर काटता रहता है। इन छबीस प्रकार के द्रव्यों में उसे आकर्षण दीखता है। वह इनको ज्यादा से ज्यादा मात्रा में अपनाना चाहता है, भोगना चाहता है। भोगते समय उसे, थोड़ा-सा क्षणिक सुख जरूर मिलता है, परन्तु इसका नतीजा अच्छा नहीं हुआ करता। भोगने की लालसा कभी शान्त होती नहीं। ज्यों ज्यों मानव इन्हें भोगता है उसकी आन्तरिक ज्वाला बढ़ती ही जाती है। वह सन्तोष तो धारण करता नहीं और सन्तोष विना सुख नहीं।

ए छाइस बोल भोगवियाँ सॅताप,
भोगायां पिण लागै छै पाप।
अनुमोदियाँ धर्म किहा थी होय,
तीनूं ही करण सरिखा जोय ॥

छब्बीस प्रकार की उपभोग परिभोग सामग्री को मानव काम में लेता है, भोगता है। भोगे विना उसका काम चलता नहीं। परन्तु आत्म उत्थान की दृष्टि से इन द्रव्यों का भोग इनका व्यवहार आदरणीय नहीं। आत्म उत्थान होता है त्याग से, भोग से नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि भोग्य-सामग्री छोड़ने योग्य है,

त्याग करने लायक है। ऐसी त्याग करने लायक सामग्री को यदि हम दूसरों को भोगने के लिये दें, दान स्वरूप प्रदान करें, तो वह कार्य अच्छा कैसे कहा जा सकता है ? जिस चीज को खराब समझ कर हमने स्वयं छोड़ दी, वही चीज दूसरों के लिये अच्छी कैसे हो सकती है ? परन्तु दान लेने के इच्छुक स्वार्थी मानवों ने इस भोग्य सामग्री के दान का बड़ा भारी महत्त्व बता कर साधारण जनता को भ्रम में डालने की चेष्टा की है। साधारण मानव इसे समझ नहीं पाता।

मूर्ख रे दिल बात न बैसे, न्याय छोड़ि झगड़ा में पैसे।
सगुरु छांड़ी कुगुर से परिचा, भारी हुवै करै ऊँधी चरचा॥
व्रत अव्रत कहि जिन न्यारी, समझै नहीं तिणरे कर्म भारी।
मूढ़मति नव तत्त्व न जाणै, लीधी टेक छोड़ै नहीं ताणै॥

कवि ने इन दो पद्यों में कटु एवं चुभने वाले शब्द प्रयोग किये हैं। धार्मिक विषय में जब कोई मानव साधारण जनता को, अपने स्वार्थ के लिये, गलत रास्ते पर लेजाने की चेष्टा करता है, तो एक सत्य प्रेमी के हृदय में बहुत गहरी चोट लगती है और ये पद्य, कवि हृदय में व्याप्त, उसी गहरी वेदना को व्यक्त करते हैं।

जब साधारण मानव के दिमाग को भ्रम पूर्ण बातों से एकबार भर दिया जाता है, तो फिर वे बातें उसके दिमाग से जल्दी निकलती नहीं। उसका दिमाग विकृत हो जाता है और वह न्याय पूर्ण दलीलों को भी सुनने को तैयार नहीं। वह अपनी जिद पर

अड़ा रहता है। सद्गुरु के पास तो वह कभी जाता नहीं और सद्गुरु बिना उसे सद्मार्ग बतावे कौन ? जैन दर्शन के व्रत और अव्रत दो विरोधी भिन्न वस्तुयें हैं, इनका रहस्य अच्छी तरह समझ लेने से मानव को वास्तविक तत्त्वों की जानकारी हुआ करती है। मूर्ख-मानव न तो नव तत्त्व को समझता है और न व्रत अव्रत को। वह अपनी जिद्द, अपनी टेक कभी छोड़ता नहीं।

छब्बीस बोल तणूं आगार,
तेतो अव्रत आश्रव द्वार।
त्यांमें केइ उपभोग परिभोग,
त्यांने भोगवै ते तो सावद्य जोग ॥

त्यांरो त्याग करै मन समता आण,
शक्ति सारु करै पचक्खाण।
एक करण तीन जोगां से त्यागै,
जब पोतै भोगण रो पाप न लागै ॥

छब्बीस प्रकार की भोग्य सामग्री का आगार अव्रत आश्रव है। कर्म प्रवेश का कारण है। इस सामग्री को भोगना, काम में लाना सावद्य है। जो मानव इस भोग्य सामग्री के व्यवहार में मर्याद करता है। समभाव धारण करके इनके उपयोग की सीमा करता है। एक करण (अर्थात् स्वयं व्यवहार करूं नहीं)

एवं तीन योग (मन वचन और कार्य) से त्याग करता है, तो उसे स्वयं भोग जन्य पाप नहीं लगता।

दोय करण तीन जोगां से पच्चखाण,
तिण छः भांगा रो पाप टाल्यो जाण।
तेतो पोतै पिण भोगवै नहीं काय,
दूजा ने पिण भोगावै नहीं ताय॥

जो मानव दो करण और तीन योग* से त्याग करता है, पच्चखाण करता है उसके (२×३) छव भांगों (छव प्रकार) का पाप टल जाता है। वह स्वयं उस वस्तु को भोगता नहीं, मन से, वचन से व शरीर से और न दूसरों को भोगने के वास्ते प्रेरणा ही करता है मन से वचन से व शरीर से। इस प्रकार हम देखते हैं कि दो करण और तीन योग सहित त्याग से छव भांगों का पाप रुक जाता है। इसके पश्चात् तीन करण तीन योग सहित त्याग के सम्बन्ध में कवि कहता है—

तीन करण तीन जोगां से त्यागै,
तिण ने नवहीं भांगा रो पाप न लागै।
भोगवै नाहीं भोगावै नाहीं,
भोगवणा वाला ने सरावे नहीं ताहीं॥

---

*त्याग के सम्बन्ध में करण योग का महत्त्व समझने के लिये जीव अजीव पुस्तक को जरूर देखना चाहिये।

तीन करण एवं तीन योग सहित त्याग करने से नव प्रकार (भांगा) का पाप टल जाता है। इसे नव-कोटि त्याग भी कहते हैं। इस त्याग का बड़ा भारी महत्त्व है। किसी भी भोग्य सामग्री को तीन करण तीन योग सहित त्याग करने वाला मानव स्वयं उस सामग्री को भोगता नहीं मन से, वचन से शरीर से और न वह इस सामग्री को दूसरों को भोगने के वास्ते प्रेरणा ही करता है मन से वचन से व शरीर से। इतना ही नहीं, इस भोग्य सामग्री को जो भोगता है उसका वह समर्थन भी नहीं करता, मन से वचन से और शरीर से।

जेजे सेरी छूटी रही त्हाई, तिणसे पाप-कर्म लागै छै आई।
जे सेरी रुकी संवर द्वार, तिण से पाप न लागै लगार॥

आत्मा के बन्धन का, संसार में परिभ्रमण का एक मात्र कारण है कर्म। अनादि काल से प्रवाह रूप से आत्मा और कर्म का सम्बन्ध चला आ रहा है। मानव का चर्म लक्ष्य है इस सम्बन्ध का सम्पूर्ण रूप से विच्छेद कर देना। इसीलिये तो मानव व्रत धारण करता है नियम लेता है। व्रत एक प्रकार की सुरक्षा-पंक्ति है, पाल है। साधारण गृहस्थ सम्पूर्ण रूप से तीन करण तीन योग से तो त्याग-व्रत कर नहीं सकता। अतः इस रक्षा पंक्ति में अव्रत रूप छिद्र-सेरियाँ रह जाती है। इन्हीं छिद्रों से सेरियों से कर्म-प्रवेश हुआ करता है। त्याग. पच्चक्खाण द्वारा

गृहस्थ इन अव्रत रूप सेरियों को रोका करता है। जैन-दर्शन में ऐसे त्याग को व्रत व संवर कहा जाता है।

छूटी सेरी में श्रावक खावै खुवावै,
खातां ने पिण छूटी सेरी में सरावै।
रुकी सेरी में खावै खुवावै नाहीं,
अनुमोदना पिण न करै काहीं ॥

गृहस्थ के लिये तीन करण एवं तीन योग से नियम लेना, व्रत धारण करना सम्भव नहीं। अतः वह अपनी परिस्थिति व मजबूती को देख कर व्रत में, नियम में आगार व छूट रखता है। इसी छूट या सेरी के कारण गृहस्थ स्वयं भोजन करता है, दूसरों को भी खिलाता पिलाता है और समाज में होने वाले भोजों-जीमनवारों की सराहना भी करता है। भोजन का करना कराना व समर्थन करना जैन आदर्श नहीं। जैन आदर्श है त्याग और तपस्या। अतः भोजन के सम्बन्ध में गृहस्थ अपनी मजबूती के अनुसार करण योग सहित नियम लेता है।

जैन साहित्य में प्राणी वर्ग को छव भागों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक प्राणी को जीने का अधिकार है, हक़ है। साग सब्जी वनस्पति में प्राण है, जीवन है। इसे आजका वैज्ञानिक युग मानता है। मानव को क्या अधिकार है कि वह अपना पेट भरने के किये इन छोटे प्राणियों की हत्या करे? श्रेष्ठ प्राणी होने के नाते यदि मानव को छोटे प्राणियों की हत्या करने का

अधिकार दे दिया जावे, तब तो दुनियां में महा अनर्थ मच जाय। यह स्वभाविक है कि वनस्पति के विना मानव का काम चलता नहीं। उसे दुनियां में रहना है और जीवित रहना है। उसे वनस्पति के प्राणी, भोजन के लिये चाहिये ही। परन्तु यह है तो अनुचित। अपनी प्राण रक्षा के लिये दूसरों का प्राण लेना कहां का न्याय ? अतः जैन-दर्शन सूक्ष्म से सूक्ष्म प्राणी की हिंसा को भी निंदनीय समझता है। इसी सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से समझाने के लिये कवि कहता है—

श्रावक ने मांहों मांहि छकाय खुवावै,
वलि छकाय मारी नें जिमावै।
ए अव्रत सावद्य जोग व्यापार,
तिण मांहिं धर्म नहीं छे लिगार॥
श्रावक ने मांहो मांहि छकाय खुवावे,
वलि छकाय मारी ने जिमावे।
तिण मांहि धर्म मिथ्यात्वी जाणैं,
कर्म तणे वश ऊंधी ताणैं॥

भोजन तैयार करने में प्रायः छव काय के प्राणियों की हत्या हो ही जाती है, चाहे कितनी ही सावधानी रखी जाय। इस प्रकार से छव काय के प्राणियों की हत्या से बने भोजन को स्वयं खाना व दूसरों को खिलाना, श्रावक-गृहस्थ को माननीय अतिथि

बनाना आदि सब सावद्य है। साधारण से साधारण भोजन को देखें, साग सब्जी धान्य आदि एकेन्द्रिय जीव मारे ही जाते हैं। ये एकेन्द्रिय जीव अग्नि में, धधकती हुयी ज्वाला में पकाये जाते हैं। निर्दयी अग्नि द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों को भी भस्म करती रहती है। इंधन लकड़ी में सैर करने वाले विचारे त्रस जीव पक जाते हैं। धान में रहने वाले त्रस जीव भी छट-पटा कर मर जाते हैं। निर्दयी अग्नि को इस छटपटाहट पर बिल्कुल रहम नहीं आता। पानी में असंख्यात त्रस व स्थावर छोटे मोटे प्राणी निवास करते हैं। भोजन बनाने के समय पानी के ये जीव भी बलि के बकरे की नांयी मार ही दिये जाते हैं। उनके रोने चिल्लाने को सुनता कौन है? वायु काय के प्राणी भी अपने साथी प्राणियों के दुःख में सामिल होकर अपना प्राण निछावर कर देते हैं।

हमने देखा—एक साधारण भोजन की कीमत है—असंख्यात प्राणियों का निर्दयता पूर्वक कुचला जाना, उनके प्राणों का छीना जाना। प्राणियों के खून और मांस से बना यह भोजन किसी श्रावक गृहस्थ को खिलाने मात्र से धर्म की साधना कैसे हो सकती है? इतने जुल्म अत्याचार और प्राणी-हिंसा से बना यह भोजन किसी भी हालत में आदरणीय नहीं। मानव स्वयं खावे चाहे दूसरों को खिलावे, बात तो एक ही है। यह बात दूसरी है कि भोजन के बिना काम नहीं चलता, इष्ट मित्रों को जिमाये बिना सामाजिक प्रेम व्यवहार नहीं चलता। यों तो मानव का काम

धन बिना भी नहीं चलता, स्त्री बिना भी नहीं चलता। काम चलना या न चलना दूसरी बात है। मानव में कम से कम यह हिम्मत तो होनी चाहिये कि वह ज़ुल्म को ज़ुल्म कहे, अन्याय को अन्याय कहे।

पन्नवणा और भगवती सूत्र में श्रावक को धर्माधर्मी कहा गया है। श्रावक धर्मी भी है और अधर्मी भी।

व्रत आसरी श्रावक ने कह्यो छे धर्मी,
अव्रत आसरी कह्यो अधर्मी।
तिण सूं श्रावक ने धर्माधर्मी जाणो,
पन्नवणा भगवती से जोय पिछाणो॥

श्रावक त्याग करता है। नियम लेता है। प्रतिज्ञा करता है। व्रत धारण करता है। अतः उसे धर्मी कहा गया है। श्रावक में कमजोरी भी होती है। उसे गृहस्थ सम्बन्धी सारी जिम्मेवारी उठानी पड़ती है। उसे बहुत से काम करने पड़ते हैं। जिसमें हिंसा, झूठ, चोरी आदि नाना अनर्थ होने की सम्भावना रहती है। अतः वह आगार रखता है, अव्रत रखता है। इस अपेक्षा से उसे अधर्मी भी कहा जाता है। अर्थात् श्रावक धर्मी भी है और अधर्मी भी।

श्रावक रो खाणो पीणूं नें गहणूं,
मांहो मांहि लेणुं ने देणूं।

ए तीनुं ही करण अव्रत में घाल्या,
उववाई सुयगड़ायंग में चाल्या ॥

श्रावक गृहस्थ स्वयं खाता पीता है। दूसरों को खिलाता पिलता है और सामाजिक व्यवहार के नाते खिलाने पिलाने का समर्थन भी करता है। इस प्रकार के ये तीन करण अव्रत की श्रेणी में हैं। अव्रत कर्म बंधका कारण है। उववाई एवं सुयगड़ायंग सूत्र में ऐसा उल्लेख है। जहाँ अव्रत है वहाँ धर्म नहीं। अतः श्रावक को खिलाने पिलाने में धर्म बताना अपने स्वार्थ का पोषण करना है। यह पारस्परिक व्यवहार माना जाता है। धर्म से इसका कोई ताल्लुक नहीं।

आज का साधारण मानव पुद्गल जन्य सुख की आशा पिपासा में अपने अमूल्य जीवन की आहूति दे रहा है। उसने इसी आशा में अनन्त वार जन्म धारण किया परन्तु उसकी इच्छा पूरी न हुई। अपने मनोनुकूल पुद्गलों की प्राप्ति से उसे क्षणिक आनन्द जरूर मिलता है परन्तु थोड़ी ही देर बाद वह क्षणिक सुख दुःख में बदल जाता है। यह हम रोजाना देखते हैं। परन्तु हम इसके रहस्य को समझने की कभी चेष्टा नहीं करते।

शब्द रूप रस गंध स्पर्श पौद्गलिक है। मन मुताबिक संयोग मिलने पर इन्द्रियाँ इनमें सुख का अनुभव करती है। इष्ट वस्तु के वियोग से व अनिष्ट वस्तु के संयोग से मानव को दुःख हुआ

करता है। अतः हम इस नतीजे पर पहुंचते है कि पौद्गलिक वस्तुओं में सुख भी होता है और दुःख भी।

> शब्द रूप रस गन्ध स्पर्शा,
> राख्या छै तिण री लग रही आशा।
> एह ही उपभोग परिभोग,
> तिण रा मिलै छै विधि संयोग॥

शब्द रूप रस गंध एवं स्पर्श स्वभाव वाले पौद्गलिक वस्तुओं का नाम उपभोग परिभोग है। मानव अपने इन्द्रिय सुख के लिये इनका व्यवहार करता है। उपभोग परिभोग सामग्री के नाना प्रकार के संयोग से बने भोग्य पदार्थों के उपयोग में वह सुख का अनुभव करता है और इसी आशा में वह अमूल्य मानव-जीवन को नष्ट कर देता है। जीवन के उच्च लक्ष्य की ओर उसका ध्यान नहीं जाता।

उपभोग परिभोग सामग्री की मर्याद करते समय, व्रत धारण करते समय मानव कुछ आगार रख लेता है। छूट रख लेता है। ऐसी जो छूट है वह अव्रत है। जबतक अव्रत है तब तक मानव को उस वस्तु की आशा पिपासा भी बनी रहती है। यह जो कामना है, भोगने की लालसा है वही जैन दर्शन में पाप लगने का एक कारण है। जब उस वस्तु का त्याग कर दिया जाता है, तब वह व्रत में शुमार हो जाता है। इस प्रसंग में कवि के शब्द हैं—

राख्या छै तिण री अव्रत जाणो,
तिण रो समय समय पाप लागै छै आणो।
त्यांने त्यागां होसी संवर सुखदाय,
तिण से अव्रत रो पाप मिट जाय॥

त्याग एवं भोग भारतीय दर्शन की दो मुख्य वस्तुयें हैं, भोग दुनियां में मानव को फंसाता है, उसे संसार में अनन्त काल तक परिभ्रमण कराता है। मानव भोग में सुख मान बैठता है और नये नये भोगों को भोगने के लिये लालायित रहता है। इसी लालसा के कारण वह भोग्य सामग्री के व्यवहार की मर्याद करते समय भी कुछ छूट रख लेता है। यह छूट अव्रत है। यदि मानव ऊंचा उठना चाहता है, आत्म विकास चाहता है, जीवन को सुखमय बनाना चाहता है, तो उसे इस अव्रत का भी त्याग करना होगा। अव्रत का त्याग ही संवर है।

भोग्य सामग्री का नियम लेते समय हमने जो छूट रखी, आगार रखा वह अव्रत है। आगार के कारण उस वस्तु के प्रति हमारा आकर्षण बराबर बना रहता है। अभी हम उस वस्तु को भोग नहीं रहे हैं तो क्या हुआ, मौका लगते ही हम उसे भोगने को तत्पर भी तो हो जाते हैं। हमने उसका त्याग तो किया नहीं। अतः आगार के कारण बराबर उसकी क्रिया भी हमें लगती है। हमारा उससे अभीतक सम्बन्ध कायम है। ज्योंही उस वस्तु का त्याग कर देते हैं। हमारा उससे सम्बन्ध टूट जाता है। उसके

प्रति हमारा कोई आकर्षण नहीं रह जाता। अव्रत मिट जाती है। ऐसे व्रत व त्याग को जैन परिभाषा में संवर कहा जाता है।

मानव जितने रूप में व जितनी मात्रा में उपभोग परिभोग की वस्तुयें स्वयं काम में लाता है, भोगता है या दूसरों को भोगाता है अथवा इनके भोगने का समर्थन करता है उतने ही रूप में वह अपने संसार परिभ्रमण की अवधि को बढ़ाता है। जो उपभोग परिभोग हमारे लिये त्याज्य है, तो दूसरों के लिये भी वे उपादेय नहीं हो सकते। स्वामीजी ने इस पर सुन्दर प्रकाश डाला है।

उपभोग परिभोग भोगवै छे जाणि,
तिण सूं पाप लगै छे आणि।
भोगायाँ से दूजै करण पाप,
तिण सूं होसी वहोत संताप॥
अनुमोदे ते सरावे जाण,
तिण सें पिण पाप लागे छे आण।
श्रावक रा उपभोग परिभोग,
ए तीनूं करण छै सावद्य जोग॥

जैन दर्शन ने परिग्रह को आदरणीय नहीं बताया। उपभोग परिभोग भी परिग्रह के अन्तर्गत है। अतः उपभोग परिभोग उपादेय नहीं, ग्रहण करने योग्य नहीं। परन्तु मानव-मन कमजोर है। वह इन चीज़ों को छोड़ नहीं सकता। उसे

इन में आनन्द मिलता है। भोग को भारतीय दर्शनों ने किसी न किसी अंश तक त्याज्य कहा है। आदर्श तो कभी भी न कहा। जैन दर्शन आगे बढ़ता है वह कहता है—उपभोग परि-भोग की समस्त वस्तुओं को स्वयं भोगना, दूसरों को भोगाना एवं इनके भोगने का समर्थन करना—ये तीनों सावद्य कार्य है। अतः त्याज्य है।

श्रावक-गृहस्थी संसार में रहता है, समाज में रहता है, देश व राष्ट्र में रहता है। गृहस्थी की जिम्मेवारी भो उसके कंधों पर है। अतः उसे संसार के सारे काम संभालने पड़ते हैं। समाज का काम भी है। देश व राष्ट्र के प्रति भी उसका कुछ कर्तव्य है। ये सारे काम श्रावक करता है, किये विना उसका काम चल नहीं सकता। श्रावक का जो त्याग है, नियम है, वह व्रत है। जो त्याग नहीं आगार है वह अव्रत है। व्रत अव्रत को यदि अच्छी तरह से समझ लिया जाय, तो श्रावक सारी संसारिक जिम्मेवारियां सम्भालते हुए अपने आत्म विकास का कार्य करता रहता है।

अव्रत की अपेक्षा से श्रावक के तोन भेद किये गये हैं। जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट।

जघन्य मज्झम उत्कृष्ठा जान,
श्रावक गुण रत्नां री खान।

त्यांरो खाणूं पीणूं अव्रत में जाणो,
तिण ने रूड़ी रीत पिछाणो ॥

साधारणतया श्रावक गुण रूपी रत्नों की खान समझा जाता है। परन्तु ऐसे गुणी श्रावक का भी खाना पीना आदि काम अव्रत में है। इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये।

जघन्य श्रावक रे अव्रत घणेरी,
उत्कृष्टा श्रावक रे अव्रत थोड़ेरी।
पिण ते अव्रत आश्रव पाप रो नालो,
तिण से पाप आवै दगचालो ॥

जघन्य श्रावक के वहुत कम त्याग होता है। अव्रत की मात्रा अति अधिक होती है। अव्रत आश्रव पाप का नाला है। इस नाले से पाप रूप जल तीव्र गति से वहते हुए आत्म रूप तालाव में इकट्ठा हो रहा है और इसे गन्दा कर रहा है।

श्रावक तप करै आणि हुलास,
उपवास वेलादिक करै छमास।
सावद्य जोग रूंध्यां संवर हुवै रूड़ो,
तप से कर्म करै चकचूरो ॥

आत्म उत्थान के हेतु श्रावक त्याग एवं तपस्या का मार्ग अपनाता है। वह उत्साह पूर्वक उपवास करता है, वेला करता

हैं, छः मासी तपस्या करता है। वह जानता है कि सावद्य कार्य का त्याग करने से ही संवर होता है, धर्म होता है। तपस्या कर्म समूह का चकनाचूर कर देती है। तपस्या की समाप्ति के पश्चात् मानव पारणा करता है, भोजन करता है, अन्यान्य संसारिक कार्य करता है। परन्तु इस प्रकार का खाना पीना आदि सब सावद्य है। मानव का सर्व श्रेष्ठ आदर्श है, तपस्या करना, पारणा करना नहीं। मानव कमजोर है, अतः तपस्या के पश्चात् पारणा किये बिना उससे रहा नहीं जाता, परन्तु इसी कमजोरी के कारण पारणे को आदर्श तो नहीं कहा जा सकता। मानव विवाह शादी करता है, वह गृहस्थ में रहता है, स्त्री बिना उसका काम चलता नहीं। परन्तु मानव का यह आदर्श तो नहीं। आदर्श है ब्रह्मचर्य पालन करना। इसी रहस्य को समझाने के लिये कवि ने सफल चेष्टा की है—

तप पूरो हुवाँ पछै अव्रत आगार,
खावो पीवो ते सावद्य जोग व्यापार।
तिण से कर्म लागै छै आय,
ते पाप होसी जीव ने दुःखदाय॥

तपस्या के पश्चात् श्रावक पारणा करता है, खाता पीता है। उसका यह खाना पीना अशुभ योग है, सावद्य है, कर्म-बंध का कारण है। श्रावक के खाने पीने का जो आगार होता है वह अव्रत की श्रेणी में है। कवि इसे खुलासा करता है—

पारणूं करै ते पहिलै करण जाणो,
करावे ते दूजे करण पिछाणो।
सरावण वालो छै तीजे करणो,
यां तीनां रो बुद्धिवन्त करसी निरणो॥

जैन-दर्शन के अनुसार स्वयं पारणा करना भोजन करना पहला करण है, दूसरे को पारणा कराना भोजन कराना दूसरा करण है एवं पारणा करने वाले व भोजन करने वाले का समर्थन करना, अनुमोदन करना तीसरा करण है। यह एक सीधी-सी बात है। थोड़ा-सा भी जैन-दर्शन के सम्बन्ध में ज्ञान रखने वाला मानव इस बात को आसानी से समझ लेता है।

पहिले करण तो पाप बंधावै,
तो दूजै करण धर्म किहां थी थावै।
तीजे करण धर्म नहीं छे लिगार,
यां तीनां रो सावद्य जोग व्यापार॥

स्वयं पारणा करना, भोजन करना पहला करण है एवं यह पाप बंध का कारण है। जब बात ऐसी है, तब दूसरे करण में किसी को तपस्या के पारणे में खिलाने से धर्म कैसे होगा? इसी प्रकार से पारणे को अच्छा समझना भी न्यायोचित नहीं। खाना पीना भोजन आदि करना, कराना और इसका अनुमोदन करना—ये तीनों करण सावद्य हैं।

सावद्य जोगां से लागै छै पाप,
तिण सूं जिन आज्ञा न दे आप ।
जो श्रावक ने जिमायां धर्म होत,
तो अरिहन्त भगवन्त आज्ञा देत ॥

भोजन स्वयं करना, दूसरों को कराना और भोजन का समर्थन करना जैन आदर्श नहीं है। जैन आदर्श है तपस्या करना। यदि श्रावक को भोजन कराने से धर्म-लाभ होता, तो निश्चय है कि जिनेश्वर भगवान् इस काम की आज्ञा भी दे देते।

प्रत्येक प्राणी के लिये भोजन जरूरी है, भोजन विना वह जीवित रह नहीं सकता। भोजन करने से जैन दर्शन के अनुसार षट् काय-छव प्रकार के प्राणियों की हिंसा होने की सम्भावना है। जैन धर्म अहिंसा प्रधान है। भोजन को जीवन के लिये जरूरी समझते हुए भी जैन दर्शन ने इसे कोई महत्त्व नहीं दिया है। उपवास आदि तपस्या का वड़ा गुणगान किया गया है परन्तु भोजन को, चाहे वह सीधा सादा ही क्यों न हो, कोई आदर नही दिया गया है। जिस कार्य से छोटे से छोटे प्राणी को भी तकलीफ हो, उसकी हिंसा हो, उसे जैन दर्शन उपादेय नहीं मानता।

हमें जीना है, दुनियां में घूमना फिरना है। भोजन हम करेंगे ही। षट् काय के जीवों की हिंसा होती है तो होती रहे। भोजन विना हमारा काम कैसे चलेगा ? हमें अपने बच्चों की विवाह शादी धूम-धाम से करनी है। अपनी शान अपना वड़प्पन

अपने कुल की मर्यादा इज्जत भी दिखानी है। सामूहिक बड़े भोज के विना यह काम वनता नहीं। अतः हमें दूसरों को जिमाना होगा। बाग बाजार का रसगुल्ला, जयपुर का कलाकन्द, बीकानेर का भुजिया, आगरे का पेठा आदि नामी चीजें मेहमानों को खिलाये विना हमारे परिवार की शान रहती नहीं। गेस्ट कन्ट्रोल आर्डर Guest Control order कानून है तो क्या? अफ्सरों का मुंह बंद कर देंगे और फिर अपना काम चुपके से बना लेंगे। बड़ेरों की इज्जत पर हम आंच थोड़े ही आने देंगे।

इस प्रकार के बड़े बड़े विशाल भोजों का समर्थन भी हम करेंगे। यदि हम समर्थन न करें, तो कल हमें जिमावेगा कौन? हमारे घर कौन जीमने आवेगा?

हिंसा होती है तो होती रहे। सामाजिक पुराने नियम पुरानी मर्याद पुरानी रीति रिवाज को हम तोड़ने वाले नहीं। हम तो जीमेंगे, जिमावेंगे और जीमने का समर्थन करेंगे। स्वादिष्ट भोजन में बड़ा आनन्द आता है और फिर यदि किसी का निमन्त्रण मिल जाय, तव तो आनन्द का कहना ही क्या? ब्राह्मणों ने अन्धाधुन्ध प्रचार किया कि–ब्राह्मणों को जिमाना सब से बड़ा धर्म है, खास कर के शुभ अवसरों पर, शुभ त्योंहारों पर। विवाह है तो ब्राह्मण भोज, मर गया तो ब्राह्मण भोज, अमावस्या है तो ब्राह्मण को रसोई का सामान, पूजन है, तो ब्राह्मण को दक्षिणा—हर काम में ब्राह्मण को भोजन दो। ब्राह्मण का आशीर्वाद मिलते ही सब कामों में सफलता मिलेगी। ऐसा

जबर्दस्त प्रचार किया ब्राह्मण देवताओं ने। जैनियों को भी इस प्रचार की हवा लगी। वे भी ब्राह्मणों की तरह श्रावकों को जिमाने में धर्म है, ऐसा असत्य प्रचार करने लगे। उनको कुछ अंशों में सफलता भी मिली। भोजन के लोलुप श्रावकों का काम बन गया। धर्म के नाम पर उनको स्वादिष्ट भोजन के निमन्त्रण मिले। श्रद्धालु श्रावकों की कमी तो थी नहीं। धर्म के नाम पर हर स्वार्थ की पूर्ति की जा सकती है, प्रचारक हिम्मती चाहिये।

स्वामीजी ने धर्म के नाम पर होने वाला यह हिंसा पूर्ण कार्य देखा। उनकी आत्मा में क्रान्ति मची। उन्होंने खुले शब्दों में इस कार्य की आलोचना की। इसकी झांकी हमें नीचे की कुछ पंक्तियों में देखने को मिलती है।

> कोई कहै श्रावक ने जिमायां धर्म,
> ते भूल गया अज्ञानी भ्रम।
> पोते पिण जीम्यां लागै पाप कर्म,
> तो औरां ने जिमायां किम होसी धर्म॥

श्रावक ने उपवास किया। दूसरे दिन वह पारणा करता है, भोजन करता है। कई लोग कहते हैं—पारणे के दिन श्रावक को जिमानें में धर्म होता है। ऐसी प्ररूपणा करने वाले सज्जन बड़े भ्रम में हैं। वे वास्तविकता से दूर हैं। जैन दर्शन का षट्काय रहस्य उन्होंने समझा ही नहीं। जैन दर्शन कहता है—स्वयं भोजन करना भी तुम्हारा आदर्श नहीं। तुम्हारा आदर्श है

तुम्हारा धर्म है—त्याग और तपस्या। तुम इस तपस्या के आदर्श तक पहुंच नहीं पाते। अतः मजबूरी की हालत में भोजन करते हो, उपवास के पश्चात् पारणा करते हो। यदि भोजन करने कराने को, व पारणा करने कराने को ही धर्म मान लोगे, तब फिर तुम्हारी दृष्टि में तपस्या का ही क्या महत्त्व रह जावेगा?

स्वामीजी के जमाने में लाडू एक खास मिठाई थी, जैसे आजकल विदाम की कतली व वाग बाजार का रसगुल्ला। तपस्या के समय श्रावक को लाडू खिलाना धर्म समझा जाता था, जैन आदर्श गिना जाता था। स्वामीजी ने इस मान्यता के विरुद्ध घोर प्रचार किया।

> कोई कहै लाडू खवायां धर्म,
> वो तप करै तिण से म्हांरा कटसी कर्म।
> तिण से म्हे ओरां ने लाडू खवावां,
> लाडूवां साटै म्हे उपवास करावां॥

श्रद्धालु भक्त किसी श्रावक को पहिले दिन खूब मिठाई खिलाता था। लाडूओं से उसका पेट ठसाठस भर दिया जाता था। दूसरे दिन इन लाडूओं के बदले में उसे उपवास करना पड़ता था, भूखा रहना पड़ता था। श्रद्धालु भक्तों का ऐसा विश्वास था कि लाडू खाने के बाद वह श्रावक जो तपस्या करेगा उस तपस्या का फल हमें भी मिलेगा, हमारे भी कर्म कटेंगे, हल्के होंगे। क्योंकि हम ही ने तो उसे लड्डू खिला कर उससे तपस्या

करवायीं। तपस्या का फल हमें मिलेगा ही। हम उसे लड्डू न खिलाते, तो वह तपस्या भी कदापि न करता। अतः लाडू खिलाने में धर्म है, ऐसा मानना न्यायसंगत क्यों नहीं ?

स्वामी जी इस तर्क का उत्तर देते हुए कहते हैं—

पाछै तो वो करसी सो उण ने होय,
पिण लाडू खवायां धर्म नहीं कोय।
लाडू खवायाँ तो एकान्ति पाप,
श्री जिन मुख से भाख्यो छै आप॥

यहाँ इस प्रसंग में दो प्रश्न है– लाडू खाना और तपस्या करना। लाडू के बनाने में षट् काय के जीवों की हिंसा होती है। ऐसे हिंसा से बने लाडू का खाना व खिलाना हिंसा के कार्य हैं, सावद्य है। जैन दर्शन इस हिंसामय कार्य को कदापि आदरणीय नहीं मान सकता। दूसरा प्रश्न है लड्डू खाये हुए श्रावक के तपस्या करने का। उपवास वेला तेला आदि तपस्या करना जैन-आदर्श है। जो भी तपस्या करता है, अपने जीवन को सफल बनाता है। तपस्या धार्मिक कार्य है। सदैव आदरणीय है। तपस्या का मूल फल उसी को मिलता है, जो तपस्या करता है। दूसरे को नहीं। जिसकी पूंजी होती है, व्याज भी उसी को मिलता है। जो व्यक्ति एक महाजन की पूंजी दूसरे महाजन को कर्ज दिलाता है उसे तो सिर्फ दलाली ही मिलती है। व्याज व मूल रकम पर उसका थोड़े ही अधिकार है। जो किसी

को तपस्या कराने में सहयोग देता है, उसे प्रोत्साहन देता है, तो उसे थोड़ी सी दलाली जरूर हाथ लग जाती है, परन्तु तपस्या का मूल फल उसके हाथ नहीं लगा करता। अतः तपस्या एवं लाडू खिलाना दो भिन्न चीजें हैं। लाडू खिलाने वाले को तपस्या का फल कभी मिलने वाला नहीं। उसके जिम्मे तो सिर्फ षट्काय की हिंसा ही आती है।

कवि फिर आगे बढ़ता है—

श्रावक ने लाडूड़ा खवायां धर्म जो होय,
तो एहवो धर्म करै हर कोय।
वड़ा वड़ा श्रावक हुआ धनवंत,
इम्र लाडू खवाड़ ने धर्म करंत॥

यदि श्रावक को लाडू खिलाने में ही धर्म होता, तो हर समर्थ व्यक्ति ऐसा धर्म बहुतायत से करके मोक्ष की टिकट रिजर्व करवा लेता। अनेक बड़े बड़े कोट्याधीश श्रावक हुए। वे सब श्रावकों को, हजारों लाखों श्रावकों को लाडू खिला खिला कर मोक्ष चले गये होते। परन्तु ऐसा होता नहीं।

वड़ा वड़ा सेनापति ताहि,
त्यांरे हुंती घणी धर्म री चाहि।
खवायां धर्म हुवै तो आघो नाहीं काढ़ता,
लाडू खवाई काम सिरारे चाढ़ता॥

बड़े बड़े शूरवीर सेनापति हुए। हिंसामय कार्यों से उनकी आत्मा कांपने लगी। उनको धर्म की बड़ी चाह थी। किसी तरह से मलिन आत्मा को पवित्र बनाया जाय। यदि उनको यह मालूम होता कि श्रावक को लाडू खिला कर तपस्या कराने से धर्म होता है, आत्मा पवित्र हो जाती है, तो वे निश्चय ही ऐसा काम करते। वे हर बात में समर्थ थे। लूटपाट का काफी धन उनके हाथ लगा था। श्रावकों को जिमाना तो उनके लिये साधारण-सी बात थी।

कवि और भी आगे बढ़ता है। लाडू खिलाने में धर्म बताने वालों पर एक जबर्दस्त प्रहार करता है—

> जो श्रावक ने लाडू खवायां धर्म,
> खवावण वाला रै कट जाय कर्म।
> तो चक्रवर्त्ति वासुदेव बलदेव,
> यो तो धर्म करता स्वमेव॥

जैन दर्शन में चक्रवर्त्ती, वासुदेव, बलदेव बड़े शक्तिशाली मानव माने जाते हैं। ऐसे मानव भी धर्म के लिये लालायित रहते हैं। यदि लाडू खिलाने में धर्म होता और खिलाने वाले के कर्म कटते होते, तो निश्चय ही ये शक्तिशाली समर्थ मानव सब से अधिक धर्म किये होते और धर्म के प्रभाव से उसी जन्म में मोक्ष भी चले गये होते। परन्तु ऐसा कभी होता नहीं।

समर्थ मानवों को छोड़ कर अब कवि समर्थ देवों को पेश करते हुए कहता है—

लाडू खवायां होवे जो धर्म,
श्रावक ने लाडू खुवायां कट जाय कर्म।
तो च्यारूं ही जाति रा देव स्वमेव,
एहवो धर्म करै ततखेव॥

देवों की शक्ति व सामर्थ्य मानवों से बहुत अधिक है। देवों की चार जातियाँ मानी गयी हैं—भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक। धर्म की कामना तो सभी जाति के देव करते हैं। परन्तु उनको धर्म करने का मौका नहीं मिलता। यदि उनको भी यह मालूम होता कि सिर्फ श्रावक को लाडू खिलाने से ही धर्म होता है, तो ऐसा करना तो उनके बांये हाथ का खेल था।

जो एहवा धर्म थी शिव सुख होय,
तो देवता आघो न काढ़ता कोय।
एहवो धर्म करी पूरता मन क्षांत,
देव भव थी पाधरा मोक्ष पोहचंत॥

लड्डू खिलाने मात्र से ही यदि मोक्ष सुख की प्राप्ती होती, तो शक्तिशाली देव इस धर्म को करने से न चूकते। वे निश्चय ही ऐसा धर्म करके, श्रावकों को स्वादिष्ट भोजन खिला खिला कर मन की इच्छा पूरी करते और सीधे मोक्ष पहुंच जाते। अतः श्रावक को

खिलाना पिलाना सामाजिक व्यवहार हो सकता है, चालू प्रचलित नियम व मर्याद हो सकती है परन्तु इस सामाजिक प्रथा को धर्म का रूप दे देना न्यायसंगत नहीं। अब कवि सीधे साधे लोगों को समझाता है—

पिण लाडूड़ा खावायां तो धर्म नांहि,
खाणो खवावणों अव्रत मांहि।
इण मांहि धर्म श्रद्धै ते भोला,
त्यांरे मोह कर्म ना छे रे झकोला॥

जैन दर्शन में आठ कर्म माने गये हैं। इन में मोह कर्म बड़ा प्रभावशाली है। इसके प्रभाव से मानव की बुद्धि विकृत हो जाती है। लड्डू खिलाने में धर्म मानने वाले मानवों पर भी मोह कर्म ने अपना प्रभाव जमा रखा है और वे सीधी-सी बात को समझ नहीं पाते।

मथुरा के चौबे खाने पीने में बड़े तगड़े होते हैं। यदि कहीं से उनको भोजन का निमन्त्रण मिल जाय, तब तो कहना ही क्या? पौ बारह पचीस हैं। महीने की कसर एक ही दिन में निकालने की चेष्टा करते हैं। यह तो जीभ का स्वाद है। जीभ की लोलुपता है। भला भोजन खाने खिलाने में विचारे धर्म को क्यों घसीटा गया? सीधे सादे लोग धर्म के नाम से जल्दी फंस जाया करते हैं और सम्भव है अपने स्वार्थ साधन के हेतु

ऐसे ही भोले लोगों को फंसाये रखने का यह जाल रचा गया हो। भोले लोग धर्म के नाम पर मिठाइयां खिलाते रहे। उन्हें मिल गया धर्म और हमें मिली स्वादिष्ट मिठाइयां। कवि सीधे सादे लोगों को समझाते हुए कहता है—

लाडू खवायां धर्म नहीं छै भाई,
या तो उघाड़ी दीसै विकलाई।
ये तो लोलपणों जिभ्यारो स्वाद,
पिण भारी कर्मा मांड्यो ए वाद॥

हे भाई! लड्डू खिलाने में धर्म नहीं। इसमें धर्म समझने का अर्थ है—साधारण विवेक की कमी। जिन मानवों के कर्मों की बहुलता है, वे ही ऐसा विवेकहीन व्यर्थ का बकवाद खड़ा कर देते हैं। यह स्पष्ट है, कि ऐसा उपदेश वही दे सकता है, जो जीभ का लोलुपी है, स्वादिष्ट भोजन को ही अपना सब कुछ समझता है। परन्तु यह जैन सिद्धान्त कें सर्वथा प्रतिकूल है।

श्रावक का सातवां व्रत है—भोगोपभोग परिमाण व्रत। उपभोग परिभोग की वस्तुओं के व्यवहार में मर्यादा करनी, सीमा बांधनी। जितनी मात्रा में मानव इस भोग्य सामग्री का त्याग करता है, उतना ही वह उसका व्रत है। उसका संवर धर्म है। इससे कर्म प्रवेश रुकता है। नये कर्म आत्मा के साथ हिल-मिल नहीं सकते।

खाणूं खवावणूं त्यागै सोय,
जब सातमूं व्रत श्रावक रे होय।
जब रुकसी ते आवता कर्म,
तेहिज उजलो सम्वर धर्म ॥

मानव जितने अंश में, जितनी मात्रा में खाने और खिलाने का त्याग करता है, उतना ही वह उसका व्रत है। सातमा व्रत है। इससे नये कर्मों का आगमन रुकता है। आत्मा निर्मल होती है, उजली होती है। इसे ही संवर धर्म कहते हैं। धर्म त्याग में है भोग में नहीं। यही भगवान महावीर का दिव्य संदेश था और इस संदेश में स्वार्थी मानवों ने जो विकृति पैदा की, उसी को मिटाने का स्वामी जी ने बीड़ा उठाया था। महावीर के सिद्धान्तों को पूर्ण रूप से पालन करना ही उनके जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य था। प्राणों को हथेली पर रख कर वे ग्राम ग्राम में अपना मन्तव्य सुनाते थे। उन्होंने विरोध की परवाह न की। भूखे और प्यासे रह कर, श्मशान की छतरियों में निवास कर करके उन्होंने लोगों के सामने स्पष्ट शब्दों में अपनी बात सुनायी, महावीर का संदेश बताया। संदेश था—धर्म त्याग में है भोग में नहीं।

करण तीन हैं—करना, कराना और उसका अनुमोदन करना। त्याग करते समय करण के महात्म्य को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये।

तीनूं हीं करण जुवा जुवा कीजै,
त्याग अने आगार ओलखीजै।
अव्रत में पाप जाणि छोड़ीजे।
व्रत में धर्म जाणी व्रत लीजै॥

किसी काम को करना, कराना व उसका समर्थन करना—ये तीन करण हैं। तीनों अलग अलग हैं। व्रत एवं अव्रत का रहस्य समझने के लिये इन तीन करणों की जानकारी जरूरी हैं। जो नियम है, मर्याद है, त्याग है वह व्रत है और जो छूट है, आगार है वह अव्रत है। व्रत धर्म है तो अव्रत पाप है। मानव को व्रत बढ़ाने चाहिये और अव्रत घटाने।

अब कवि सुपात्र दान का महत्त्व हमारे सामने रखता है—

मानव भवरो लाहो लीजै,
दान सुपात्र ने निश्चय दीजे।
धर्म नूं कारज वेगो कीजै,
सतपुरुष सेयां वाञ्छित सीजे॥

मानव भव को सफल बनाओ। इसका अच्छे से अच्छा उपयोग करो। यदि मौका मिले, तो सुपात्र दान देना कदापि न भूलो। धार्मिक कार्य में आलस न करो। पूरे उत्साह के साथ धार्मिक कार्य शीघ्रता से करो। सत्पुरुषों की सेवा का असर बड़ा जबर्दस्त होता है। इससे मनोकामना पूर्ण होती है।

त्याग और आगार का भेद अच्छी तरह से समझ लेना चाहिये। जैन दर्शन की यह नींव है। जहां भी इस भेद को समझने में गलती की, वहीं बस उसका उल्टा रास्ता हो गया। सीधी सी न्याय संगत बात भी उसे विपरीत दीखती है आंख के सामने यदि हरे कांच का टुकड़ा रखा जाय, तो उसे सब चीजे हरी ही हरी दीखेगी। वस्तुओं का वास्तविक स्वरूप वह कभी बता नहीं सकती। त्याग और आगार खूब बारीकी से समझना चाहिये।

अपनी आजीविका के लिये प्रत्येक मानव को कुछ न कुछ व्यापार, धन्धा, पेशा करना ही पड़ता है। परन्तु कई एक ऐसे अनर्थकारी व्यापार हैं जो हिंसामय है। जिनको करने से अनेक निर्दोष त्रस प्राणियों की हिंसा होती है। एक सद् गृहस्थ को ऐसे धन्धों से बचना चाहिये। मानव की छोटी-सी आयु होती है। सामान्य आजीविका के लिये इन अनर्थकारी पेशों को क्यों अपनाया जाय?

उपभोग परिभोग नूं, सातमूं व्रत प्रधान।
तिण मांही उपदेशिया, पंदरह कर्मादान॥

सातवां व्रत है उपभोग परिभोग परिमाण व्रत। इस व्रत के अन्तर्गत पन्द्रह कर्मादानों का उल्लेख है।

(१) इंगाल कम्मे—अंगार कर्म।

अग्नि के प्रयोग से किये जाने वाले व्यापार अंगार कर्म

कहलाते हैं जैसे लोहार का काम, सोनार का काम, हलुवाई का काम, ईंट चूना आदि पकाने का काम।

इन पेशो में अग्निकाय का महारम्भ हुआ करता है।

स्वामीजी के शब्दों में—

ईंट लिहाला सोनार ठठारा, भड़भूंज्या कुम्भकार लोहारा।
ए कर्म करीने पेट भरीजे, तेहि अंगालिक कर्म कहीजै॥

ईंट के भट्टे, चूने की भट्टी, सोनार का काम, लोहार का काम ठठेरे का काम, भड़भूंजा का काम, कुम्हार का काम—इन सारे कामों में कोयला, लकड़ो आदि को अग्नि का प्रयोग होता है। अग्नि की प्रचण्ड लौ से न मालूम कितने त्रस एवं स्थावर प्राणी झुलस कर मर जाते हैं। अतः ऐसे कामों को करते समय मानव को कुछ सोचना चाहिये और यदि सम्भव हो तो इन पेशों से दूर ही रहे।

(२) वण कम्मे—वन कर्म।

साग, सब्जी, कन्द मूल, फल आदि बनस्पति का छेदन भेदन सम्बन्धी व्यापार करना। वन कटवाना, वृक्ष कटवाना आदि सारे काम वण कम्मे में शुमार हैं।

स्वामीजी के शब्दों में—

वेचै सागपात कंदमूल, फल बीजादिक धान ने तंदूल।
वेचै फूलादिक सर्व वनराई, ते वणकर्म कहीजे रे भाइ॥

हरी वनस्पति, साग पात, फल फूल, कंद मूल, बीज, धान्य,

चावल, आदि हर प्रकार की वनस्पति काय का क्रय विक्रय करना, आदि सारे काम वणकम्मे के अन्तर्गत हैं।

(३) साड़ी कम्मे—शाकट कर्म।

व्यापार के निमित्त शाकट-वाहन आदि बना बना कर वेचना शाकट कर्म है। सुथार बढ़ई का पेशा इसके अन्तर्गत है। स्वामीजी के शब्दों में—

वेचै गाड़ादिक रथ कराई, चोकी पाट पलंग वणाई।
किवाड़ थंभादिक ते वेचावै, ए तीजो साड़ी कर्म कहावै॥

रथ, गाड़ी आदि बनाना, चौकी पाटा पलंग, टेवल कुरसी, कमरे की सजावट के सुन्दर फरनीचर, किवाड़, सुन्दर काठ के खम्भे आदि बनाना उनका क्रय विक्रय करना आदि शाकट कर्म में शुमार है।

(४) भाड़ी कम्मे—भाटक कर्म।

भाड़ा उपजाने का काम, व्याज उपजाने का काम, या साधारण शब्दों में वनियापन।

हाट हवेली भाड़ै थापै, रोकड़ नाणूं व्याजें आपै।
गाड़ादिक भाड़ै दे जेह, भाड़ी कर्म कहिजे तेह॥

मकान, दुकान, गोदाम, हाट, हवेली आदि इमारतों को भाड़े पर देना, नकद रुपयों को व्याज पर लगाना, व्याज उपजाना, रथ, गाड़ी, मोटर, रिक्सा गाड़ी आदि वाहनों को भाड़े पर

देना आदि काम भाटक कर्म है। आज के मकान मालिक को सिर्फ भाड़े से सन्तोष कहाँ? उसे तो लम्बी चौड़ी पगड़ी चाहिये। सलामी चाहिये। किसी को गरज होगी, दुकान की जरूरत होगी, तो अपने आप यहाँ देकर जावेगा। भाड़ा नियन्त्रण कानून (Rent Control order) का, चुपके से मिलने वाली मेरी सलामी, मेरी पगड़ी पर, असर थोड़े ही होगा। एक सद्गृहस्थ को ऐसी सलामी से बचना ही चाहिये।

(५) फोड़ी कम्मे—स्फोटक कर्म।

किसी वस्तु को तोड़ फोड़ कर, दल कर पीस कर व महीन पाउडर बनाकर बेचना इस पेशे के अन्तर्गत है।

स्वामीजी के वाक्य—

बेचें नारेलादिक फोड़ी, वलि अखरोट सोपारी तोड़ी।
पत्थर फोड़ दलै पीसैं धान, पांचमूं फोड़ी कर्मादान॥

नारेल आदि पदार्थों को तोड़ फोड़ कर बेचना, अखरोट सुपारी आदि को तोड़ कर बेचना पत्थर को फोड़ना, चूर्ण करना और धान को दलना पीसना आदि पेशे स्फोटक कर्म है।

(६) दंत वाणिज्जे—दंत वाणिज्य।

दांत, नख, सीप, मोती, हड्डी, सींग आदि जितने भी पशु के अवयव हैं उनके द्वारा आजीविका चलाना दंतवाणिज्य है।

हाथी दांत का पेशा, चमड़े का व्यापार, मोती, कस्तूरी, हरिण के सींग आदि का व्यापार दंत वाणिज्य है। स्वामीजी के शब्दों में—

कस्तूरी केवड़ा गजदन्ता, मोती अगर पाप अनन्ता।
चर्म हाड़ सींग जो हार, छट्ठो कर्मादान ए धार॥

(७) लक्ख वाणिज्जे—लाक्षा वाणिज्य। लाख का व्यापार।

सातमूं भेद मैणसल आल, वेचै लाख गुली हरिताल।
कसूंवादिक रांगण पास, दोष घणो कह्यो जिन तास॥

मैणसल, आल, लाख, गुली, हरताल, कसूंवा, रांगण आदि सम्बन्धी व्यापार लक्ख वाणिज्जे के अन्तर्गत हैं। इन पेशों में जीव हिंसा बहुत अधिक मात्रा में होती है। विचारे छोटे-छोटे अनेक त्रस एवं स्थावर जीवों के वलिदान होने पर उपरोक्त पदार्थ तैयार होते हैं। अतः इन वस्तुओं के पेशे न अपनाने चाहिये। लाख तैयार करने में असंख्य चलते फिरते जीवों की हिंसा होती है। इन जीवों के शरीर को, कलेवर को बड़ी बड़ी कड़ाहियों में उवाला जाता है। आश्चर्य तो इस वात का है कि ऐसी हिंसा से वनी लाख की चूड़िया सोहाग का चिह्न मानी जाती है एवं प्रत्येक मङ्गलीक शुभ अवसर पर समझदार श्राविकायें भी इन्हीं लाख की चूड़ियों को बड़े शौक से पहनती हैं। जैन-श्राविकाओं को इस विषय

में सोचना और समझना चाहिये। सोहाग तो लाख की चूड़ियों के बिना भी कायम रह सकता है।

(८) रस वाणिज्जे—रस वाणिज्य।

मधु, मांस, मक्खन और मद्य ये मकार वाले चार भारी विगय माने गये हैं। ये महा विगय हैं। इनका व्यापार करना घृणित पेशा माना जाता है। इनमें जीव हिंसा की अधिक सम्भावना रहती है। इनका सम्पर्क रखने से मानव को पतन का भी भय बना रहता है। अतः ये पेशे त्याज्य हैं। ये सब पेशे रस वाणिज्य में हैं।

मधु मांस माखण ने दारू, भारी विगय कही जिन च्यारूं।
दूध दही घृत तेल गुड़ जाण, आठमूं ए रस वाणिज्य पिछाण॥

शहरों में दूध में पानी मिलाना, दुगुना तिगुना चौगुना, घी निकाल कर दूध को सफाई से जमाना और दही बनाना, असली गौ-घृत में प्योर डालडा चचा को मिलाना, तेल में जहरीली चीजें मिलाना—ये सब बातें रस वाणिज्य करने वाले मानव करते रहते हैं। सब को अपना अपना पेशा जो चमकाना है और रुपया जो बनाना है।

(९) केस वाणिज्जे—केश वाणिज्य।

केश वाणिज्य का दायरा भी काफी बड़ा है।

बेचै ऊंट गधा बैल गाय, घोड़ा हाथी भैंस मंगाय।
ऊन रुई रेशम थान बणाय, केश वाणिज्य ए नवमूं थाय॥

ऊंट, गधा, बैल, गाय, घोड़ा, हाथी, भैंस आदि का क्रय विक्रय करना, खरीदना वेचना केश वाणिज्य के अन्तर्गत है। ऊन रुई, रेशम आदि का व्यापार करना भी केश वाणिज्य ही है। जैन दर्शन के पट्काय विज्ञान के अनुसार मानव त्रस काय में सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। सर्वश्रेष्ठ होने पर भी मानव को यह तो अधिकार नहीं कि वह दूसरों को कष्ट पहुंचावे, तकलीफ दे। अपने आराम के लिये अपने स्वार्थ के लिये छोटे प्राणियों को वलिदान करे। जीने का अधिकार प्राणी मात्र को है। जो इस अधिकार में वाधा डालता है, जीवों को कष्ट पहुंचाता है वह जैन आदर्श नहीं। रेशमी वस्त्र वनाने में लाखों रेशम के कीड़ों का वेरहमी के साथ वलिदान कर दिया जाता है। ऊन प्राप्त करने के लिये भी विचारे भेड़ों को न मालूम कितना कष्ट दिया जाता है।

(१०) विष वाणिज्जे—विप वाणिज्य।

विपैले जहरीले Poisonous पदार्थों का व्यापार वड़ा खतरनाक है।

सींगीमोरो ने आफूसार, लीलोथूथो सोमल खार।
हरवंसी नरवंसी विणजै, ए दशमूं विप वाणिज्य कहिजै॥

सिंगीमोरा, अफ़ीम, (opium) तूतिया (copper-sulphate सोमलक्षार हरवंशी नरवंशी आदि खतरनाक

जहरीले प्राणान्त करने वाले पदार्थों का क्रय विक्रय करना विष वाणिज्य है।

विज्ञान ने और भी अनेक जहरीले पदार्थ खोज निकाले हैं। प्राणान्त करने में बड़े सफल हैं। पोटासियम साइनाइड, (Potassium cyanide) शंखिया (Arsenic) आदि अनेक जहर हैं। चन्द ही सेकेण्डों में मानव का काम तमाम हो जाता है।

एक से एक खतरनाक विष आज आविष्कृत हो रहे हैं। विष वाणिज्य द्वारा अपना पेशा चमकाने वाले अपना मत-लब निकालने वाले मानव नये नये विषों को खोज रहे हैं। कितना सुन्दर पेशा है यह ?

(११) जन्त पीलण कम्मे—यन्त्र पीड़न कर्म।

यंत्र एवं मशीनों के द्वारा सरसों, तिल, वादाम, नारियल, अलसी, ईख आदि को पील कर उनका तेल व रस आदि निकाल कर उसका व्यापार करना, क्रय विक्रय करना यंत्र पीड़न कर्म है।

स्वामी जी के शब्द—

तिल सरस्यूं प्रमुख पीलावै,
इषू रसनां घाण करावै।
जन्त पीलण इग्यारमूं कर्म,
करतां वधै घणो अधर्म॥

Oil mills तेल की मीलें आधुनिक व्यापार में अपना प्रमुख स्थान रखती है। पुराने जमाने में छोटी छोटी तेल की घाणियाँ होती थीं जो बैल आदि से चलायी जाती थी। परन्तु आजकल तो सारे काम बिजली से होते हैं। तेल की विशाल मीलें विशाल पैमाने पर काम कर रही हैं एवं दुनियाँ के एक कोने से दूसरे कोने तक अपना तेल विक्रय कर रहीं हैं।

हमने सरसों देखा। छोटे छोटे दाने हैं। उनके अन्दर छोटे छोटे अनेक त्रस जीव किलबिला रहे हैं। ऐसी सरसों मील की विशाल घाणी में ठेल दी जाती है। धड़ाधड़ मशीन चलती है और सरसों के साथ उन बिचारे छोटे छोटे त्रस जीवों का भी तेल निकल जाता है। मैनेजर साहब को फुरसत कहाँ कि वह ऐसी सरसों को तेल निकालने के बजाय अलग रख दे। कुलियों का भी एक ही धन्धा है जैसे तैसे तेल निकाल देना। सेठ साहब को तो सिर्फ पैसों से मतलब है। दो तीन साल की पुरानी सरसों सस्ते में हाथ लग जाती है और तेल का दाम पूरा उठ जाता है। जीव मरते हैं तो मरने दो। वे सरसों में पैदा ही क्यों हुए? लोगों को जनता को ऐसा तेल नुकसान -पहुंचाता है तो सेठ जी क्या करे? सरकार का काम है लोगों के स्वास्थ्य की चिन्ता करना। सेठजी का काम है पैसा कमाना और उसमें वे चूक पड़ने न देंगे।

ईख से, गन्ने से चीनी बनती है। बड़ी सुन्दर, सफेद मीठी और दानेदार। परन्तु जहाँ गन्ना पीला जाता है, जहाँ गुड़ बनता है, राब बनती है, उस स्थान को यदि कोई आंखों से देखे, कीड़े और मकोड़ों को मरते हुए चिमटते हुए देखे, तो शायद वह चीनी का त्याग करदे। इन लाइनों का काम करने वाले सेठ साहब बड़े हिम्मती और दिलेर हुआ करते हैं। चमकते हुए टनटनाते रुपयों के सामने छोटे छोटे त्रस जीवों की हिंसा क्या महत्त्व रखती है? हमारे धन्धे में, पेशे में कीड़े मकोड़े व छोटे जन्तु क्यों टांग फंसाते हैं? क्यों दखल देते हैं? यदि वे दखल देने की चेष्टा करेंगे, तो उनको बे-रहमी के साथ कुचल दिया जावेगा। यन्त्र-पीड़न कर्म पेशा सिर्फ हिम्मत वाले ही कर सकते हैं। जो कायर हैं डरपोक हैं, जीव हिंसा से डरते हैं उनको अपने घर पर बैठ कर आराम करना चाहिये।

(१२) निल्लंछण कम्मे—निर्लाञ्छन कर्म।

बैल, मनुष्य, आदि को नपुंसक बनाना, उनका नाक कान छेदना—इन सब कामों को व्यापार रूप में करना निर्लाञ्छन कर्म है।

स्वामी जी के शब्द—

कान फड़ावै, नाक विंधावै, पापी कसिया बैल करावै।
बारमूं कर्मादान निलंच्छन, व्रतधारी ने लागै लंछन॥

मानव अपने स्वार्थ के लिये अपने निजी पाल्तू पशुओं का नाक छेदता है, कान भी छेदता है, वैल को नपुंसक भी वनाता है परन्तु ये सारे काम पेशे रूप में करना, व्यापार के निमित्त करना निर्लाञ्छन कर्म है। वैल को नपुंसक वनाना, वकरे को नपुंसक वनाना व मनुष्य को नपुंसक वनाना हिंसा के काम हैं। इस से इन विचारे जीवों की आत्मा वड़ा कष्ठ पाती है। सद् गृहस्थ को इन से वचना चाहिये।

(१३) दवग्गिदावणया कम्मे—दावाग्नि कर्म।

वन में जंगल में आग लगा देना, पर्वत के शिखर पर आग लगा देना व मील फेक्टरी, गिद्दी गोदाम में आग लगा देना दावाग्नि कर्म है। यह वड़ा घृणित काम है। आजकल के मानव के दिमाग में हर काम को व्यापारिक रूप में करने की कल्पना उठती है। वह अपनी दुकान गोदाम कारखाने आदि की वीमा कराता है, इन्स्योर कराता है एक लाख रुपयों की। करीव ५००) रुपये सालाना प्रीमियम लगते हैं। उसने वीमा करायी। दश हजार का माल स्टाक में रखा। चुपके से रात के वख्त उसमें आग लगा दी। धांय धांय करके माल जलने लगा। पास की दुकानों में भी आग की लपटें फैली। लोगों ने आग वुझाने को दमकलें वुलायी। इन्स्योर कम्पनी को टेलीफोन किया गया। कई दिन तक वीमा कम्पनी की तरफ से जांच होती रही। साहव की पाकेट गरम कर दी। कम्पनी से एक लाख रुपया मिल गया। सिर्फ

दश हजार का माल और एक लाख की आमदनी, भला ऐसा व्यापार क्यों न किया जाय? जैन दर्शन इसे दावाग्नि कर्म कहता है, घृणित काम कहता है तो कहता फिरे, हमें तो ऐसा ही फायदे का व्यापार करना है। मानव नहीं सोचता कि हमें दुनियाँ में कितने दिन जीना है। थोड़े से जीवन के लिये इतना अनर्थ क्यों करूं? मानव आज अंधा है। उसे रुपयों के सिवाय और कोई चीज दीखती ही नहीं।

स्वामी जी के शब्द देखिये—

वालै गाम नगर करि लाय, अटव्यादिक में दव दे लगाय।
वालै मूरड़ा ने दव आपै, तेरमूं कर्म इसी पर व्यापै॥

ग्राम नगरी अटवी जंगल मकान आदि स्थानों में आग लगा देना दावाग्नि कर्म है। बड़ा जघन्य पाप है। विचारे लाखों करोड़ों जीव बिलबिलाते हुए अग्नि में बलिदान हो जाते हैं। थोड़े-से स्वार्थ साधन के लिये, थोड़े-से चांदी के रुपयों के लिये मानव का कितना पतन हो जाता है।

(१४) सरदह तलाव सोसणया कम्मे—सरद्रह तालाव शोषण कर्म। कुवा, बावड़ी तालाव नद नदी आदि का पानी शोषण कराने का ठेका करना, कन्ट्राक्ट लेना इस के अन्तर्गत है।

स्वामी जी के शब्द—

चवदमूं भांजै नहीं द्रह तीर, खेत मांहि आणि घालै नीर।
सरद्रह तलाव बूरै सोपंत, ए कर्म करी जीव नरक पड़न्त॥

तालाब की पाल तोड़ कर खेत में पानी पहुंचाना, तालाव का पानी सुखाना, तालाव को मिट्टी आदि से भरती करना इत्यादि सब काम नरक गति पहुंचाने वाले हैं। तालाव के अन्दर विचारे अनेक छोटे मोटे पानी के जीव, मछलियां सीप, शंख रहते हैं। वे सारे के सारे पानी सूख जाने से मर जाते हैं। थोड़े-से स्वार्थ के लिये मानव कितना कठोर वन जाया करता है। कम से कम एक श्रावक को तो ऐसे घृणित एवं हिंसामय कामों से बचना चाहिये।

(१५) असईजण पोसणया कम्मे असतीजन-पोषण-कर्म।

आजीविका निमित्त किसी का पोषण करना, जैसे वेश्या, नट, नटी, नर्तकी आदि को तन्खाह देकर उसे नौकर रख कर उससे गन्दे काम कराते हुए अपना पेट भरना असती-जन-पोषण-कर्म है। घोड़ा कुत्ता, ऊंट, वैल, भैंसा, गदहा आदि पालतू पशुओं का पोपण करना उनको खिलाना पिलाना और फिर उन से काम लेकर अपनी आजीविका चलाना इस कर्मादान के अन्तर्गत है।

साधु बिना सघला पोषीजे, पन्नरमूं असंजती पोष कहीजै।
रोजगार ले त्याँ ऊपर रहवै, खाणूं पीणूं असंजती ने देवै॥

साधु एक आदर्श एवं त्यागी मानव है। अतः साधु को संयमी-संयति कहा जाता है। वह अपने नियम-व्रत पूर्ण रूप से पालन करता है। साधु के अतिरिक्त जितने भी-मानव पशु व

प्राणी हैं उन सब को असंयति कहा गया है। अपने स्वार्थ के लिये, अपनी आजीविका चलाने के लिये असंयति जीवों का पोषण करना, उनको तन्खाह पर नौकर रखना, उनसे गंदे काम करा कर ग्राहकों से रुपये ऐंठना, इत्यादि सारे काम इस कर्मादान के अन्तर्गत है।

श्रावक एक साधारण गृहस्थ है। रुपये पैसे विना उसका काम चलता नहीं और रुपयों के लिये श्रावक को नाना प्रकार के काम करने पड़ते हैं। वह करता भी है। अपनी प्रकृति स्वभाव सामर्थ्य व शक्ति एवं अनुभव के आधार पर वह कोई न कोई पेशा चुनता ही है परन्तु एक बात ध्यान में रखने की है—अच्छे गृहस्थ को कोई भी ऐसा काम न करना चाहिये जिसमें असंख्य सूक्ष्म प्राणियों की हिंसा हो। साधारण पेशा ही सब से सुन्दर काम है। दुनियां में थोड़े से दिन तो रहना है फिर घृणित एवं हिंसामय कार्य कर अपनी आत्मा को मलिन क्यों किया जाय ?

ए पन्दरह कर्मादान विस्तार,
मर्याद बांधि करै परिहार।
ए पन्दरह कह्या सावद्य जोग व्यापार,
करै आजीविका चलावण हार।

उपरोक्त पन्द्रह प्रकार के कर्मादानों से मानव अपनी आजीविका चलाता है। यह सावद्य है। फिर भी मानव अपनी आजीविका के लिये इन्हें किसी हदतक करता है। करे क्या ? मजबूरी

है। परन्तु यदि सम्भव हो, आजीविका के अन्य सरल साधन हाथ में हो, तो मानव को कम से कम अनर्थकारी पेशों से तो दूर ही रहना चाहिये।

भोग्य पदार्थों की मर्याद के उपरान्त सेवन करने का त्याग करना उपभोग परिभोग परिमाण व्रत है। इस व्रत के दो भाग हैं। प्रथम भाग में २६ प्रकार की भोग्य सामग्री के व्यवहार का परिमाण करना होता है। इस मर्याद इस परिमाण से अधिक इनके सेवन का त्याग करना होता है। त्याग की विधि है—हे गुरुदेव ! इस व्रत में उल्लणिया विहि आदि छब्वीस प्रकार के द्रव्यों का जो मैंने परिमाण किया, उसके उपरान्त सब द्रव्यों का जीवन पर्यन्त एक करण तीन योग से त्याग करता हूं।

भोग्य सामग्री को प्राप्त करने के लिये धन की आवश्यकता है। धन कमाने के लिये पन्द्रह प्रकार के कर्मादान—व्यापार धन्धे करने होते हैं। इन कर्मादानों—व्यापारों का मर्याद के उपरान्त त्याग करना इस व्रत का दूसरा भाग है। इस प्रकार से मर्यादित क्षेत्र के अन्दर मिलने वाले भोग्य पदार्थ और उनकी प्राप्ति के निमित्त किये जाने वाले व्यापार पर नियन्त्रण करने के लिये इस व्रत का निर्माण किया गया है।

सप्तम व्रत अपनाने से व्यक्तिगत फायदे के साथ साथ सामाजिक फायदा भी है। यदि अधिकांश मानव इस व्रत का रहस्य समझते हुए त्याग वृत्ति को अपनावें तो समाज बहुत ऊँचा उठ सकता है। मानव यदि भोग्य सामग्री में कमी करे, अपनी

जरूरतों को त्याग वृत्ति से घटावे, मर्यादा व नियम सीमा के अन्दर रहते हुए काम करे, तो आज दुनियाँ की अशान्ति मिट सकती है।

भोजन वस्त्र मकान आदि कतिपय आवश्यक पदार्थ निर्वाह के साधन हैं। सुख और शान्ति से जीवन निर्वाह करने के लिये हर मानव इनको अपनाना चाहता है। बात यदि यहीं तक सीमित होती, तो दुनियां में कलह और अशान्ति न होती। स्वभावतः मानव-मन की लालसा अनियन्त्रित होती है। लालसा की कोई मर्याद नहीं, कोई सीमा नहीं और इसी लालसा के वश होकर मानव आज पागल बन रहा है। वह हर प्रकार के धन्धे व्यापार आदि द्वारा इस लालसा की पूर्त्ति करना चाहता है। लालसा तो पूरी होती नहीं। पारस्परिक संघर्ष जरूर बढ़ता है। प्रस्तुत व्रत इसी अनियन्त्रित लालसा को नियन्त्रित करने का आदेश देता है। वह कहता है—अनावश्यक संग्रह का त्याग करो। महा अनर्थ महा आरम्भ वाले व्यापार से दूर रहो। परन्तु मानव आज ज्यादा से ज्यादा भोग्य सामग्री को अपने कब्जे में रखना चाहता है। उसका मालिक बन कर रहना चाहता है। एक जगह ज्यादा सामग्री इकट्ठी होने का अर्थ है दूसरों को वह मिलती नहीं। अतः साधारण जनता के मन में विद्रोह की भावना जागृत होती है। वे हिंसा से हो, मारकाट से हो जैसे भी हो उस संग्रहित सामग्री को लूटना चाहते हैं। जिसने संग्रह कर रखा है, वह उसे बचाने की चेष्टा करता है। खून की नदियां बहती है। अतः यह सर्वथा सत्य है—परिग्रह अशान्ति

का लड़ाई झगड़े का मूल कारण है। सातवां व्रत इसी अशान्ति को दूर करने का सर्वोत्तम साधन पेश करता है। मन पर थोड़ा सा काबू रखने से इस व्रत को अपनाया जा सकता है और अपना जीवन सुखमय, एवं शान्तिमय बनाया जा सकता है।
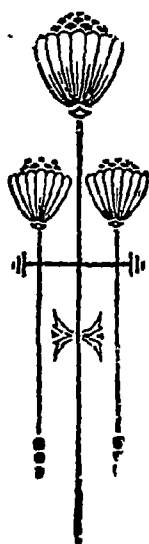
व्रत आठवाँ

अनर्थ दण्ड विरति व्रत

श्रावक गृहस्थ है। परिवार के झंझटों में फंसा है। कुटुम्ब के भरण पोषण की जिम्मेवारी उसी पर है। समाज का वह एक माननीय सदस्य है। विपत्ति के समय देश व राष्ट्र भी उस से कुछ आशा रखता है। इतनी भारी एवं नाना प्रकार की जिम्मेवारियाँ संभालनी पड़ती हैं एक श्रावक को। अतः अपने लिये, अपने कुटुम्ब के लिये अपने परिवार के लिये, समाज के लिये, देश के लिये, राष्ट्र के लिये उसे ऐसे सारे काम करने पड़ते हैं जो हिंसामय हैं। आरम्भमय हैं। सावद्य हैं। श्रावक इन कामों को हिंसामय समझते हुए भी उन्हें करता है। मजबूरी है। वह अपने कर्तव्य से विमुख तो नहीं हो जाता। हरेक काम उसे संभालना ही होता है। इस प्रकार से जो जरूरी काम श्रावक को करने पड़ते हैं, उसे जैन दर्शन अर्थ दण्ड कहता है। साधारणतया इसे अनिवार्य हिंसा कहते हैं। गृहस्थ खेती करता है। खेती में नाना प्रकार की जीव हिंसा करनी पड़ती है। टिड्डी फाके को भी मारना पड़ता है। यह अनिवार्य हिंसा है। कृषक के लिये यह हिंसा जरूरी है। एक न्यायाधीश हत्यारे को फांसी की सजा देता है। गोली से उड़ाने का भी दण्ड देता है। यह अनिवार्य हिंसा है। यदि न्यायाधीश ऐसा न करे, तो सारी समाज व्यवस्था टूट जाती है। समूचे देश में अराजकता फैल

जाती है। इसी प्रकार जब अपने देश पर शत्रु का आक्रमण होता है, तो उसका मुकाबिला करने के लिये हाथ में तलवार और बन्दूक लेकर एक श्रावक शत्रु पर प्रहार करता है। वह चुपचाप नहीं बैठा रहता। यह अनिवार्य हिंसा है। इतिहास हमें बताता है कि जैन आदर्श श्रावकों ने आत्म रक्षा हित, देश रक्षा हित भयंकर संग्राम किये। श्रावक चेटक का उदाहरण हमारे सामने है। उसने अपने प्रिय देश की रक्षा के लिए ऐसे भीषण युद्ध में भाग लिया जिसमें एक करोड़ अस्सी लाख मानवों के रक्त से पृथ्वी भींग गयी थी। यह अनिवार्य हिंसा है। जैन दर्शन में इस प्रकार के अनिवार्य हिंसामय कार्यों को अर्थ दण्ड कहा गया है। अपना कर्तव्य Duty समझ कर मानव इन कामों को करना जरूरी समझता है और करता है। परन्तु ऐसे भी अनेक मानव हैं, अनेक गृहस्थ हैं जो बिना मतलब, बिना जरूरत, बिना स्वार्थ केवल प्रमाद वश, कौतूहल वश, निरर्थक उद्देश्य हीन फिजूल कामों में हिंसा कर डालते हैं। किसी प्राणी का प्राण लेने में उन्हें जरा सा भी संकोच नहीं होता। इस प्रकार की जो निरर्थक हिंसा है उसे अनर्थ दण्ड कहा गया है। साधारण मानव अनिवार्य हिंसा-अर्थदंड—से तो बच नहीं सकता परन्तु इस बिना मतलब की हिंसा—अनर्थ दण्ड से तो अपना बचाव कर ही सकता है।

श्रावक ने प्रथम सात व्रतों को धारण किया, अंगीकार किया। श्रावक कमजोर मानव ठहरा। उसने इन व्रतों में कुछ

आगार रखा, अव्रत रखा। इस अव्रत के कारण इस आगार के कारण श्रावक के बराबर निरन्तर पाप क्रिया लगती रहती है। इस अव्रत के दो भेद हैं—अर्थ दण्ड और अनर्थ दण्ड। दोनों ही अव्रत हैं। कर्म बंध के कारण हैं।

सातमूं व्रत पूरो थयो, हिव आठमानूं विस्तार।
अर्थ अनर्थ ओलखवा भणीं, तेहनूं सुणो विचार॥
सात व्रत आदरतां थकां, बाकी अव्रत रही छै ताय।
तिण से निरन्तर जीव रै, पाप लागै छै आय॥
तिण अव्रत रा दोय भेद छै, तिण में एक अनर्थ दण्ड जाण।
दूजी अव्रत अर्थ दण्ड तणी, त्यांसूं पाप लागै छै आण॥
अर्थ ते मतलब आपरै, सावद्य करै विविध प्रकार।
अनर्थ ते मतलब विना, पाप करतां डरै न लिगार॥

अनिवार्य हिंसा और व्यर्थ हिंसा दोनों प्रकार की हिंसा जैन दृष्टि से सावद्य हैं। अनिवार्य हिंसा—अर्थ दण्ड में मानव अपने मतलब के लिये अपने स्वार्थ के लिये नाना प्रकार की हिंसा किया करता है। कर्तव्य पालन के हेतु ऐसी हिंसा जरूरी हो जाती है। पापकारी होने पर भी ऐसी हिंसा कितने अंश तक क्षम्य है। परन्तु व्यर्थ हिंसा—अनर्थ दण्ड तो हर हालत में निन्दनीय है। इस से न तो किसी स्वार्थ की रक्षा होती है, न कोई मतलब निकलता है। न कर्तव्य पालन में इस-से कोई

सहायता मिलती है। यह तो फिजूल में किसी को सताना है। किसी के झोंपड़े में आग लगा कर तमाशा देखना, किसी राह चलते मुसाफिर को पीठ में छुरी भोंक देना, धर्म के उन्माद में छोटे छोटे बच्चों को चीर देना, युवती स्त्रियों को नंगा करके उनका जबर्दस्ती जुलूस निकालना, सामूहिक रूप से अपने से भिन्न धर्म वालों को कत्ल करके उनकी लाशों से कुवों को भर देना—इत्यादि अमानुषिक बातें हमने थोड़े दिन पहले अपनी आंखों से देखी। भले भले आदमी पागल बन कर इन घृणित कामों में उलझ गये। इसी का नाम है अनर्थ दण्ड, व्यर्थ-हिंसा। इन कामों को करना और अपने बाहुबल की डींग हांकना एक बड़ा भयंकर अपराध है। कम से कम एक सद् गृहस्थ को तो इस प्रकार की निरर्थक हिंसा—अनर्थ दण्ड से बचना ही चाहिये। व्यर्थ हिंसा का त्याग करना ही चाहिये।

एक अच्छे गृहस्थ को अर्थ दण्ड और अनर्थ दण्ड अर्थात् अनिवार्य हिंसा और व्यर्थ हिंसा के रहस्य को अच्छी तरह समझना चाहिये।

पाप करै अर्थ अनर्थ कारणं, त्यांने रूड़ी रीत पिछाण।
अर्थ दण्ड छोड़णूं दोहिलो, पिण अनर्थ रा करै पचक्खाण॥

अर्थ दंड एवं अनर्थ दंड दोनों ही सावद्य है। गृहस्थ—श्रावक अर्थ दण्ड को छोड़ नहीं सकता। उसे अपनी जिम्मेवारी

के अनुरूप हिंसा करनी ही पड़ती है परन्तु वह अनर्थ दंड अर्थात् निरर्थक हिंसा को तो छोड़ सकता है, त्याग सकता है।

अब कवि अनर्थ दंड के भेद वर्णन करता है—

अनर्थ दंड तणां भेद अति घणा, ते पूरा कह्या न जाय।
थोड़ा-सा प्रगट करूं, ते सुणिजो चित्त ल्याय॥

अनर्थ दंड के अनेक भेद किये जा सकते हैं, परन्तु मुख्यतया अनर्थ दंड के चार भाग किये गये हैं।

अणत्था दण्डे चउविहे पणत्ते तंजहा—

अवज्झाणा चरिए, पमाया चरिए, हिंसप्पयाणे, पाव कम्मो वएसे।

(१) अपध्यानाचरित (२) प्रमादाचरित
(३) हिंस्रप्रदान (४) पाप कर्मोपदेश

पहिलो भेद कह्यो अपध्यान, तिण थी बांधै अनर्थ खान।
बीजो भेद प्रमादज आखै, घृतादि ठाम उघाड़ा राखै॥
शस्त्र जोड़ करै विस्तार, पाप उपदेश देवै विविध प्रकार।
ए अनर्थ रा करै पचक्खान, सूधी पालै जिनवर आण॥

अनर्थ दण्ड के चार भेदः—

(१) अपध्यानाचरित—

जिस चिन्तवन से जिस एकाग्रता से अशुभ कर्म का बंध होता है वह अपध्यान है।

(२) प्रमादाचरित—

साधारणतया घी, तेल, चासनी आदि खाद्य पेय के बर्तनों को खुला रखना आदि प्रमादाचरण है। पागल की तरह बिना प्रयोजन गाली निकालना, अपशब्द बोलना, व व्यर्थ में किसी पर प्रहार करना व मार डालना भी प्रमाद आचरण है।

(३) हिंस्र प्रदान—

निरर्थक हिंसा के स्थानों में हिंसाकारी अस्त्र शस्त्र देना।

(४) पाप-कर्मोपदेश—

बिना मतलब पापकारी कार्यों का उपदेश देना।

मुख्य रूप से चार अनर्थ दंड के भेद हैं। यथा सम्भव श्रावक को इनसे बचना चाहिये।

अनर्थ दण्ड केम कहिजे, अर्थ दण्ड सेती उलखीजे।
तेहना भेद विविध प्रकार, संक्षेप मात्र करूं विचार॥
माठा ध्यान रा दोय प्रकार, जे जग में ध्यावै नरनार।
आर्त रौद्र ध्यान ध्यावै लोग, पामै विविध हर्ष ने सोग॥

अनर्थ दण्ड के अनेक भेद किये जा सकते हैं परन्तु संक्षेप में सिर्फ चार भेद ही किये गये। पहला भेद है माठा ध्यान—अपध्यानाचरित।

जिस चिन्तवन से अशुभ कर्म का बंध हो वह अपध्यान है। अपध्यान के दो भेद हैं—आर्त्त और रौद्र।

अप्रिय वस्तु के संयोग से, प्रिय वस्तु के वियोग से शारीरिक व मानसिक पीड़ा से और अप्राप्य भोगों के प्रति तीव्र लालसा से मानव मन में बुरे बुरे विचार उठते हैं। उसका मन आकुल व्याकुल हो जाता है। वह इन संयोगों से निवृत होने की चिन्ता में हर समय निमग्न रहता है। ऐसा चिन्तवन आर्त्तध्यान कहलाता है।

हिंसा झूठ चोरी और प्राप्त विषय भोग के संरक्षण के लिये हर समय चिन्तवन करना रौद्र ध्यान है।

अपने धन, शरीर व प्रिय परिवार के प्रति मोह प्रेम के कारण मानव इनके संयोग वियोग में सुख दुःख का अनुभव करता है। आर्त्त रौद्र ध्यान में तल्लीन होता है। यह अर्थ दंड है। परन्तु विना प्रयोजन दुनियाँ के दुःखों के लिये माठे ध्यान में तल्लीन होना अनर्थ दण्ड है। इससे वचना चाहिये।

अनर्थ दण्ड के दूसरे भेद का नाम है—प्रमादा चरित। साधारणतया प्रमाद का अर्थ है आलस्य। मानव जरा-सी सावधानी रखे, हरेक काम यतना से करे, तो व्यर्थ में होने वाली हिंसा से वह अपना वचाव कर लेता है। घी का वर्तन है, तेल का वर्तन है, उसे अपनी गफलत से, असावधानी से, लापरवाही से उघाड़ा छोड़ देना प्रमादा चरित है। ऐसे उघाड़े तेल या घी में नाना प्रकार के जीव जन्तु गिर गिर कर मर जाते हैं। सूक्ष्म व स्थूल कीटाणुओं के मृतक शरीर उस तेल में तैरते रहते हैं और

मानव उसी तेल से भोजन बनाया करता है। ऐसे तेल में बालू मिट्टी आदि गन्दी चीजें भी मिल जाया करती है।

तेजी से अपना कदम बढ़ाता हुआ विज्ञान नयी नयी बातें हमारे सामने रखता है। वह मानता है कि हवा में नाना प्रकार के कीटाणु—Bacteria, रोग फैलाने वाले कीटाणु चक्कर मार रहे हैं। थाइसिस के कीटाणु हैं। न्युमोनिया फैलाने वाले कीटाणु हैं। इन्फ्लुएंजा के कीटाणु हैं। टाइफाइड के कीटाणु हैं। हवा में कीटाणुओं ने अपना अड्डा जमा रखा है। यदि खाने पीने की चीजें पूरी तरह से ढकी न जाय, तो नतीजा यह होगा कि ये कीटाणु उस खाद्य या पेय में प्रवेश कर बैठेंगे और खाद्य व पेय के साथ आपके शरीर के अन्दर भी प्रवेश कर ही जांयगे और नाना बीमारियों की उत्पत्ति करेंगे।

दूध का बर्तन, दही का बर्तन, साग का बर्तन, आदि को कभी भी उघाड़ा रखना उचित नहीं। आजकल बड़े बड़े शहरों में जो संक्रामक (Epidemics) बीमारियां फैलती है और हजारों लाखों मानवों की मृत्यु का कारण बनती है, उन सब का कारण खाद्य व पेय पदार्थों के बर्तनों को खुला रख देना ही है। रोगोत्पादक छोटे छोटे जीव जन्तु, मच्छर मक्खियां व सूक्ष्म कीटाणु खाद्य व पेय में प्रवेश कर जाते हैं। ऐसे खाद्य पेय का उपयोग करने वाले मानव भी उन बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। कालेरा-हैजा, टाइफायड़, चेचक, प्लेग, न्युमोनियां, इन्फ्ल्युएन्जा, थाइसिस आदि नाना बीमारियां ऐसे दूषित खाद्य पेय से हुआ

करती हैं। इसलिये खाद्य व पेय के वर्तनों को कभी उघाड़ा न रखना चाहिये। शरीर को बीमारियों के आक्रमण से बचाने के लिये और स्वास्थ्य को ठीक हालत में रखने के लिये ऐसा करना जरूरी है। बड़े बड़े शहरों में दुकनदार बड़े गन्दे होते हैं और दूध दही, घृत तेल, बने हुये साग, दाल, चटनी, व कटी हुयी साग सब्जी आदि के वर्तन खुले ही रखते हैं। स्वाद के शौकीन बाबू भैया इन चीजों को बड़े चाव से खाते हैं। फल होता है—स्वास्थ्य का बिगड़ जाना और संक्रामक बीमारियों का शिकार बन कर दुःख पाना।

घृतादिक पिण विणज करतां, धूमादिक कारज अण सरतां।
इणविधि अर्थ उघाड़ा राखै त्हाई, तिणरा जतन करै चितलाई॥
प्रमाद नै वश आलस आण, उघाड़ा राखण रा पचक्खाण।
घरटी ऊखल मूसल राखै, म्हारै सरे नहीं इण पाखै॥
अनर्थ राखण रा पचखाण, एहवो व्रत करै मन जाण।
अर्थे पिण राखन्ता शंकाय, अनर्थ पिण नहीं राखै त्हाय॥

घृत व तेल के व्यापारियों को खूब सावधानी रखनी चाहिये। जहां तक सम्भव हो इन वर्तनों को हर समय ढके रखना चाहिये। कम से कम श्रावक को तो प्रमाद वश, आलस्य वश वर्तन को उघाड़ा रखने का त्याग ही करना चाहिये।

मार्ग में चलते मुसाफिर को विना प्रयोजन गाली निकालना, होली आदि पर्वों पर गंदी गालियां देना, जलाशयों तालावों में

गन्दी चीजें फेंकना, म्युनिसपल नियमों के विरुद्ध शहरों की सड़कों पर टट्टी पिशाब करना, बिना मतलब वृक्ष के पत्ते व डालियाँ तोड़ना, चाय व पान की दुकानों पर बैठ कर गांव का मैल धोना, निन्दा चुगली क़रना आदि सारे काम प्रमाद आचरण के हैं। सद् गृहस्थ को इनसे बचना चाहिये।

· अनर्थ दण्ड के तीसरे भेद हिंस्र प्रदान के विषय में कवि कहता है—घट्टी, ओंखली, मूसल, सिल लोढ़ा आदि चीजें गृहस्थ के लिये जरूरी हैं। इनके बिना गृहस्थ का काम चलने वाला नहीं। ये सारी वस्तुयें हिंसा में सहाय्य कारी हैं। यदि खास जरूरत हो तब तो इनको रखनी ही पड़ेगी, परन्तु यदि इनकी कोई खास जरूरत न हो, तो इनको न रखना ही ठीक है। आदर्श गृहस्थ सीधा सादा जीवन बिताता है। वह कम से कम परिग्रह रखता है। थोड़े से समान से वह अपना काम चला लेता है। परिग्रह का संग्रह जितना अधिक होगा, हिंसा भी उसी रूप में बढ़ जाती है। सभी चीजों की समय समय पर सार संभाल करनी पड़ती है। लोग मांगने आते हैं उन्हें देना भी पड़ता है। बिना जरूरत कोई भी वस्तु रखने का अर्थ है अपने झंझट को बढ़ाये रखना।

एक अनुभवी व्यक्ति का कहना है कि दुनियां में सब से सस्ती वस्तु है—Free Advice, मुफ्त की राय, सलाह। कोई सलाह पूछे या न पूछे, राय मांगे या न मांगे, इसकी परवाह नहीं। हम तो मुफ्त की राय देंगे ही। विश्वव्यापी युद्ध छिड़ा। लोगों ने

काफी कमाया। तुम तो कोरे के कोरे ही रह गये। अब भी हमारी बात मानो। पाकिस्तान चले जाओ। वहां तुम्हारा व्यापार चमक उठेगा। हिन्दुस्तान पाकिस्तान के सीमाने पर अड्डा जमाना। इधर की चीज उधर और उधर की चीज इधर। सीमाने की रक्षा करने वाले पहरे वालों को हाथ में बनाये रखना बस बेडा पार है। देखो, चूक न जाना। फिर ऐसा मौका आने का नहीं। यह है मुफ्त सलाह का नमूना। पाप कर्म का उपदेश। अनर्थ दण्ड का चौथा भेद।

भाई भतीजा चाकर पेख,
त्यांने दे पाप रा उपदेश।
खेती वाणिज्य सौदा करो भाई,
यूं बैठा खास्यो किणरी कमाई॥

भाई है, भतीजा है, बन्धु बांधव है, यार दोस्त है, प्रिय सम्बन्धी है। निकम्मा बैठा है। घर में खर्च लगता है। कमाई टके की है नहीं। ऐसे कितने दिन काम चलेगा? बड़ेरों-बाप दादों की कमाई कितने दिन निभेगी? ऐसे प्रसंग में घर का अनुभवी बूढ़ा उनको समझाता है, उपदेश देता है—भई! खेती करो, वाणिज्य व्यापार करो। सौदा फाटका करो। चोर-बजारी करो! दाल चावल की मील खोलो। बिजली से चलने वाली तेल की मील बिठाओ। चीनी की मील चालू करो। कुछ तो कर दिखाओ। जैसे भी हो धन कमाओ। पैसे वाले बनो। तुम से

कमजोर मानव आज करोड़पति लखपति बन गये और तुम कोरे के कोरे। पैसा कमाने का यही तो मौका है। यही तो उमर है। हमारी बात मानो और कुछ कर दिखाओ। कुछ भी न कर सको, तो भाषण देना ही सीखो। मजदूरों में क्रान्तिकारी भाषण दो। समाजवाद और साम्यवाद की बड़ी बड़ी बातें बनाना ही सीखो। जब नेतागिरी चमक उठे, भोटों में जीत कर जब कोई अच्छा सा स्थान मिल जाये तब अपना काम बनाना। लोग घर बैठे ही तुमको थैलियां भेंट कर जावेंगे। बस फिर पौबारह पच्चीस है। देखो मेरा अनुभव बहुत पुराना है। तुम मेरी बात मानो और जिस काम को करना चाहते हो उसमें जुट जाओ। परन्तु उद्देश्य सिर्फ एक ही सामने रखना—धन, धन और धन। सफलता निश्चित है।

इस प्रकार से किसी को उल्टा सुल्टा उपदेश देना—पाप-कर्मोपदेश है। अनर्थ दण्ड का चौथा भेद है। श्रावक को ऐसे कामों से बचना चाहिये। Free Advice मुफ्त सलाह की कभी चेष्टा न करनी चाहिये।

बुद्धिवन्त नर ज्ञान से देखै, कहितां लागै पाप विशेषै।
तो अनर्थ कुण घर में घालै, तिण थी कर्मज मैला झालै॥

इस सम्बन्ध में बुद्धिमान मानव को स्वयं विचारना चाहिये। यह ठीक है कि गृहस्थ होने के नाते अपने प्रिय जनों को स्वार्थ वश ऐसे उपदेश देने भी पड़ते हैं, परन्तु बिना प्रयोजन बिना स्वार्थ

विना पूछे ऐसे उपदेश का क्या अर्थ है ? समूचे परिवार व समूची मित्र मंडली व समस्त चिर परिचित समूह को धनी वनाने का तुमने ठेका तो नहीं लिया। तुम सिर्फ अपना ही काम वना सकोगे तो काफी है। तुम किस किस की सार संभार करोगे ? अपना भला बुरा हिताहित सभी सोचते हैं, समझते हैं। हरेक मानव में इतनी अक्ल तो जरूर है। जिस पर जैसी वीतेगी, अपने आप संभालेगा। तुम वीच में कूदने वाले कौन ? तुम से कोई आकर सलाह मांगेगा तभी तो दोगे ? व्यर्थ में क्यों अपना दिमाग खर्च करते हो और अपने घर में अनर्थ का वीज वोते हो। यह मलिन कर्म वंध का कारण है। श्रावक को इससे वचना है। फिजूल में पाप कर्मोपदेश देने का त्याग करना है। अनर्थ दंड विरतिव्रत में त्याग की विधि है—हे गुरुदेव ! मैं जीवन पर्यन्त दो करण तीन योग से चार प्रकार के अनर्थ दंड सेवन का त्याग करता हूं। मैं स्वयं अनर्थ दंड का आचरण नहीं करूंगा, मन से वाणी से, शरीर से। नहीं कराऊँगा मन से वाणी से शरीर से।

जैन दर्शन त्याग की मजवूत नींव पर टिका है। आज के वैज्ञानिक युग में रहने वाला मानव भले ही त्याग का महत्त्व न समझे परन्तु त्याग में जो सुख है, जो आनन्द है, वह भोग में नहीं। भोग जन्य सुख क्षणिक है, थोड़ी देरी टिकने वाला है परन्तु त्याग जन्य सुख स्थायी है। अनन्त काल तक टिकने वाला है। त्यागी को हर हालत में सन्तोष है भोगी को हर

हालत में असन्तोष है, ज्वाला है, लालसा है, न बुझने वाली भूख है, न मिटने वाली प्यास है।

साधारणतया मानव-मन कमजोर होता है। सबका मन एक जैसा मजबूत नहीं होता। कई घोर विपत्ति एवं कष्ट के समय भी अपने प्रण में अपनी प्रतिज्ञा में दृढ़ रहते हैं। प्राणों की बाजी भी लगा देते हैं। परन्तु ज्यादातर ऐसे ही मानव मिलते हैं, जो कमजोर हैं, जिनका मन सुदृढ़ नहीं है, जो मरने से डरा करते हैं। जैन दर्शन ने ऐसे कमजोर मन वाले मानवों को भी त्याग-पथ का उचित रास्ता बताया है। त्याग लेते समय प्रतिज्ञा करते समय, व्रत ग्रहण करते समय आगार रखने की व्यवस्था है। कमजोर मानव आपत्ति के समय इन आगारों से काम चलाता है। त्याग भंग का दोषी वह नहीं बनता। साधारण भाषा में इसे आपद् धर्म भी कहा जाता है। आपद् धर्म जैन दर्शन का आदर्श नहीं है। जैन दर्शन तो इसे निन्दनीय ही कहेगा। अव्रत ही कहेगा। आगार अव्रत की श्रेणी में है। जैन दर्शन का आदर्श तो सर्व व्रती साधु है। साधु का प्रत्येक त्याग तीन करण एवं तीन योग से होता है। वह कोई आगार नहीं रखता। यदि बीमारी की हालत हो, जेठ बैशाख की भयंकर गरमी हो, रात का वक्त हो, प्यास से ऐसे रोगी के कंठ सूख रहे हो, तो भी वह बीमार साधु एक बूंद तक पानी नहीं पी सकता। अपने प्राणों का वह बलिदान कर देगा परन्तु रात्रि-भोजन-निषेध-व्रत में भंग उसे बर्दाश्त नहीं। यह है जैन

आदर्श। परन्तु कमजोर श्रावक प्राणान्त कष्ट के समय पानी का आगार रखा करता है और कष्ट से छुटकारा पा लेता है।

मानव समाज में रहता है। समाज की मर्याद अपने कुल की मर्याद उसे पालनी पड़ती है। उसे अपनी शान और इज्जत को कायम रखना है। मानव यश, कीर्ति, मान, वड़ाई सभी की आंशा रखता है और उसे देखा देख, शर्माशर्मी, लोक लाज हित वहुत से ऐसे काम भी करने पड़ते हैं जो हिंसामय है। ऐसा किये विना समाज में उसका वड़प्पन नहीं रहता। ये काम जरूरी हैं, अनिवार्य हैं। अतः ये अर्थ दण्ड की श्रेणी में हैं।

दुनियां में ऐसे मानवों की भी कमी नहीं जो निन्दनीय काय भी करते हैं। विना मतलव विना स्वार्थ वे भयंकर हिंसामय कार्यों में जुट जाते हैं। लोक निन्दा की वे परवाह नहीं करते।

जश कीर्ति मान वड़ाई काजै,
वलि शरमां शरमीं लोकांरी लाजै।
वलि घर उदारणा रे तांई,
हिन्सादि करै ते अर्थ दण्ड मांही॥

जिण कर्तव्य कियाँ करै लोक भण्ड,
ते कर्तव्य छै अनर्थ दण्ड।

*छःछंडी राखी ते अर्थ दण्ड मांही,
त्यांरै काजै हिन्सादि करै छै ताहि ॥

जैन आदर्श के अनुसार तो अर्थदण्ड व अनर्थ दण्ड दोनों त्याज्य हैं। सर्व व्रती साधु दोनों से अलग रहता है। परन्तु साधारण गृहस्थ इतना त्यागी बन नहीं सकता। अतः उसे बहुत से हिंसामय कार्य अपनी शान व इज्जत के लिये करने ही पड़ते हैं। मजबूरी है। लोगों के ताने सुनने की सामर्थ्य उसमें नहीं है। ऐसे कामों को साधारण जनता ठीक समझती है। प्रशंसा भी करती है। यश कीर्ति मान बड़ाई सभी इससे प्राप्त होते हैं। यह अर्थदण्ड है। परन्तु जो काम समाज में निन्दनीय है, कानून से दण्डनीय है एवं हिंसामय है, ऐसे घृणित एवं नीच कामों को करना अनर्थ दण्ड है। अनर्थ दण्ड तो गृहस्थ के लिये सम्पूर्ण

---

*छव छंडी आगार है—

(१) राज-आज्ञा—गवर्नमेंट का दबाव व कानून का भय।
(२) समाज-आज्ञा—समाज का आदेश : पंचो का दबाव।
(३) देवयोग-देवता का प्रभाव, आदेश या दबाव।
(४) बलवान का दबाव—
(५) कुटुम्बियों का दबाव—
(६) जंगल में आपत्ति पड़ने पर—

रूप से त्याज्य है। सूयगडायंग सूत्र में अनर्थ दण्ड विरतिव्रत के आठ आगारों* का विवेचन है।—

सुयगडायंग अध्ययन अठारमां मझार,
अनर्थरा आठ कह्या छै आगार।
आतमा न्यातीला रै काम,
हिन्सादिक करै छै ताम॥
आघार ते घर हाटादिक काम,
परिवार ने दास दासी नाम।
मंत्री नाग भूत यक्ष देव,
त्यांरे निमित्त हिन्सादि करै स्वमेव॥

*आठ आगार हैं :—

(१) आए हेउवा—अपनी आत्मा के लिये, निज के लिये।
(२) नाए हेउवा—अपने कुटुम्ब के लिये, सम्बन्धियों के लिये, न्यातीलों के लिये।
(३) आघारे हेउवा—अपने घर के लिये।
(४) परिवारे हेउवा—अपने निजी परिवार पुत्र पौत्र, दास दासी आदि के लिये।
(५) मित्त हेउवा—अपने मित्र दोस्त के लिये।
(६) नाग हेउवा—सर्प देव के हेतु।
(७) भूए हेउवा—भूत के लिये।
(८) जक्ख हेउवा—यक्ष के लिये।

अपने लिये, अपनी समाज के लिये, अपने घर दुकान मकान व्यापार आदि के लिये, स्व-परिवार मा बाप स्त्री पुत्र पुत्री आदि के लिये, मित्र के लिये, भूत प्रेत के लिये यक्ष के लिये, देव के लिये मानव को नाना प्रकार के भयंकर हिंसामय कार्य करने पड़ते हैं। भूत प्रेत यक्ष आदि देवों को प्रसन्न करने के लिये व उनसे किसी स्वार्थ साधन के हेतु मानव अनेक हिंसामय कार्य कर लिया करता है। मानव कमजोर है। उसे अपने पर अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य पर भरोसा नहीं। अतः वह अपना मतलब निकालने के लिये देवताओं की शरण में जाया करता है।

यह लोक ने परलोक,
जीवणुं मरणुं ने काम भोग।
यांरे अर्थ वान्छा कियाँ पाप लागे,
अनर्थ कियां आठमुं व्रत भांगे॥

अपने लिये व अपने परिवार आदि के लिये इस लोक सम्बन्धी विषय सुख की कामना करना, व परलोक सुख की कल्पना करना, सुखी अवस्था में जीने की और दुःखी अवस्था में मरने की इन्छा करना—ये सर्व अर्थ दंड हैं।

मानव का अपने निजी कुटुम्ब के साथ व परिवार के साथ व समाज के साथ गाढ़ सम्बन्ध है। वह उनका शुभ चिन्तक है। अतः यदि वह उनके लिये विषय सुख, पौद्गलिक सुख की

कामना करता है, तो धार्मिक दृष्टि से हेय होने पर भी संसारिक दृष्टि से उपादेय है। धर्म पारिवारिक सम्बन्ध तोड़ डालने का आदेश करता है। परन्तु संसार उसे मजबूती से कायम रखने का आदेश देता है। अपने निजी परिवार के प्रति मानव का जो संसारिक कर्तव्य होता है, उसे पालन करना ही पड़ता है। परन्तु एक मानव समूचे संसार को तो पौद्गलिक सुखों से सुखी नहीं बना सकता। यह असम्भव है। यदि कोई समर्थ मानव ऐसी चेष्टा भी करे, तो नतीजा यह होगा कि वह बीस आदमियों को सुखी करने के साथ साथ अस्सी मानवों के दुःख का भी कारण बन जावेगा। एक को यदि धनी बनाना है, तो कितनेक मानवों को गरीब बनाना होगा। यह स्वभाविक है। हजार रुपये हैं, हजार आदमी हैं। सब के हिस्से में एक एक रुपया आता है। यदि एक को हजारपति बनाना है, तो ९९९ को कंगालपति बनना ही पड़ेगा। अतः यह निश्चित है कि समूचे संसार को पौद्गलिक सुखों से सुखी बनाने का ठेका लेना असंगत है, असम्भव है। कोई ऐसा कर नहीं सकता। जिन मानवों से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, कोई लेन देन नहीं, कोई जान पहिचान नहीं, कोई बोलचाल नहीं और न पौद्गलिक सुखों की प्राप्ति के लिये वे हम से अपील करते हैं, प्रार्थना करते हैं, न हम से कोई सलाह पूछते हैं, राय मांगते हैं, व मदद मांगते हैं फिर भी हम ऐसे अपरिचित मानवों के सुखों की, विषय भोग जन्य सुखों की सामग्री जुटाने में निरर्थक जघन्य नीच अमानवीय हिंसामय कार्य

करें, तो यह अनर्थ दण्ड है। बिना मतलब हिंसामय कार्य में जुट जाना उचित नहीं।

नीचे की पंक्तियों में कवि ने इसी रहस्य को समझाने का सफल प्रयास किया है। कवि के शब्द कुछ कटु है, लोगों में फैली हुई धारणा के खिलाफ है, परन्तु सत्य है। लोगों की भ्रान्त धारणा पर प्रहार करने के लिये कटु शब्दों बिना काम नहीं चलता।

असंयती जीवां रो जीवणूं चावै,
असंयती जीयां से हर्षित थावै॥
अर्थे वञ्छयां तो अर्थ पाप लागै,
अनर्थ वञ्छयां आठमूं व्रत भागै॥
असंयती रो मरणूं चावै,
अथवा त्यांने मारै मरावै।
अर्थे मारयां मरायां पाप लागै;
अनर्थ मारयां मरायां व्रत भागै॥
गृहस्थ ने काम भोग भोगायवो चावै,
अथवा त्यांने कामभोग भोगावै।
अर्थे भोगायां थी पाप लागै,
अनर्थे भोगवियां व्रत भागै॥

गृहस्थि ने उपभोग परिभोग भोगावै,
तिणसुं निश्चय पापकर्म बंधावै ।
अर्थे भोगायां तो अर्थ पाप लागै,
अनर्थ भोगायां आठमूं व्रत भागै ॥
गृहस्थि रो काम करै अंशमात,
तिणरै निश्चय पाप लागै साक्षात् ।
अर्थे कियां तो अर्थ पाप लागै,
अनर्थे कियां आठमूं व्रत भागै ॥

जिन के जीवन में भोग ही प्रधान है, जो विषय सुख में तल्लीन है, पौद्गलिक सुखों की सामग्री जुटाने में बेचैन हैं, ऐसे मानवों को जैन दर्शन असंयमी, असंयति कहता है। आत्मिक उत्थान से उनको कोई सरोकार नहीं। जितने अंश में जितनी मात्रा में वे नियम लेते हैं, त्याग वृत्ति अपनाते हैं, उतनी ही मात्रा में वे संयमी हैं। अतः गृहस्थ को संयमासंयमी भी कहा गया है। पूर्ण संयमी तो वही है, जो पूर्ण त्यागी है। आदर्श साधु तीन करण एवं तीन योग से त्याग करता है। अतः वह पूर्ण संयमी है।

असंयमी-असंयति जीवों के जीवित रहने की या उनके मरने की कामना करना, उनके जीवित रहने में हर्षित होना, व उनको मारना मराना आदि सारे काम सावद्य हैं। मरने वाला मरता है, जीने वाला जीता है। हमारी शुभ कामना से व मंगल

कामना से न तो कोई लम्बी आयु ही पा सकता है और न अशुभ चिन्तवन से कोई मर ही जाता है। यह तो हमारा कोरा भ्रम है। जब ऐसी बात है, तब फिर हमें इस पचड़े में क्यों पड़ना? उदासीन रहना ही तो सबसे उत्तम रास्ता है। परन्तु जहाँ सम्बन्ध है, अपनापन है, निजत्व है, वहाँ मोह है, ममता है, प्रेम है, आसक्ति है। अतः अपने निजी सम्बन्धियों के लिये उनकी लम्बी आयु के लिये हम मंगल कामना करेंगे ही। उनका जीवन त्यागमय नहीं, असंयमी है फिर भी मोह के वश हम ऐसा करते हैं। यह अर्थ दण्ड है। इसी प्रकार हमारे जो दुशमन हैं, कट्टर शत्रु है, हमें बराबर दुःख पहुंचाते हैं, उनकी मृत्यु की भी कामना हम करते हैं। हम जानते हैं उनको मारने से व उनको मरवाने से भयंकर पाप लगता है परन्तु अपने स्वार्थ के लिये हम ऐसा करते हैं। यह अर्थ दण्ड है।

हम गृहस्थ हैं, हमारा बड़ा परिवार है। सब के साथ अच्छा सम्बन्ध है। काम, भोग, विषय-जन्य सुख गृहस्थ जीवन की आवश्यक निधि है। इसे हम स्वयं भोगते हैं, अपने प्रिय सम्बन्धी इष्ट मित्र व चिर परिचित मानवों को भोगाने में आनन्द मानते हैं। हम जानते हैं मानते हैं कि काम भोग सुख उपादेय नहीं फिर भी इसमें हमारा निजी स्वार्थ है। अतः हम ऐसा करते हैं। यह अर्थ दण्ड है। इसी प्रकार उपभोग परिभोग को भोगना भोगाना आदरणीय नहीं परन्तु हमें इनका उपयोग करना पड़ता है। गृहस्थ जीवन के सारे संसारिक काम कर्म

बंध के कारण हैं। इसी कारण तो ऋषि मुनि संसारिक जीवन त्याग कर त्यागमय विरक्त जीवन विताने का आदेश देते हैं। गृहस्थ के सारे उचित काम जो हम करते हैं, कराते हैं, जैन दर्शन इनको अर्थ दण्ड कहता है। न्याय की दृष्टि में व समाज की दृष्टि में ऐसे कार्य उचित माने गये हैं। परन्तु विना प्रयोजन सिर्फ कौतुहल वश हिंसामय कार्यों में जुट जाना अनर्थ दण्ड है। रास्ते चलते निर्दोष मानव की पीठ में छुरी भोंक देना, रिवाल्वर से दनादन गोलियों की बौछार करके निर्दोष मानवों की हत्या कर डालना, पशुबल से भले घर की बहु बेटियों की इज्जत को लूट लेना आदि घृणित काम अनर्थ दन्ड हैं। विना प्रयोजन किसी की लम्बी आयु की कामना करना व उसकी शीघ्र मृत्यु की वाञ्छा करना, उसे स्वयं मार डालना या दूसरों से मरवा डालना अनर्थ दण्ड है। विना मतलब किसी व्यक्ति को विषय सुख काम भोग की तृप्ति में प्रोत्साहन देना, उसकी काम भूख Sex appetite की शान्ति के उपाय जुटाना, विवाह शादी के लिये वर बधू की तलाश में लगे रहना, ये सारे काम अनर्थ दण्ड हैं। काम भूख कभी मिटने वाली, कभी शान्त होने वाली नहीं। जैसे जैसे इसे मिटाने की चेष्टा की जाती है यह दूने वेग से भभकती है। अतः विना प्रयोजन इस झमेले में क्यों पड़ा जाय ? यह अनर्थ दण्ड है। अपने स्वार्थ के लिये किसी गृहस्थ का काम निकालना अर्थ दण्ड है। परन्तु व्यर्थ में विना स्वार्थ किसी काम को करना, हिंसामय कार्य में जुट जाना अनर्थ दंड है।

हम गृहस्थी हैं। गृहस्थ जीवन को चलाने के लिये नाना प्रकार की अनिवार्य हिंसा करनी ही पड़ती है। ऐसी जरूरी हिंसा भी अशुभ कर्म बंध का कारण है परन्तु यह क्षम्य है। अर्थ दण्ड है। ऐसी हिंसा से व्रत भंग नहीं होता। सामाजिक मर्याद व न्याय दृष्टि से भी यह अपराध नहीं। परन्तु कुटिल प्रकृति वाला मानव विना प्रयोजन भी नाना प्रकार के घृणित नीच एवं हिंसामय कार्य किया करता है। ऐसा करना जघन्य अपराध है। समाज इसे निन्दनीय कहता है। कानून इसे दण्डनीय कहता है। जैन दर्शन इसे अनर्थ दण्ड कहता है। नाना प्रकार के सरल उदाहरणों से कवि ने अनर्थ दण्ड का रहस्य वताया अन्त में कवि कहता है—

कहि कहि ने कितनूं इक केहुं,
अर्थ अनर्थ दंड छै वेहुं।
तिण में अर्थ री अव्रत राखी छै जाण,
अनर्थ दंड तणा पचखाण॥

कहाँ तक गिनाया जाय, अर्थ दण्ड एवं अनर्थ दण्ड के अनेक भेद हैं। अर्थ दण्ड में अनिवार्य हिंसा में अपनी कम-जोरी के अनुरूप अव्रत रखी जा सकती है, आगार रखा जा सकता है, परन्तु अनर्थ दण्ड -व्यर्थ हिंसा का तो त्याग ही करना चाहिये। अष्टम व्रत का त्याग करण एवं योग सहित करना होता है।

यां ने रुडी रीत पिछाणी लीजे, करण जोग घाली व्रत कीजे।
यां में रुकी सेरी तिण मांहि धर्म, छुटी सेरी तेहिज अधर्म॥

जितने अंश में त्याग किया जाता है वही धर्म है, वही व्रत है। जितना आगार है, जितनी छूट है, जितनी अव्रत है वह अधर्म है। इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये।

आठमां व्रत रो बहोत विचार, यो अल्प मात्र कियो विस्तार।
हिव नवमूं व्रत कहुं छुं ताय, सांभलज्यो भवियण चित ल्याय॥

आठवें व्रत के पश्चात् अब कवि नवमें सामायिक व्रत के विषय में विवेचन करना चाहता है।

सामायिक व्रत पहला शिक्षा व्रत है एवं पूर्व के क्रम से नवमा व्रत है। शिक्षा व्रत चार हैं:—

(१) सामायिक व्रत।
(२) देशावकाशिक व्रत।
(३) पौषधोपवास व्रत।
(४) अतिथि संविभाग व्रत।

वार वार अभ्यास करने योग्य व्रतों का नाम शिक्षाव्रत है। प्रथम आठ श्रावक व्रतों की तरह शिक्षाव्रत का ग्रहण यावज्जीवन के लिये नहीं होता। प्रत्येक शिक्षा व्रत का कालमान पृथक् पृथक् है।

व्रत नवमा

सामायिक व्रत

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिए ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥

उत्तराध्ययन ९-३४

दुर्जय संग्राम में दस लाख सैनिकों को जीतने वाले मानव की अपेक्षा सिर्फ एक अपनी आत्मा को जीतने वाला मानव अधिक शक्तिशाली है। आत्म विजय सर्वोत्कृष्ट विजय है।

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण वज्झओ ।
अप्पणामेवमप्पाणं, जइत्ता सुह मेह ए ॥

उत्तराध्ययन ९-३५

अतः तू सिर्फ अपनी आत्मा से ही युद्ध कर, संग्राम कर। बाहर के युद्ध से तेरा क्या काम ? आत्म विजय से ही तू सुख प्राप्त कर सकेगा।

सुख और शान्ति प्राप्त करना ही तो तेरे जीवन का लक्ष्य है और इसके लिये सामायिक व्रत सबसे सीधा सादा और सरल साधन है। कमजोर से कमजोर मानव भी इस साधन से सुख और शान्ति का अनुभव कर सकता है।

मानव दिन रात संसार के पचड़ों में पचता है। एक झंझट से पिण्ड छुटता है, तो दूसरा तैयार है। पचते पचते वह बूढ़ा-

हो चला, परन्तु पचने का अन्त तो अब भी न आया। संसार का माया जाल ही ऐसा है कि मानव इससे निकल ही नहीं सकता। झंझट में फंसा मानव कुछ देर के लिये शान्ति चाहता है, आराम चाहता है। अपने विषय में कुछ सोचना चाहता है विचारना चाहता है। इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये वह हाथ में माला लेकर जाप करता है। परमात्मा का नाम लेता है। एकान्त में बैठ कर आंखें बंद किये हुए आत्म उत्थान का रास्ता खोजता है। जैन दर्शन में इस क्रिया को सामायिक* कहा गया है।

इन्द्रिय-विषय एवं कषाय धधकती हुयी भीषण ज्वाला है। सशरीरी आत्मा इस अग्नि में सांय सांय कर जल रही है। इस भीषण अग्नि को शान्त करने के लिये एवं आत्मा को निर्मल व पवित्र बनाने के लिये सामायिक व्रत एक मुख्य साधन है।

---

*राग द्वेष रहित होकर प्रत्येक प्राणी को अपने समान समझना, आत्म तुल्य मानना-सम-कहलाता है। इस सम भाव की आय हो, समभाव का लाभ हो, प्राप्ति हो जिससे उसे समाय कहते हैं। ऐसी समाय में जिस क्रिया के द्वारा प्रवृत्ति की जाती है, उस क्रिया को साधारण भाषा में सामायिक कहते हैं। सम + आय – इन दो शब्दों के मिलाने से "समाय" शब्द बनता है। समाय का अर्थ है समभाव की प्राप्ति। जिस क्रिया से समभाव की प्राप्ति हो, राग द्वेष का विनाश हो, विषय कषाय की आग शान्त हो, संसारिक पचड़ों से दूरत्व हो—ऐसी क्रिया को जैन दर्शन में सामायिक कहा गया है।

कवि सामायिक व्रत आरम्भ करने के पहिले बारह व्रतों के विषय में संक्षेप से कहता है—

पांच अणुव्रत पालतां, गुणव्रत देश कहाय।
शिखा व्रत च्यारूं चोकड़ी, कहै उपमा ल्याय॥
जिम देवल कलशी चढ़ै, मुकुट मस्तक अंत॥
इम समदृष्टि जीवड़ा, शिखा व्रत पालंत॥

पांच अणुव्रत एवं तीन गुणव्रत ये आठ व्रत आगे बताये जा चुके। अब चार शिक्षाव्रत बाकी रहे। ये शिखा चाटी के समान हैं। देव मन्दिर की मूर्त्ति में कलश का जो स्थान है, मस्तक के लिये मुकुट का जो स्थान है, वैसे ही व्रतों में चार शिक्षा व्रतों का विशेष स्थान है। समदृष्टि श्रावक शिक्षा व्रतों का नियम पूर्वक पालन करता है।

व्रत आठूं पंहली कह्या, जाव जीव लग जाण।
शिखा व्रत च्यारूं तणा, विविध पणें पचखाण॥

प्रथम आठ व्रत समूचे जीवन पर्यन्त तक ग्रहण किये जाते हैं। अन्त के चार शिक्षाव्रतों में समय की अवधि रहती है, सीमा रहती है। प्रत्येक शिक्षाव्रत का कालमान अलग अलग है।

सामायक मुहूर्त एक नों, जो करै चित ल्याय।
देशावगासी व्रत ना, जेम करै तिम थाय॥

पोसो हुवै दिन रोत रो, ध्यावै निर्मल ध्यान ।
बांरमूं व्रत शुद्ध साधु ने, प्रतिलाभ्यां थी जान ॥

प्रथम शिक्षा व्रत है सामायिक व्रत। सामायिक सिर्फ एक मुहूर्त्त यानी ४८ मिनट की होती है।

दूसरा शिक्षा व्रत है—देशावकाशिक व्रत। इस व्रत में जितने समय का त्याग करें, नियम लें उतना ही यह हो सकता है।

तीसरा शिक्षा व्रत है-पौषध व्रत। इस व्रत का परिमाण है दिन रात।

चौथा शिक्षा व्रत है—अतिथि संविभाग व्रत। यह व्रत शुद्ध साधु के संयोग मिलने पर ही सम्भव है। इस व्रत में शुद्ध साधु को शुद्ध दान देने का विधान है।

इस प्रकार से संक्षेप में बारह व्रतों को स्मरण कराने के पश्चात् कवि अपने मूल विषय—सामायिक व्रत पर आता है।

सामायिक समता पणे, सावद्य योग पचखाण जी।
काल थकी महूरत एकनी, दुविहं तिविहेणं जाणजी ॥
उत्कृष्टै भांगे करी, तीन करण तीन योग जी।
गृहवास तणी वातां तणों, न करै हर्ष न सोग जी ॥

सामायिक का विधान है—

हे भगवान! मैं सामायिक आरम्भ करता हूं। एक मुहूर्त्त तक सावद्य योग का पचक्खाण करता हूं। मन से वचन से और

शरीर से सावद्य प्रवृत्ति स्वयं नहीं करूंगा और दूसरों से नहीं कराऊँगा। इस प्रकार से मानव रागद्वेष रहित होकर समभाव धारण करते हुए सावद्य योग—पाप कार्य का पच्चक्खाण करता है, त्याग करता है। एक मुहूर्त्त यानी ४८ मिनट की सामायिक धारण करता है। दो करण एवं तीन योग से सावद्य कार्य का त्याग करता है। परन्तु ऐसे भी दृढ़ मन वाले श्रावक हैं, जो सामायिक में तीन करण तीन योग से सावद्य कार्य का त्याग कर दिया करते हैं। ऐसे श्रावकों को सामायिक काल में पुत्र जन्म जैसे समाचारों से हर्ष नहीं होता और न पुत्र-मृत्यु जैसी खबरों से कोई दुःख ही होता है। वे तो हर्ष व शोक समाचारों को एक साधारण घटना की तरह ग्रहण कर लिया करते हैं। उनको मन पर बड़ा कठोर नियन्त्रण रखना पड़ता है।

सामायिक करते समय श्रावक आसन, पुस्तक, मुंहपति, पुंजणी आदि उपकरण रखा करता है। ये शरीर की हिफाजत के लिये जरूरी है परन्तु ये अव्रत हैं। देखिये कवि के शब्द—

उपगरण सामायक करतां राखिया,
तिण उपरान्त किया पचखाणजी।
राख्या ते अव्रत परिभोगरी,
तिणरो पाप निरन्तर जाण जी॥
जे उपगरण सामायिक में राखिया,
त्यांरो पिण करे प्रमाण जी।

बाकी तीन करण तीन योग सूं,
पांचू ही आश्रव ना पचखाण जी ॥

सामायिक शुरू करते समय श्रावक जो उपकरण—आवश्यक वस्तुयें अपने पास रखता है वे सब उपभोग परिभोग की सामग्री है। ऐसी सामग्री पास रखना अव्रत है। अतः सावद्य है। जो जरूरी उपकरण सामायिक में रखे जाते हैं, उनका भी परिमाण करना पड़ता है।

सामायिक में मर्यादित उपकरणों के अतिरिक्त सब का तीन करण एवं तीन योग से त्याग किया जाता है। पांच आश्रव द्वार हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह—सेवन का त्याग किया जाता है। किसी भी पौद्गलिक वस्तु का उपयोग करना, उसे काम में लेना, उसे अपने अधिकार में रखना अव्रत है। जितनी जितनी मात्रा में इन वस्तुओं का त्याग किया जाता है, इनको छोड़ा जाता है, वह व्रत है। भोग वस्तु को चाहे सामायिक में काम लें चाहे विना सामायिक के, बात तो एक ही है। भोग में किसी समय भी धर्म नहीं हुआ करता।

ते उपग्रण पहरै ओढ़ै बावरे, बिछावणादिक करै बारंबारजी।
ते शरीर री साता कारणें, ते तो सावद्य योग व्यापारजी ॥

सामायिक में रखे हुए उपकरण श्रावक ओढ़ता, पहिनता है, बारंबार बिछाता है, समेटता है। शरीर को आराम पहुंचाने के

लिये ये सारे काम किये जाते हैं। अतः उपकरण सावद्य है।

गहने आभूषण पहने रह कर सामायिक करने के सम्बन्ध में भी कवि ने मीठी चुटकियाँ ली है।

बलि गहणां आभरण कने रह्या,
ते पिण अव्रत में जाण जी।
तिण रो पाप निरन्तर जीव रै,
सामायिक में पिण लागै छै आणजी॥
ते गहणां आभ्रण रा जतन करै,
त्यां से राजी हुवै तिणवारजी।
आघा पाछा समारै तिण अवसरे,
सावद्य योग व्यापार जी॥
उपग्रण गहणां कनै राखिया,
ते तो नहीं आवै समाई रै कामजी।
काम तो आवै परिभोग में,
सुख साता शोभादिक ताम जी।
समाई री दीधी जिन आगन्या,
ते समाई छै संवर धर्मजी।
उपग्रण गहणां परिभोगव्यां,
तिण से तो लागै छै पाप कर्म जी।

स्वामी जी के समय में पुरुष एवं स्त्रियां दोनों गहने पहनते थे। भगवान् महावीर के आदेश अनुसार स्वामीजी उपदेश देते थे कि—"सव्वे आभरणा भारा" आभूषण गहना भार है। वजन है, बोझ है। सामायिक पौषध आदि धार्मिक कार्यों को करते समय भी यदि यह बोझ लदा रहे, तो फिर इस बोझ से छुटकारा कब होगा ?

नारी जाति का स्वभाव है सुन्दर सुन्दर नयी नयी डिजाइन के आभूषण पहिनना और उनका प्रदर्शन करना। धर्म स्थान में भी उनका यह स्वभाव छूटता नहीं। फल यह होता है कि सामायिक में आत्म चिन्तवन में ध्यान लगने के बजाय उनका ध्यान गहनों की सार संभाल में लग जाता है। उसके मन में आता है कि सब कोई मेरे सुन्दर गहने देखे, मेरे आभूषणों की तारीफ करे, उनकी सराहना करे। सामायिक समाप्त होते ही आसपास वाली स्त्रियां उस नारी को घेर लेती है। उसके आभूषणों को ध्यान से देखती है। कोई पूछती हैं—कितना दाम लगा ? कोई पूछती है—कहां से बनाया ? किस सुनार ने बनाया ? कोई कहती है—एक तो हम भी ऐसा बनावेंगी। एक कहती है—मरो ए, ईसा गहणा तो म्हे कदेइ देख्या नी। थारो तो लाड़ बहुत है जो तने इसा इसा गहणा बना कर ल्या देवे। इस प्रकार से तारीफ होती है आभूषणों की और वह भी धर्म स्थान में। इसी प्रवृत्ति में परिवर्तन करना होगा। धर्म स्थान में गहनों की प्रदर्शनी शोभा नहीं देती। किसी को अपनी शान

बतानी है, या अपने धन की शेखी बघारनी है, तो बहुत से स्थान हैं। जिस स्थान पर हमें सुन्दर उपदेश मिलते हैं कि "परिग्रह धन दौलत अनर्थ का मूल है" उस स्थान पर आभूषणों की तारीफ कैसी? दो विरोधी चीजें एक साथ रहने से दोनों का महत्त्व गिर जाता है। नारी जाति को इस पर ध्यान देना होगा और धार्मिक स्थान का वातावरण भी पवित्र एवं शुद्ध रखना होगा। धार्मिक स्थान में चारों तरफ सादगी ही सादगी दीखनी चाहिये। तड़क भड़क दिखाने के लिये तो धर्म स्थान नहीं। इस पर स्त्री जाति को विचार करना है और अपने वस्त्र व आभूषण की चटक मटक मिटा कर उसमें सादगी लानी है। मानव जिस वक्त जिस समय जो काम करता है, उसकी पोशाक उसके वस्त्र उस काम के अनुरूप ही होने चाहिये। नहीं, तो विपरीतता दीखने लगती है। रसोई का काम, जरी खीनखाप या रेशमी वस्त्र पहन कर नहीं किया जाता। मुर्दे के साथ श्मशान जाते समय तड़क भड़क वाली पोशाक नहीं पहनी जाती। विवाह शादी के शुभ अवसर पर फटी पुरानी मैली कुचेली पोशाक अशोभनीय लगती है। अब सोचो! जो स्थान आत्म उत्थान के पवित्र कार्यों के लिये है, वहाँ पर चटक मटक कैसी? वहाँ पर तड़क भड़क क्यों? वहाँ का वातावरण शुद्ध चाहिये। सादगी ही सादगी दीखनी चाहिये। चारित्रात्माओं के दर्शनार्थ आये हुए नये आगन्तुक पर तभी असर पड़ा करता है, जब उसे समूचा वातावरण सीधा सादा दीखे। नहीं तो उस पर उल्टा असर

पड़ता है। उपदेश देने वाले आचार्य श्री व उनकी मण्डली तो सम्पूर्ण रूप से परिग्रह त्यागी और रोजाना उनका जोशीला उपदेश सुनने वाली नारी मण्डली परिग्रह की उपासिका बनी रहे, यह ठीक नहीं जंचता, मेल नहीं खाता।

स्वामी जी ने गहनों को कर्म बंध का कारण बताते हुए कहा है कि गहनों से निरन्तर लगने वाला पाप सामायिक में भी लगता रहता है। सामायिक के समय जो गहने पहिने हुए होते हैं, वे सब अव्रत में है। अव्रत का पाप तो सामायिक में भी लगेगा ही। अपने आभूषणों की वह सार संभाल करता है, उनको देख कर मन में राजी होता है, लोगों को दिखाने के लिये उनको ऊंचा नीचा आगे पीछे भी करता रहता है। ये सब काम सामायिक में किये जाते हैं। फिर ये गहने आभूषण सामायिक में तो कोई काम आते नहीं। मानव सिर्फ अपनी शान अपनी शोभा, अपना ऐश्वर्य लोगों को दिखाने के लिये इनका सामायिक में प्रदर्शन करता है। सामायिक संवर धर्म है परन्तु ये गहने व वस्त्र तो अपनी शान का प्रदर्शन मात्र है। सावद्य है। शुद्ध सामायिक में बाधा स्वरूप है।

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्ट विडम्बियं।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा॥

उत्तराध्ययन।

सर्व गीत गायन विलाप रूप है। सर्व नाच नाटक विडम्बना रूप है। सर्व आभूषण गहना, कीमती पोशाक आदि भार रूप है और सर्व काम भोग दुःख के कारण हैं। गहने आभूषण चाहे सामायिक के समय पहने रहे, चाहे पौषध में पहने रहें, चाहे विवाह शादी आदि शुभ अवसरों पर पहनें, एक ही बात है। हर समय ये भार रूप ही माने जायंगे और हर मौके पर कर्म बंध के कारण ही रहेंगे। "सव्वे आभरणा भारा"—भगवन् महावीर ने आभूषण को सर्वत्र भार रूप ही माना है।

भारत की राजनैतिक आजादी के साथ साथ और भी कई बातों में आजादी मिल गयी। लोगों को आंखें आज मारवाड़ी स्त्रियों के बड़े बड़े भारी गहनों पर भी टिक गयी हैं। वे मौका मिलते ही उन गहनों पर एक झपट मारने को भी तैयार बैठे हैं। आज गांवों व शहरों की गलियों में भारी गहने पहन कर निकलना खतरे से खाली नहीं है। यदि कहीं कुछ हो गया, तो आज दाद पुकार कोई सुनने वाला नहीं। सब आजाद है। अपनी रक्षा स्वयं करो। सावधानी क्यों नहीं रखते? हम चोर डकैतों को कहाँ ढूंढ़ते फिरें? यह जवाब मिलेगा पुलिस में सूचना देने का। अब सोचना है। परिस्थिति का सामना करना है। नारी जाति को सर्व प्रथम गहनों का प्रदर्शन बंद करना होगा। जान की उतनी जोखिम नहीं, जितनी जोखिम है गहनों की। "परिग्रह अनर्थ की खान है"-कैसा सुन्दर आदर्श हमारे सामने है। सिर्फ इस पर विचार करना है और इसके अनुरूप कार्य करना है फिर

आज के साम्यवाद समाजवाद व किसी वाद से कोई भय न रहेगा।

मानव-आत्मा सशरीरी है। यह सशरीरी आत्मा प्रत्येक क्षण काम करती रहती है। अतः जैन दर्शन में ऐसी आत्मा को अधिकरण कहा गया है। जो अधिकरण है वह षट् काय-जीवों के लिये शस्त्र है। ऐसे शस्त्र की जो सामायिक में सार संभाल करता है, वह सावद्य ही कहा जायगा। मानव शरीर पौद्गलिक है। शरीर का मोह, ममत्त्व, सार संभाल को जैन दर्शन कोई महत्त्व नहीं देता। इस सम्बन्ध में कवि के शब्द देखिये—

समाई में श्रावक री आत्मा,
अधिकरण कही जिनराय जी।
भगवती रै शतक सात में,
पहिला उद्देशा रै मांय जी॥
अधिकरण ते शस्त्र छः काय नो,
तिण रो साथरो करै अंशमात जी।
तिणरी सार संभार जतन करै,
सावद्य जोग साक्षात जी॥
कपड़ो ओढ़ै पहरै वावरै,
वलि वैयावच करे ताय जी।

तिण अधिकरण ने सांतरां कियो,
तिण री आज्ञा नहीं दे जिनराय जी ॥
अंश मात्र शरीर रो कारज करें,
ते तो सावद्य योग छैं ताय जी।
तिणसूं पाप लागैं छैं जीव रे,
तिणरी आज्ञा नहीं देवें जिनराय जी ॥

श्री भगवती सूत्र के सातवें शतक पहले उद्देशे में सामायिक में भी श्रावक की आत्मा को अधिकरण ही बताया है। आत्मा अधिकरण है। अतः यह षट् काय जीवों की हिंसा का शस्त्र है। ऐसे शस्त्र का तेज करना, सार संभाल रखना सावद्य है। अपने वस्त्र आभूषण या दूसरे उपकरण पहरना, ओढ़ना, समेटना अपने शरीर की सार संभाल करना, उसकी हिफ़ाज़त करना आदि जितने कार्य सामायिक में किये जाते हैं, वे सब इस शरीर रूप शस्त्र को तीक्ष्ण करने के समान हैं। शरीर की हिफाजत के लिये शरीर को आराम पहुंचाने के लिये, जो भी काम किये जाते हैं, वे सब सावद्य हैं। शरीर की सार संभाल चाहे सामायिक में करे चाहे बिना सामायिक करे, बात तो एक ही है। शरीर और आत्मा दो भिन्न वस्तुयें हैं। शरीर पौद्गलिक है जड़ है। आत्मा चेतन है। हमें आत्म उत्थान का साधन खोज निकालना है, जड़ शरीर का पोषण करना नहीं। सामायिक में

जप, ध्यान, चिन्तवन उपदेश श्रवण, अध्ययन आदि करने से आत्मा ऊंची उठती है। हल्के-पन का अनुभव करती है। परन्तु सामायिक में वस्त्र आभूपण आदि से शरीर को सजाने से शरीर जरूर पुद्गल जन्य सुख का अनुभव करता है परन्तु इससे आत्मा को तो कोई लाभ नहीं पहुंचता। वह तो हल्की होने के वजाय भारीपन का अनुभव करती है। अतः सामायिक में वस्त्र आभूपण रखना, शरीर की हिफाजत करना सावद्य है।

जैन दर्शन में "जिन आज्ञा"—भगवान का आदेश को बड़ा महत्त्व दिया गया है। जिस कार्य से हिंसा हो, या होने की सम्भावना हो, उस कार्य को करने का भगवान ने कभी आदेश नहीं दिया। जैन धर्म अहिंसा प्रधान है। हिंसा क्या है—इस प्रश्न पर जैन दर्शन ने काफी प्रकाश डाला है। प्राणी क्या है—इस पर भी खूब विवेचन किया गया है। पट् काय की कल्पना जैन दर्शन की विशेपता है। प्राणी विज्ञान की यह कल्पना ऐसे समय की गयी थी जब वैज्ञानिक रिसर्च—खोज के कोई भी साधन उपलब्ध न थे। आजका विज्ञान इस पट् काय कल्पना को बहुत कुछ सत्य समझने लगा है। जिस काम में जरा-सी भी हिंसा दीखी, उस काम की जैन तीर्थंकरों ने कभी भी आज्ञा न दी। जिस काम में आज्ञा नहीं, वह काम सावद्य है। सामायिक में वस्त्र आभूपण रखने व शरीर की सार संभार करने में जिन आज्ञा नहीं अतः यह सावद्य है।

हालवो चालवो शरीर रो,
सुखसाता काज करै जाण जी।
ते सावद्य जोग श्रीजिन कह्या,
तिणसूं पापकर्म लागै छै आणजी ॥
जिण कर्त्तव्य कियां जिन आज्ञा नहीं,
ते सावद्य योग साक्षात जी।
जिण कर्त्तव्य कियां छै जिन आज्ञा,
निरवद्य योग विख्यात जी ॥
उपग्रण गहणा शरीर नां,
जतन करै समाई मझार जी।
त्यांने जिन आज्ञा नहीं सर्वथा,
ते सावद्य योग तणा व्यापारजी ॥

सामायिक में श्रावक शरीर को सुख पहुंचाने के लिये हलन चलन क्रिया करता है। भिन्न भिन्न प्रकार से शरीर को अंग, प्रत्यंग को ऊंचा नीचा तिरछा टेढ़ा किया करता है। ऐसा करने से शरीर को आराम मिलता है। परन्तु ऐसी शारीरिक क्रिया, सावद्य है। शरीर की हिफाजत के लिये सामायिक में नाना प्रकार की चेष्टा करना, व वस्त्र आभूषण रखना, उपकरण आदि काम में लेना ये सारे कार्य सावद्य हैं। सामायिक में ऐसे कार्य

करने की जिन भगवान ने आज्ञा नहीं दी। आज्ञा बाहिर के जितने काम हैं सब सावद्य हैं। सामायिक में ध्यान, जाप, आत्म चिन्तवन, धार्मिक अध्ययन, धार्मिक उपदेश श्रवण, धार्मिक चर्चा आदि कामों में लगे रहने का भगवान ने आदेश दिया है। इन कामों में जिन आज्ञा है। ये निरवद्य हैं। इससे आत्मा उज्ज्वल होती है, हल्की होती है। वस्त्र आभूषण व स्व-शरीर तो परिग्रह है। परिग्रह पर मोह, ममत्त्व व अपनापन रखने से आत्मा मलिन होती है। भारी होती है। अतः इस काम में भगवान का आदेश नहीं, आज्ञा नहीं।

त्याग का महत्त्व तो अनेक भारतीय दर्शन स्वीकार करते हैं। जैनेतर दर्शनों का त्याग जैन दर्शन का व्रत है और उनका भोग जैन दर्शन का अव्रत है। सामायिक में वस्त्र आभूषण उपकरण भोग हैं, आगार हैं, अव्रत हैं। अतः इनको सामायिक में रखना या भोगना सावद्य है।

कनै राख्या त्यांरा जतन करै,
	यो राख्यो समाई में आगार जी।
समाई करतां जे नहीं राखिया,
	त्यांरा जतन नहीं करै लिगार जी॥

श्रावक रा उपगरण अव्रत मझै,
	कह्या उववाई ने सुयगड़ाअंग जी।

त्याने सेवै सेवावै ते सावद्य योग छै,
तिणरी आज्ञा नहीं दे जिनरंग जी ॥

उववाई और सुयगडाअंग सूत्र के अनुसार सामायिक में श्रावक के उपकरण, वस्त्र, आभूषण आदि सारे अव्रत हैं। इनका स्वयं उपयोग करना या दूसरों को करने देना सावद्य है। इसमें जिन आज्ञा नहीं। सामायिक में उपकरण वस्त्र आभूषण आदि रखने से उनकी यतना भी करनी पड़ती है। सार संभाल भी रखनी पड़ती है। जरूरत होने पर उनका उचित्त उपयोग भी किया जाता है। ये सारे काम सावद्य हैं। सामायिक करते समय जिन उपकरण वस्त्र आभूषण आदि का त्याग कर दिया गया उनके सार संभाल की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जितने अंश में त्याग किया गया, उतना ही फायदा हुआ। त्याग व भोग के साधारण भेद को समझ लेने से सारी बातें साफ साफ दीखने लगती हैं। जो आगार है जो छूट है वह अव्रत है। वह भोग है। कर्म बंध का कारण है। जो त्याग है वह व्रत है। संवर धर्म है। आत्म विकास का साधन है।

इतने स्पष्टीकरण के बाद भी प्रश्न उठता है—

कोई कहै सामायिक कीधी तेह ने,
सावद्य योग पचखाण जी।

तिण रै पाप रो आंगार किहां थी रह्यो,
कोई एहवीं पूछा करै आण जी ॥

सामायिक करने वाले श्रावक ने जब सावद्य योग का त्याग कर दिया, तो फिर उसके पाप कार्य का आगार, छूट रहा कैसे ? फिर सामायिक में पाप क्यों ?

स्वामी जी इस प्रश्न का उत्तर बड़ी सफाई से देते हैं।

तेहने जबाब इम दीजिये,
सर्व सावद्य रा नहीं पचखाण जी ।
सर्व सावद्य रा त्याग साधां तणे,
तेहनी करो पिछाण जी ॥

छव भांगा समाई में पचखिया,
तिण रै तीन भांगाँ रो आगार जी ।
तिणरै पाप लागै छै निरन्तरे,
एहवा सावद्य योग व्यापार जी ॥
तिणरै पुत्रादिक हुआँ हर्ष हुवै,
मूवा गयाँ होवै सोगजी ।
इत्यादि आंगार सामायिक मझै,
एहवा सामायिक में सावद्य योगजी ॥

साधारणतया श्रावक सामायिक में नव कोटि त्याग (तीन करण तीन योग) नहीं करता। वह तो सिर्फ दो करण तीन योग अर्थात् छव भांगा से त्याग करता है। तीन भांगों का आगार रह जाता है। इन तीन भांगों के अन्तर्गत, जो श्रावक के छूट है खुला रास्ता है, उसी से पाप का आगमन सम्भव है। इसी छूट के कारण श्रावक के सामायिक में निरन्तर पाप-क्रिया भी चालू रहती है। श्रावक सामायिक में बैठा है। पुत्र जन्म का समाचार वह सुनता है। उसकी रग-रग में खुशी की लहर दौड़ने लगती है। प्रत्येक रोम में हर्ष समा जाता है। थोड़ी ही देर बाद वह अपने प्रियजन की मृत्यु का दुःखद समाचार सुनता है। उसके मन पर गहरा आघात लगता है। सामायिक रहने पर भी वह दुःख का अनुभव करता है। श्रावक अपनी कमजोरी के कारण सामायिक में तीन भांगों की छूट रखता है। आगार रखता है। जहाँ आगार है वहाँ पाप क्रिया भी निश्चित है। आगार के कारण श्रावक का सामायिक व्रत भंग नहीं होता। आगार, छूट अव्रत, पाप है तो व्रत भंग महापाप है। व्रत भंगजन्य महापाप से बचने के लिये श्रावक कुछ आगार रखा करता है। साधु सर्वव्रती, सर्व त्यागी होता है। उसके कोई आगार नहीं, कोई छूट नहीं, कोई अव्रत नहीं। अतः उसको किसी प्रकार की पाप क्रिया भी नहीं लगती। श्रावक कमजोर है। वह सामायिक में सर्व सावद्य योग का त्याग नहीं किया करता। वह आगार रखता है, छूट रखता है। आगार से छूट से

पाप क्रिया जरूर लगती है परन्तु वह व्रत भंग जन्य महापाप से तो बच निकलता है।

स्वामीजी बड़े स्पष्टवक्ता थे। चाहे कितनी ही अप्रिय हो, सच्ची बात कहने में उन्होंने कभी हिचकिचाहट न की। शब्दों का माया जाल उनके पास न था। घुमा फिरा कर तोड़ मरोड़ कर किसी बात को कहना उन्होंने कभी न सीखा। आज उनकी कटु भाषा को लेकर उनकी स्पष्टवादिता के कारण भ्रम फैलाने वाले लोग उनकी रचनाओं का मन माना अर्थ करते हैं, लेकिन उनके अकाट्य तर्कों के आगे कोई टिक नहीं सकता। उन्होंने उस जमाने में एक क्रान्ति मचाई। लोगों की विचारधारा में उथल पुथल मचाई। कटु तीखे एवं चुभने वाले शब्दों के बिना क्रान्ति मचती नहीं। कटु दवा पिलाये बिना रोग मिटता नहीं। सीधे सादे ग्रामीण उदाहरणों द्वारा वे अपने कथन की पुष्टि किया करते।

गहणा कपड़ा राख्या तेहना,
जतन करै समाई रे मांयजी।
ते पिण सावद्य योग छै,
तिण री आज्ञा न देवै जिनराय जी॥
शरीर कपड़ादिक तेहनां,
जतन करै सामायिक मांयजी।

लाय चोरादिक रा भय थकी,
एकान्त स्थानक जयणा से जायजी ॥
ते पिण सावद्य योग छै,
आगार सेयो समाई रै मांहिजी ।
सामायिक में समता राखणी,
चित्त न चलावणु ताहिजी ।
लाय सर्पादिक रा भय थकी,
जंयणा सुं निसर जाय भागजी ।
पाखती मनुष्य बैठा हुवै,
त्यां ने तो नहीं लेजावै बाहरजी ॥
आपरो तो आगार राखियो,
ओरां रो नहीं छै आगारजी ।
ओरां ने त्याग्या समाई मझे,
त्यां ने किण विधि लेजावै बाहरजी ॥

श्रावक सामायिक में गहना, कपड़ा उपकरण पुस्तक आदि का आगार रखता है। अतः वह सामायिक में इन चीजों की हिफाजत करता है, यतना रखता है। उसका यह आगार सावद्य है, धार्मिक क्रिया नहीं। यदि संयोग वश अग्नि लग जाय या चोर डकैतों का उपद्रव खड़ा हो जाय, तो ऐसे प्रसंग में सामायिक

करने वाला श्रावक यत्न पूर्वक सावधानी से एकान्त स्थान में आ सकता है। साथ में आगार वाले गहने कपड़े उपकरण पुस्तक आदि को भी सुरक्षित एकान्त स्थान में ले जा सकता है। ऐसा करना कोई धार्मिक क्रिया नहीं है परन्तु श्रावक ने सामायिक शुरू करते समय ऐसा आगार, ऐसी छूट रखी थी। अतः यदि वह इस प्रसंग में ऐसा काम करता है, तो सावद्य होने पर भी सामायिक व्रत का भंग नहीं होता। सामायिक में समता रखनी पड़ती है। चित्त को स्थिर रखना पड़ता है। मन पर काबू रखना पड़ता है। सामायिक में श्रावक उतना ही काम कर सकता है, जितना उसने आगार रखा। आगार के बाहिर का सावद्य काम वह करने का अधिकारी नहीं। जिसको जितनी छूट मिलती है, उतनी ही छूट का उपयोग तो वह करेगा, यदि वेसी करता है, तो कानून की दृष्टि में वह अपराधी है। थर्ड क्लास का पैसेंजर अपने साथ सिर्फ २५ सेर वजन ही फ्री ले जा सकता है, उससे अधिक नहीं।

अग्नि, सर्प, चोर, शत्रु आक्रमण आदि के उपद्रव की सम्भावना होने पर सामायिक में बैठा श्रावक यत्न पूर्वक एकान्त सुरक्षित स्थान में जा सकता है। ऐसा करने का उसने शुरू में ही आगार रख लिया था परन्तु पास में बैठे मानवों को वह बाहिर नहीं ले जा सकता। उनको सुरक्षित स्थान में जाने का आदेश भी नहीं दे सकता। उसे तो सिर्फ अपना आगार है, निज शरीर का आगार है, दूसरों का आगार नहीं। दूसरों

का कोई काम करने का उसने सामायिक में त्याग जो कर रखा है। वह सिर्फ अपने आगार का उपयोग कर सकता है। जैनेतर दर्शन ऐसे प्रसंग में आपद्-धर्म कह कर अपना काम निकाल लेते हैं, परन्तु जैन दर्शन ने किसी प्रकार की रियायत देनी नहीं सीखी। उसमें तो व्रत नियम त्याग पच्चक्खाण दृढ़ता पूर्वक पालन करने का विधान है। सामायिक में श्रावक अपनी निर्बल रोगी प्रिय माता को भी अग्नि की लपेट से बचाने की चेष्टा नहीं कर सकता। मोह ममत्त्व से दूर रह कर उसे सामायिक व्रत पालन करना पड़ता है।

साधारण अवस्था में श्रावक खुला है। वह संसारिक कर्तव्य के नाते सभी काम करता है। अग्नि को बुझाता है। सांप को मार भगाता है। चोर डकैतों का तलवार बन्दूक से सामना करता है। सभी काम तो वह करता है। परन्तु सामायिक उसकी एक कठोर धार्मिक क्रिया है, व्रत है। इस व्रत के नियम उसे दृढ़ता पूर्वक पालन करने पड़ते हैं। नियम पालन में छूट देने की बात जैन दर्शन ने नहीं बतायी। यदि सामायिक में छूट रखना चाहते हो, तो पहले से ही सामायिक शुरू करते ही छूट रख लो। बीच में छूट छांट का नाम न लेना। बीच सामायिक में छूट मिलने वाली नहीं।

श्रावक अपने निजी मकान में सामायिक करता है। संयोग वश मकान में आग लग गयी। गहने व कपड़ों से भरी आलमारियाँ सांय सांय कर जलने लगी। उसके सौ सौ रुपयों के

वलि सचितादि चौदह नियम नूं,
यांरा नित्य नित्य करै पचखाण जी ॥

सातवें व्रत में श्रावक ने छव्वीस प्रकार के द्रव्य व पन्द्रह प्रकार के कर्मादान-व्यापार के सम्बन्ध में जीवन पर्यन्त त्याग किया और उस में कितनेक आगार भी रखे। आगार इतने अधिक हैं कि रोजाना उनका कोई उपयोग नहीं। अतः श्रावक आगारों की इस सीमा को अपनी दैनिक जरूरतों के अनुसार संकुचित करता है। आज के लिये २४ घंटो के लिये उसे जितनी जरूरत है सिर्फ उतना ही आगार रख कर वह बाकी का त्याग कर देता है। दूसरे दिन सुवह फिर अपनी जरूरतों को ख्याल में रख कर नियम करता है। इस प्रकार से रोजाना आगारों को सीमित करने के लिये चौदह नियम बनाये गये और नित्य इनका चिन्तवन करने व नियम लेने का कार्य क्रम रखा गया। ये चौदह नियम मानव जीवन को सफल बनाने की कुंजी है। आवश्यकताओं पर किस प्रकार नियन्त्रण रखते हुए अपना जीवन सुखी बनाया जा सकता है, इसकी एक झलक हमें इन नियमों में देखने को मिलती है। अपनी दैनिक आवश्यकताओं को घटाना बढ़ाना मानव की इच्छा पर निर्भर है, परन्तु यह तो स्वयं सिद्ध है कि जरूरतों को बढ़ानें से मानव के झंझट बढ़ते हैं और उनको घटाने से मानव सुख और शान्ति का अनुभव करता है। एक मानव आलीशान महल में रह कर भी सुख की

नींद नहीं सोता और दूसरा मामूली झोंपड़ी में रह कर भी आनन्द की वंशी बजाता है। कोई चिन्ता नहीं, कोई फिक्र नहीं। चोर डकैतों का डर नहीं। व्यापार में घाटे की उसे फिक्र नहीं। इन्कमटैक्स व अतिरिक्त-आय-कर (Excess Profits Tax) उसे देना नहीं। कम्युनिस्टों का उसे भय नहीं। जमींदारी-प्रथा-उन्मूलन-कानून की उसे चिन्ता नहीं। वह तो मस्त है। दिन में दो पैसा कमाता है। संध्या को खा पी कर मस्ती की नींद सोता है।

सुख और शान्ति मिलती है जरूरतों में कमी करने से—इस बात को ध्यान में रखते हुए चौदह नियमों का चिन्तवन करना चाहिये और रोजाना नियम लेने चाहिये। ऐसा करने से व ऐसी विचारधारा से धीरे धीरे अव्रत घटती जाती है और जीवन में सुख और शान्ति का अनुभव होने लगता है।

चौदह नियमः—

सचित्त दव्व विग्गई वाणेह तंबोल वत्थ कुसुमेसु।
वाहण सयण विलेवण बंभ दिसि न्हाण भत्तेसु॥

(१) सचित्त (२) द्रव्य (३) विगय (४) वाणह (५) तंबोल (६) वत्थ (७) कुसुम (८) वाहण (९) शयन (१०) विलेवण (११) ब्रह्मचर्य (१२) दिशि (१३) न्हाण और (१४) भत्त। ये हैं चौदह नियमों के नाम।

जैन धर्म त्याग प्रधान है। ऐसे त्याग प्रधान धर्म में इन्द्रिय दमन व मन को वश में रखना जरूरी है। इस दिशा में अग्रसर होने के अनेक सरल साधन बताये गये हैं। श्रावक के चौदह नियम इसी साधना का एक अंश है। यदि मानव प्रति दिन प्रातः काल इन नियमों का चिन्तवन करे, मर्याद करे, तो वह कुछ ही दिनों में अपने आप को बहुत ऊँचा उठा सकता है। वह अपने को हल्का अनुभव करने लगता है। जीवन में उसे सुख और शान्ति का आभास मिलने लगता है।

चौदह नियम :—

(१) सचित्त—पृथ्वी, पानी, वायु, वनस्पति आदि के प्राणी सचित्त हैं। मानव इनका उपयोग करके, इनका खान पान करके अपनां जीवन निभाया करता है। ऐसा करने से इन जीवों की हिंसा होती ही है इसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं। आवश्यक हिंसा प्रत्येक संसारी मानव को करनी ही पड़ती है। फल फूल साग सब्जी, आदि खाने पीने की अनेक चीजें हैं और उनको खाने पीने की लालसा भी बराबर बनी रहती है। परन्तु हर काम की खास कर खाने पीने में काम आने वाले सचित्त जीव-सहित द्रव्यों की मर्याद तो होनी चाहिये। सीमा तो होनी चाहिये। जीवन को

खान पान में नियमित बनाना प्रत्येक मानव का पहला कर्तव्य है।

इस नियम के अनुसार मानव आत्म चिन्तवन के समय प्रतिज्ञा करता है कि आज दिन भर में मैं इतने सचित्त द्रव्य व इतने वजन से अधिक सचित्त द्रव्य उपयोग में न लाऊंगा।

(२) द्रव्य—इस नियम में सचित्त एवं अचित्त दोनों प्रकार के द्रव्यों के उपभोग में दैनिक मर्याद बांधने का विधान है। जहां तक सम्भव हो, इन द्रव्यों का कम से कम उपयोग किया जाना चाहिये। मानव इन द्रव्यों के उपयोग में एक प्रकार का आनन्द अनुभव करता है। उसे इन द्रव्यों को खाने पीने की बराबर तृष्णा बनी रहती है और वह दिन दिन बढ़ती ही जाती है। जैन दर्शन इस तृष्णा, लालसा, पिपासा, खाने पीने की प्रबल इच्छा में कमी करने का आदेश देता है। इस द्रव्य नियम को अपनाने से मानव की खान पान सम्बन्धी तृष्णा पिपासा का निरोध होता है। वह अपनी इन्द्रियों पर और मन पर काबू रखना सीखता है और सुख एवं सन्तोष का अनुभव करता है। दश लाख जनता के समक्ष कलकत्ता मैदान में भाषण देते हुए हमारे प्रधान सचिव पंडित नेहरू ने कहा—"आज जनता को भोजन में कमी करने की जरूरत है।

यदि देश को अकाल और भूखमरी से बचाना है, तो आपको भोजन पर नियन्त्रण रखना होगा। चावलों की कमी है। चावल आपका प्रिय भोजन है फिर भी इसे छोड़ना होगा या इसमें कमी करनी होगी। मैंने स्वयं चावल खाना छोड़ दिया है"। ये हैं प्रधान सचिव के शब्द। मजबूरी से मानव को अपने प्रिय से प्रिय खाद्य द्रव्य को छोड़ देना पड़ता है परन्तु जैन आदर्श है—मजबूरी से नहीं, स्वेच्छा से खाद्य पदार्थों में कमी करो। उनके वजन में कमी करो। उनकी संख्या में कमी करो। सब चीजें तुम्हारे सामने पड़ी हैं, तुम आसानी से खरीद कर उनको खा सकते हो, पी सकते हो फिर भी अपने मन पर काबू रखो। इनको छोड़ो, त्यागो। तुम्हारे जीवन की सफलता त्याग में है, भोग में नहीं।

चांदी के पाटे पर चांदी की चमचमाती थाली सजी है। उसमें इग्यारह चांदी की छोटी छोटी कटोरियाँ रखी हैं। कटोरियों में इग्यारह प्रकार के साग, सब्जी रायीता आम्ररस आदि सुन्दर ढंग से सुसज्जित हैं। थाल में पांच प्रकार की मिठाइयाँ हैं। तीन प्रकार की नमकीन हैं। शौकीन रस-लोलुप मानव भोजन कर रहा है। आध घंटे के अन्दर सब को साफ किया। थोड़ी देर बाद अपच बदहज्मी खट्टी डकार,

पेट में जलन शुरू हुई। दवायें दी गयीं। डाक्टरों कविराजों को सैकड़ों टनटनाते रुपये भेट किये गये। हल्का जुलाब देकर पेट साफ किया गया। इग्यारह प्रकार के साग, पांच प्रकार की मिठाई, तीन प्रकार की नमकीन का बदला हुआ सुन्दर स्वरूप यदि आप देखें, तो नाक भौं सिकोड़ने लगें। आप वहां ठहर न सकेंगे। ऐसी हालत होती है आपके खाने पीने के सुन्दर सुसज्जित द्रव्यों की। जैन श्रावकों के बरात के जीमनवार में खाद्य द्रव्यों का कैसा सुन्दर प्रदर्शन किया जाता है? भांग के नशे में उन्मत्त बराती इस सुन्दर प्रदर्शनी को कैसे छिन्न भिन्न कर डालते हैं? यह आपने देखा ही होगा। भगवन् महावीर के सिद्धान्त सुनने का समझने का और उनको उपयोग में लाने का कैसा सुन्दर नमूना है? शुभ वैवाहिक जीवनवार में जब जैनियों की, महावीर के उपासकों की यह हालत है, तब फिर दूसरों का तो कहना ही क्या? यदि देश हित की दृष्टि से जीमनवार के सम्बन्ध में सरकार कोई कानून बनाती है, तो भी बृहत् भोज तो रुकता नहीं। पैसों के जोर से अफसरों का मुंह बंद कर दिया जाता है। साधारण जनता का मुंह लड्डू और कतलियों से बंद कर दिया जाता है। सार्वजनिक संस्था के कार्यकर्त्ताओं का मुंह बड़े

बड़े चन्दों से बंद कर दिया जाता है। अब जीमनवार में, खान पान के प्रदर्शन में बाधा ही क्या रह गयी ?

परन्तु एक श्रावक सद् गृहस्थ किसी भिन्न धातु का बना होता है। उसके हर काम में नियम को, त्याग को प्रथम स्थान है। वह सुबह आत्म चिन्तवन के समय प्रतिज्ञा करता है कि मैं आज दिन भर में सिर्फ इतने (संख्या) द्रव्य को मुंह में डालूंगा, सेवन करूंगा। वह भी इतने वजन से अधिक नहीं। इस नियम का वह दृढ़ता पूर्वक पालन करता है। उसका सीधा सादा भोजन है। उसे न वदहज्मी होती है न अपच। कारीगर रसोइये को रखने की उसे जरूरत नहीं। पैसे का बचाव, स्वास्थ्य का बचाव, कानून से बचाव और आत्म पतन से बचाव, इससे अच्छा रास्ता और क्या हो ? बृहत् भोज न वह कभी करता है और न ऐसे भोजों में वह सामिल होता है।

अपनी अंगुली और धातु की बनी वस्तु के सिवाय जो भी वस्तु मुंह में रखी जाती है वह द्रव्य है। एक ही द्रव्य के नामान्तर, स्वादान्तर, स्वरूपान्तर व परिणामान्तर होने से वह भिन्न द्रव्य गिना जाता है। जैसे गेहूं एक द्रव्य है परन्तु गेहूं से बने फुलके, टिकड़े, फीना-रोटी व बाटी सब द्रव्य अलग अलग गिने

जाते हैं। मुंग की दाल एक द्रव्य, गेहूं की रोटी एक द्रव्य पानी एक द्रव्य, यदि दिन भर में सिर्फ इन तीन चीजों के खाने पीने का नियम किया जाय, तो तीन द्रव्यों का आगार व नियम कहा जाता है। द्रव्यों सम्बन्धी मर्याद करने के भिन्न भिन्न रास्ते हैं। श्रावक अपनी सामर्थ्य शक्ति व दृढ़ता के अनुसार मर्याद कर सकता है।

द्रव्य-नियम स्वास्थ्य की रक्षा करता है। अपच अजीर्ण वदहज्मी खट्टी डकार से बचाता है। मन और इन्द्रिय को वश करने का रास्ता दिखाता है। पुरानी, गली, सड़ी और मक्खी मच्छरों के अंडों से भरी बाजारू मिठाइयों के खाने से होने वाली संक्रामक बीमारियों (Epedemics) से रक्षा करता है। कानून के पंजे से बचाता है। पैसों को, बरबादी से बचाता है। और बचाता है लोगों की व्यर्थ की आलोचना से—सीरे को बिगाड़ दिया, चीनी बहुत वेसी डाल दी। कतलियों में खारे गोटे बहुत हैं। कड़वी हो गयी। साग में नमक वेसी डाल दिया। झोल वेसी कर दिया। मिरचें वेसी डाल दी और पूड़ियों को वीजीटेवल में पका कर सब मज्जा ही किरकिरा कर दिया। वस इस एक द्रव्य नियम से सब झंझट छुट जाते हैं। Plain living and high thinking

सीधा सादा रहन सहन और उच्च विचार उच्च भावना। यही तो जीवन का आदर्श होना चाहिये। 'खाने पीने के द्रव्यों की संख्या कम से कम रहे, तभी तो जीवन में सुख होगा शान्ति होगी। झंझट से बचाव होगा और होंगे उच्च विचार।

(३) विगय—दैनिक नियम अपनाने की अपेक्षा से विगय छह हैं :—

(१) दूध (२) दही (३) घृत (४) गोल (चीनी गुड़ शक्कर) (५) तेल (६) कड़ाही में तले पदार्थ—जैसे मिठाई, भुजिया, पकौड़ी, कचौड़ी आदि।

विगय के संयोग से बना भोजन पुष्टिकर और स्वास्थ्य प्रद होता है। परन्तु ऐसे पुष्टिकर भोजन के दैनिक सेवन से इन्द्रियाँ चंचल होती है। प्रबल होती है। तामसिक प्रवृत्ति बढ़ती है। मानसिक उत्तेजना भी होती है। जैन दर्शन मन और इन्द्रिय पर नियन्त्रण रखने का आदेश देता है। अतः विगय के सम्बन्ध में दैनिक नियम का विधान किया गया है। घी तेल छोड़ो। दूध दही छोड़ो। मिठायी छोड़ो। गरिष्ट और देर से पचने वाला भोजन छोड़ो। ऐसा करने से मन शान्त रहेगा। इन्द्रियाँ वश में रहेगीं। काम-विकार का शमन होगा। दैनिक नियम लेते समय बीच बीच में

उपरोक्त विगयों का अपनी रुचिके अनुसार त्याग करना चाहिये। स्वास्थ्य के लिये भी ऐसा करना जरूरी है। विगय पदार्थों में चर्वी (Fats) का अंश अति अधिक रहता है। इस चर्वी को पचाने के लिये पाचन करने वाले अंगो को बहुत अधिक काम करना पड़ता है। बीच बीच में विगय न खाने से इन अंगों को कुछ आराम मिल जाता है। अतः विगय का नियम करते रहने से इन्द्रिय का दमन होता है। विषय-विकार शान्त रहते हैं और स्वास्थ्य भी कायम रहता है।

(४) वाणह—जूता, बूंट, पगरखी, मौजा, चट्टी, सन्दल, खड़ाऊ आदि जो पदार्थ पैर रक्षा के काम आते हैं, वे सब इस नियम के अन्तर्गत हैं। एक सभ्य मानव इन सब का उपयोग छोड़ नहीं सकता परन्तु फिर भी कुछ मर्याद तो होनी चाहिये। आज पैर रक्षा के लिये नहीं परन्तु अपना आडम्बर दिखाने के लिये इनका उपयोग किया जाता है। कीमती से कीमती नयी नयी डिजाइनें बनती है और मानव इनकी चकाचौंध में अन्धा बन कर फिजूल के पैसे बरबाद करता है। पेशेकार वैज्ञानिक और शू एक्सपर्टस (Shoe Experts) नित्य नये डिजाइन की खोज में लगे हैं, तो शौकीन बाबू उनको खरीदने में और

लोगों को दिखाने में। प्रश्न उठता है क्या जूते या मौजे वास्तव में पैरों की रक्षा करते हैं? क्या इनसे पैर सुन्दर बनते हैं? उत्तर सीधा-सा है। जूतों या मौजों से पैर कमजोर बनता है। विकृत होता है। मौजों या जूतों के कारण पैर भीतर ही भीतर घुटते हैं। उनमें बराबर पसीना निकलता है। बदबू होती है। पैरों का स्वाभाविक विकास नहीं हो पाता, वे कमजोर हो जाते हैं। नंगे पैर वाला मानव जितना चल सकता है, यात्रा कर सकता है, शीघ्र-गति से रास्ता तय कर सकता है, उतना जूते पहन कर नहीं। हिन्दुस्तान में कई प्रान्तों के लोग-मद्रास उड़ीसा आदि—पैर नंगे रखते हैं। कोई चीज नहीं पहनते हैं। ऐसे लोगों के पैर बड़े मजबूत होते हैं स्वस्थ होते हैं और सुन्दर भी। आज के जमाने में लोग इनको असभ्य कहा करते हैं परन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से नंगे पैर चलना ज्यादा लाभ प्रद है। जैन साधु अपने पैर हर समय नंगे रखता है। हजारों मील की यात्रा करता है। उसके पैर बड़े मजबूत हो जाते हैं।

जूते पहन कर चलने से छोटे छोटे जीव जन्तु कुचले जाकर मर जाया करते हैं और भी नाना प्रकार की हिंसा होती है। अतः जैन सिद्धान्त में जूतों का

निषेध किया गया है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी जूता न पहनना ही ठीक है। परन्तु आज का मानव इतना आगे वढ़ गया है कि वह अव पीछे लौट नहीं सकता। जूतों को वह सर्वथा छोड़ नहीं सकता परन्तु इतना तो वह जरूर कर सकता है कि इनके उपयोग में मर्याद करे। नियम करे। आज मैं दिन भर में इस जूते या इस मौजे के अतिरिक्त और कुछ न पहनूंगा। ऐसा नियम कर लेने से उसकी लालसा या पिपासा में भी मर्याद बंध जाती है। खर्च की भी मर्याद हो जाती है। नयी नयी डिजाइन के जूतों या मौजों पर मन नहीं चलता। जूतों मौजों आदि की डिजाइन, संख्या व कीमत को ध्यान में रख कर अपनी रुचि अनुसार मर्याद करनी चाहिये। रोजाना इस नियम को पालन करते रहने से मानव अपनी जरूरतों को घटाना सीखता है और जीवन में सादगी लाता है।

(५) तंवोल—जो पदार्थ मुख-शुद्धि व श्वास को सुगन्धित करने के लिये ग्रहण किये जाते हैं उनको तंवोल कहते हैं। पान सुपारी लौंग इलायची, जीनतान की गोली चूरण खाटा, जरदा, किमाम आदि अनेक पदार्थ मुख शुद्धि के काम में लिये जाते हैं।

सुवह उठने पर आज के सभ्य नर नारी के मुंह से एक प्रकार की ऐसी वदवू निकलती है, जिसको आप सहन नहीं कर सकते। रात को सोते वक्त इस सभ्य नर नारी ने पान चवाया, इलायची खायी, सुगन्धित जरदा किमाम कुचला फिर ऐसी गन्ध क्यो ? इस रहस्य को आप क्यों नहीं समझते ? वात सीधी-सी है। सभ्य मानव ने अपने जीवन में रोजाना अनेक मुख शुद्धि करने वाले सुगन्धित द्रव्य चवाये। ये द्रव्य दांत के मसूड़ों के छोटे छोटे छिद्रों में फंसे रहे। सड़े। पीप वनी। मसूड़े फूलने लगे। उनमें से खून निकलने लगा। पीप वहने लगी। वदवू निकलने लगी। दिन भर तो यह वदवू सुगन्धित द्रव्यों की सुगन्ध के सामने छिपी रही परन्तु रात में अपना प्रभाव दिखाया, सुवह मुँह में वदवू ही वदवू। इसी वदवू को पुनः छिपाने के लिये सुगन्धित दंत मंजन और सेन्टेड पान का उपयोग। इस तरह चलता है चक्र। आज सभ्य नर नारी के पायरिया* एक साधारण-सी वीमारी वन गयी है। सव दांत निकाले जाते हैं तव कहीं पायरिया मिटती है। फिर नकली दांत

---

*पायरिया Pyorrhoea मसूड़ों की वीमारी है। इसमें मसूड़ों से पीप और खून निकलता है।

बिठाये जाते हैं। ऐसी हालत होती है दिन भर चबाने वाले सभ्य मानव की। सिर्फ दो वक्त रूखा सूखा भोजन करने वाले किसान को न तो मुख शुद्धि वाले पदार्थ ही नसीब होते हैं न पाय-रिया और न नकली दांत ही।

सभ्य मानव के लिये भोजन के पश्चात् कुछ न कुछ सुगन्धित द्रव्य जरूरी है परन्तु दिन भर इनको चबाते रहना तो उचित नहीं। इन पदार्थों की संख्या, वजन आदि के सम्बन्ध में नित्य सुबह नियम करना चाहिये। परिमाण करना चाहिये। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह जरूरी है।

(६) वत्थ-वस्त्र—आज के सभ्य जगत में शरीर को आकर्षक बनाने के लिये नाना प्रकार के वस्त्र तैयार किये जाते हैं। पुराने जमाने में तो ऊन, रेशम, रूई, चमड़ा आदि से ही कपड़े बना करते थे परन्तु आज के वैज्ञानिक युग में रहने वाले मानव ने तो रसायनिक द्रव्यों से भी कपड़ा बनाना शुरू कर दिया है—प्लास्टीक कपड़ा, रेयन सिल्क (Rayon silk) और यह भी सुनने में आया है कि धातुओं से भी कपड़े बनेंगे। खैर-। आखिर मानव की उमर तो छोटी सी है। वह क्या पहने और क्या न पहने?

पोशाक सम्बन्धी मानव की इच्छा तो पूरी होने वाली नहीं, खास कर नारी वर्ग की। फिर एक दिन रात तो सिर्फ चौबीस घंटे का ही तो होता है। नाना प्रकार की डिजाइन, नाना प्रकार के कपड़े—चौबीस घंटों में तो सब पहिने जाने वाले नहीं। जैन दर्शन कहता है—तुझे नाना वस्त्र पहनते हुए वर्षों बीत गये। क्या तेरा पेट भरा ? तो समझ ले, कितना ही पहन, पेट तेरा भरने वाला नहीं। तेरी इच्छा कभी पूरी होने वाली नहीं। तेरी इच्छा पूरी होगी—आज के लिये वस्त्रों की मर्याद करने से, सीमा बांधने से। आज इतने वस्त्र पहनूंगा। अमुक वस्त्र पहनूंगा। जहाँ मर्याद की बस उसी में सन्तोष है। त्याग कर देने के कारण अन्य वस्त्रों की लालसा मिट गयी।

सौन्दर्य की उपासिका होती है नारी। वस्त्रों की शौकीन होती है नारी और वे पसन्द करती है रेशमी वस्त्र। रेशमी वस्त्र हल्का होता है, मुलायम होता है और होता है आकर्षक। नारी का स्वभाव ही है आकर्षण का केन्द्र बनना। परन्तु जैन दर्शन की उपासिका और अहिंसा की पुजारिन नारी क्या रेशमी वस्त्र पहन कर आकर्षक

बने ? अधिकांश श्रावक जानते हैं कि रेशमी कपड़ा एक प्रकार के रेशम के कीड़ों से बनता है। इसको तैयार करने में बिचारे लाखों करोड़ों चलने फिरने वाले त्रस रेशम के कीड़ों की हत्या करनी पड़ती है। ऐसी भीषण जीव हिंसा से बना वस्त्र पहनना क्या एक श्रावक को उचित है ? इस पर गम्भीर विचार करना होगा। रेशमी वस्त्रों का त्याग करना होगा। रेशमी वस्त्र त्याग से दो फायदे होंगे एक तो जीव हिंसा के भयंकर पाप से बचाव और दूसरा आर्थिक वजन में कमी। श्राविकाओं को इस पर ध्यान देना होगा। अन्यमतों को मानने वाले भले ही रेशमी वस्त्र को शुद्ध मानें, पवित्र मानें, देव पूजा आदि शुभ अवसरों पर पहनना मंगलीक मानें परन्तु अहिंसा प्रधान जैन धर्म तो इसे घृणित ही मानेगा। लाखों करोड़ों प्राणियों के मृतक कलेवर से बना वस्त्र पवित्र कैसे ?

रेशमी, सूती, ऊनी व प्लास्टिक के बने वस्त्र-धोती, चद्दर, कोट कमीज गंजी शाल दुशाला, अंगोछा, रुमाल व जनाने कपड़े आदि के सम्बन्ध में अपनी जरूरतों के अनुसार दैनिक मर्याद कर लेनी चाहिये। कपड़ों की संख्या

नोट वाली गड्डियां अग्नि की भेट चढ़ रही है वह देख रहा है परन्तु उनको बचाने की चेष्टा नहीं करता। उनको अग्नि की लपेट से हटाने का प्रयत्न नहीं करता। वह तो सिर्फ सामायिक में आगार रखे वस्त्र उपकरण आदि को यत्न सहित उठा कर स्वयं सुरक्षित स्थान में चला जावेगा, परन्तु घर की चीजों को बचाने की वह न तो स्वयं चेष्टा करता है न ऐसा करने के लिये दूसरों को आदेश या इशारा ही करता है। व्रत पालन में होनी चाहिये ऐसी दृढ़ता, ऐसी मजबूती। स्वामी जी ने इसी रहस्य को समझाने की इन पंक्तियों में सफल चेष्टा की है।

लाय चोरादिक रा भय थकी,
राख्या ते द्रव्य ले जायजी।
पाखती कपड़ादिक हुवै घणा,
त्याने तो बाहर न लेजावै तायजी॥
राख्या ते द्रव्य लेजांवतां,
समाई रो भंग न थायजी।
त्याग्या छै त्यांने लेजांवतां,
समाई रो व्रत भांग जायजी॥
तिणसूं सर्व सावद्य योग रा,
समाई में नहीं पचखाण जी।

आगार उपरान्त सावद्य योग रा,
पचखाण किया छै पिछाण जी ॥
तिणसूं त्याग किया तिके,
ते सावद्य योग रा पचखाण जी ।
त्याग नहीं सर्व सावद्य योग रा,
ते तो सारा साधु तणे जाण जी ॥

सामायिक में सर्व प्रकार के सावद्य कार्य का त्याग नहीं किया जाता। श्रावक अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य अनुसार त्याग करता है और आगार छूट भी रखता है। सामायिक में जितनी मात्रा में उसने त्याग किया वह धार्मिक क्रिया है, निरवद्य है। जितनी मात्रा में आगार रखा, छूट रखी वह सावद्य है, धार्मिक क्रिया नहीं। सामायिक व्रत भंग एक वड़ा भयंकर अपराध है। अतः इस महान अपराध से वचने के लिये श्रावक आगार रखता है। आगार सेवन से उसे पाप जरूर लगता है, परन्तु व्रत भंग का वह दोषी नहीं। सर्व सावद्य कार्य का त्याग तो दृढ़ आत्मा वाला संसार से विरक्त मानव ही कर सकता है। कमजोर श्रावक में ऐसी ताकत नहीं होती। वह तो अपने व्रत में आगार रखता है। अतः अग्नि लग जाने पर, चोर डकैत का भय उत्पन्न होने पर श्रावक सामायिक में अपने आगार में रखे वस्त्र गहने उपकरण पुस्तक आदि वस्तुओं को उठाकर सुरक्षित स्थान में यतना पूर्वक

जा सकता है। ऐसा करने पर भी उसका सामायिक व्रत भंग नहीं होता। परन्तु जो कपड़े गहने आदि उसने सामायिक शुरू करते समय अपने आगार में नहीं रखे, उनको वह हटा नहीं सकता। हटाने के लिये किसी को आदेश भी नहीं दे सकता। चाहे वे अग्नि में जलते रहें, चाहे चोर डकैत उनको लूट कर ले जांय, वह तो ऐसे प्रसंग में तटस्थ उदासीन ही बना रहेगा। ऐसा करने का उसे आगार नहीं। यदि ऐसा करता है, आगार के बाहर की वस्तु को हटाता है, तो वह सामायिक व्रत के भंग का महान अपराधी बन जाता है। इसी रहस्य को मानव यदि समझ ले, तो वह अपने आप को बहुत कुछ अंशों में संसार के झंझटों से बचा सकता है। यही कारण है कि जैन साधु संसार में होने वाले भीषण अत्याचार जुल्म अन्याय को देखते हुए भी तटस्थ बना रहता है। वह उनमें सक्रिय योग नही देता। समझाने बुझाने या उपदेश द्वारा यदि काम बनता दीखता है, तो वह जरूर चेष्टा करता है। जैन दर्शन की यही विशेषता है।

उपग्रण राख्या समाई मझे,
ते तो पहिलै करण लिया जाण जी।
ते ओरां ने भोगवासी किण विधै,
ओरांरा तो किया पचखाण जी॥
द्रव्य थकी तिण उपरान्त रा,
सगला रा किया पचखाण जी।

खेत्र थी सर्व क्षेत्र मझै,
काल थी महूरत एक जाण जी ॥
भाव थकी राग द्वेष रहित छै,
जब संवर निर्जरा गुण थाय जी ।
इण रीतै समाई ओलखी करै,
जब सामायिक हुवै ताय जी ॥

अवर सघला ने त्याग दिया,
त्यांसूं करै संभोग जी ।
तिणसूं भांगै समाई व्रत तेहनूं,
इणरा वर्त्या छै सावद्य जोग जी ॥

श्रावक सामायिक में जो उपकरण का आगार रखता है वह सिर्फ एक करण से। एक करण का अर्थ है कि वह इन उपकरणों को सिर्फ अपने निजी काम में उपयोग कर सकता है, व्यवहार कर सकता है। वह अपने आगार में रखे उपकरणों को दूसरों को व्यवहार करने के लिये नहीं दे सकता। दूसरों को देने का आगार उसने रखा नहीं। इस नियम के अनुसार इस त्याग के अनुसार यदि वह चलता है, तो अपने उपकरण वह किसी भी हालत में दूसरों को भोगने के लिये नहीं दे सकता। अपने निजी आगार में रखे उपकरणों के अतिरिक्त दूसरे अन्य उपकरणों

का वह उपयोग भी नहीं कर सकता। सामायिक का काल एक मुहूर्त्त अर्थात् ४८ मिनट का होता है। सामायिक में रागद्वेष की भावना नहीं रखना चाहिये। सामायिक का त्याग प्रत्याख्यान सर्व क्षेत्रों के लिये है। इस प्रकार से नियम पूर्वक सामायिक करने से सामायिक शुद्ध होती है और संवर निर्जरा का हेतु बनती है। शुद्ध सामायिक से नये कर्म रुकते हैं और चिपके हुए कर्म छूटते हैं, झड़ते हैं। श्रावक ने सामायिक में ४८ मिनट के लिये कुछ आगार रखा, कई, वस्तुओं के भोगने में छूट रखी और आगार के अतिरिक्त और सब प्रकार की वस्तुओं के भोगने का त्याग कर दिया। उनसे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। अब उन त्यागी हुई, छोड़ी हुई, सम्बन्ध विच्छेद की हुई वस्तुओं को यदि वह काम में लाता है, उनके साथ सम्भोग करता है, तो उसका व्रत नियम भंग हो जाता है। इस प्रकार का सावद्य कार्य महान पातक है।

सामायिक में दूसरे सामायिक वाले मानव का कार्य करने का आगार रखा जा सकता है या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर स्वामीजी ने कितनी खूबी से दिया है इसे देखें—

कोई सामाई में सामाइ तणूं,
कारज करणू राख्यो छै आगार जी।
तिण रो कार्य क्रियां समाई भागै नहीं,
तिण रो पिण करै विचार जी॥

समाई में मांहो मांहि कारज करै,
ते तो सूत्र में नहीं छै तायजी।
ते निश्चय थापणी आवै नहीं,
ज्ञानी वदै ते सत्य वाय जी॥

कई श्रावक सामायिक में, किसी अन्य सामायिक वाले श्रावक का कार्य करने का आगार रख लेते हैं। ऐसे आगार वाले श्रावक यदि दूसरे सामायिक वाले का कार्य करें, तो सामायिक व्रत भंग नहीं होता। उसने तो अपने आगार के अनुसार ही कार्य किया। व्रत भंग का अपराधी वह नहीं, परन्तु सामायिक में ऐसा आगार रखना उचित है या नहीं—यह प्रश्न विचारने का है। सूत्रों में कहीं भी ऐसा उल्लेख नहीं मिलता कि सामायिक में परस्पर में एक दूसरे का कार्य करने का आगार रखा जा सकता है। इस प्रश्न पर स्वामीजी अपनी कोई निश्चित राय न देकर इस प्रश्न को ज्ञानियों के सुपुर्द कर देते हैं। यदि वे ऐसे प्रसंग में राय देते, तो इस राय के पक्ष व विपक्ष में नाना प्रकार के तर्क उठने लगते। अतः इस प्रश्न पर अपना मत न देना और इसे ज्ञानियों के लिये छोड़ देना स्वामीजी की चतुरता एवं निराभिमानता का परिचायक है।

सामायिक में दया पालने के निमित्त पूँजणी रखी जाती है, अतः पूंजणी रखना धार्मिक क्रिया है ऐसी मान्यता वाले

श्रावकों को स्वामी जी ने वड़े सुन्दर ढंग से समझाने की चेष्टा की है।

कोई कहै समाई में राखी पूंजणी,
राखी ते दया रै काम जी।
तिण रो जवाब सुणू विवरा सुद्धे,
चित्त राखो एकन्त ठाम जी॥

दया पालने के निमित्त, जीव हिंसा से वचने के निमित्त सामायिक में पूंजणी रखी जाती है। अतः पूंजणी रखना धार्मिक क्रिया क्यों नहीं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुये स्वामीजी कहते हैं।

शरीरादि पूंजै समाई मझे,
मात्रादि परठै पूंज जी।
एहवा कार्य री जिन आज्ञा नहीं,
तिण में धर्म कहै ते अबूझ जी॥

शरीर पूंजै परठै मात्रो,
ए शरीरादिक रा छै काज जी।
जो धर्म तणुं कारज हुवे,
तो आज्ञा देवै जिनराज जी।

जा पुंजणुं परठणुं करै नहीं,
काय स्थिर राखै एक ठामजी ॥
हस्तादिक विना हलावियां,
रहणी नहीं आवे छै ताम जी ॥
वले अवाधा वड़ोनीत री,
खमणी न आवै छै ताम जी ।
तिणसूं पूंजै छै जाग्यां जोयने,
ते समाई तणूं नहीं काम जी ॥
माखी मछर कीड़ी आदि दे,
ते तो लागै छै शरीर रै आयजी ।
ते खमणी न आवै तेह थी,
तिणसूं पूंज परहा करै ताय जी ॥
जो काया स्थिर राखै एक आसणें,
तिणरे पूंजणी रो कांइ कामजी ।
परिषह खमणी नहीं आवै तेह से,
पूंजणी राखी छै तामजी ॥

शरीर की हिफ़ाजत करना, रक्षा करना उसे आराम पहुंचाना —इन कामों में जिन आज्ञा नहीं। शरीर पौद्गलिक है, जड़

है, नाश होने वाला है। ऐसे शरीर से मोह कैसा? ममता कैसी? फिर हिफाजत किस बात की? पूंजणी का जो सामायिक में उपयोग किया जाता है वह शरीर की हिफाजत के लिये।

यदि मानव सामायिक में मन को दृढ़ करके अपनी काया अपने शरीर को एक दम स्थिर रख सके, हाथ पैर अंग प्रत्यंग किसी को भी हिलावे डुलावे नहीं, तो उसे अपने शरीर के लिये सामायिक में पूंजणी की कोई जरूरत नहीं रह जाती। उसका शरीर स्थिर है। प्रमार्जन करने की जरूरत क्या?

सामायिक में मानव को टट्टी पिशाब की भी शंका हो सकती है। अतः उसे टट्टी पिशाब गिराने की जगह का प्रमार्जन करना पड़ता है। पूंजणी चाहिये। सामायिक में मक्खी, मच्छर, कीड़े मकोड़े आदि छोटे छोटे जीव जन्तु शरीर के डंक मारते हैं। मानव इसे सहन नहीं कर सकता। अतः वह पूंजणी के उपयोग द्वारा इन छोटे जन्तुओं को शरीर से अलग कर देता है। मक्खी मच्छर जन्य परिषह सहन करने में वह असमर्थ है। अतः पूंजणी रखता है। परन्तु यदि वह हिम्मत रखे और मक्खी मच्छर के काटने से होने वाले परिषह को शरीर को हिलाये डुलाये बिना सहन कर सके, तो उसे पूंजणी से क्या मतलब?

श्रावक का मन कमजोर है। वह ४८ मिनट तक अपनी काया को स्थिर नहीं रख सकता, मच्छरों के उपद्रव को सहन नहीं कर सकता, हाथ पैर को हिलाये डुलाये बिना रह नहीं सकता। अतः वह हर काम में पूंजणी का उपयोग करता है। यदि दृढ़

चित्त वाला श्रावक हिम्मत करके एक आसन पर एक मुहूर्त—४८ मिनट—तक स्थिर मन से बैठ सके, विना हिले डुले रह सके तो उसे पूंजणी की कोई जरूरत नहीं रहती। अपनी कमजोरी के कारण श्रावक सामायिक में पूंजणी का आगार रखता है। आगार रखना अव्रत की श्रेणी में है। पूंजणी का सामायिक में आगार रखना व उसे काम में लाना सावद्य है। इसे धार्मिक क्रिया नहीं कहा जा सकता। शुद्ध सामायिक के लिये पूंजणी कोई जरूरी वस्तु नहीं है। विना पूंजणी के भी शुद्ध सामायिक की जा सकती है। मन मजबूत होना चाहिये। अपनी काया को ४८ मिनट तक स्थिर रखने की हिम्मत होनी चाहिये।

> जो इतनी कह्यां समझ पड़ै नहीं,
> तो राखणी जिन प्रतीत जी।
> जिन आज्ञा बाहर धर्म श्रद्धै ने,
> नहीं करणी एहवी अनीत जी॥
> शरीर उपकरण रा जावता,
> कियां सावद्य योग व्यापार जी।
> जे शरीर सूं निरवद्य कर्तव्य करै,
> तिण ने जिन आज्ञा दे श्रीकार जी॥

इतना समझाने पर भी यदि समझ में न आवे, दिमाग में बात न जंचे, तो फिर जिन वचन पर विश्वास रख कर उस बात

को मान लेना चाहिये। जिन आज्ञा के बाहिर वाले कामों में धर्म की श्रद्धान करके अनीति की राह पर तो न जाना चाहिये। एक दफे सदर चालू रास्ते को जहां छोड़ दिया और कुमार्ग पकड़ लिया, तो फिर भयंकर अटवी में भटक भटक कर प्राण भले ही गवां दिये जांय, सदर रास्ता मिलना मुश्किल है। अटवी में रास्ता बतावेगा कौन ?

शरीर से मानव जो भी निरवद्य कार्य करता है, वह जिन-आज्ञा के अन्तर्गत है और धर्म है।

साधारण मानव के लिये सामायिक आत्म विकास का एक उत्तम साधन है। सुवह की प्रभात वेला में दैनिक एक सामायिक करने से मानव-मन वड़ा हलका रहता है। संसारिक झंझटों में फंसे हुए मानव के लिये सामायिक एक उत्तम विश्राम है। वह कम से कम ४८ मिनट तक तो सुख और शान्ति का अनुभव करता है।

व्रत दशवां

देशावकाशिक व्रत

आज प्रत्येक देश में रोटी और कपड़े की एक बड़ी विकट समस्या है। प्रत्येक देश की सरकार इस समस्या को सुलझाने की चेष्टा कर रही है परन्तु यह समस्या सुलझने के बजाय उलझती जा रही है। असल में बात यह है कि साधारण जनता का रहन सहन—Standard of living—काफी बढ़ गया है। दैनिक आवश्यकतायें दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। जब तक दैनिक जरूरतों में कमी न होगी, उनके व्यवहार में संकोच न किया जावेगा, तबतक रोटी और कपड़े की समस्या कभी सुलझ नहीं सकती। दैनिक जरूरतों में कमी करने व संकोच करने के उद्देश्य से ही दशवें देशावकाशिक व्रत का विधान किया गया है।

पांच अणुव्रत एवं तीन गुणव्रत ग्रहण करने के समय जो आगार, जो छूट जीवन भर के लिये रखी गयी थी, अपनी दैनिक आवश्यकता अनुसार, उस छूट में रोजाना संकोच करते रहना देशावकाशिक व्रत है।

नवकारसी, पोरसी, उपवास, बेला, तेला यावत् छव मास तक तपस्या आदि करना सब देशावकाशिक व्रत के अन्तर्गत हैं।

इस दशवें देशावकाशिक व्रत में जितने भी नियम लिये जाते हैं उन सब में अपनी इच्छा अनुसार समय की, टाइम की सीमा करनी होती है।

दशमूं देशावगासी व्रत छै, तिण रा भेद अनेक ।
थोड़ा सा प्रगट करूं, ते सुणजो आण विवेक ॥

दशवें देशावकाशिक व्रत के अनेक भेद हैं। परन्तु कवि संक्षेप में ही बता देना ठीक समझता है।

देशावगासी व्रत नां, भांगा हुवै विविध दोयजी ।
पहलो छै छट्ठा नीं परे, दूजो सातमां ज्यूं होयजी ॥

मुख्य रूप से देशावकाशिक व्रत के दो भेद हैं—पहला भेद छट्ठे दिशि व्रत की तरह और दूसरा भेद सातवें उपभोग परिभोग परिमाण व्रत की तरह।

दिन प्रते प्रभात थी,
छहुं दिशि रो कियो परमाणजी ।
मर्यादा कीधी तिण बारली,
पांचू ही आश्रव नां पचखाणजी ॥

जे भूमिका राखी छै मोकली,
तिण मांहि द्रव्यादिक नो व्यापारजी ।
मर्यादा शक्ति सारू करै,
भोगादिक करै परिहार जी ॥

काल थी दिवस ने रात नूं,
भाव थी विविध प्रकार जी।
करण जोग घालै तेतला,
जेतला करै परिहार जी॥

श्रावक सुबह उठ कर आत्म चिन्तवन में तल्लीन होता है। अपने दैनिक कार्यक्रम – Daily Routine के विषय में सोचता है। नियम बांधता है—आज मुझे कौन कौन-सा काम करना, कहाँ जाना आना, कितने द्रव्यों का खाने पीने में व पहिनने ओढ़ने में उपयोग करना आदि अपनी हर जरूरत के विषय में सोच कर एक सीमा करता है। जरूरत के मुताबिक दैनिक आवश्यकता घटती बढ़ती रहती है और उसी के अनुरूप रोजाना नियम किया जाता है।

आत्मचिन्तवन के समय श्रावक ने दिन भर के लिये गमनागमन की एक मर्याद की। आजदिन वह इस मर्याद के भीतर ही काम करेगा। किसी भी हालत में वह मर्यादित क्षेत्र के बाहर जाकर पंच आश्रव का सेवन न करेगा। न सीमा के बाहर वाले क्षेत्र में व्यापार करेगा, न भोग्य सामग्री का सेवन करेगा। उसे तो अपना सारा काम मर्यादित क्षेत्र के अन्दर रहते हुए करना है। यह मर्याद सिर्फ एक दिन रात के चौवीस घंटों के लिये है। दूसरे दिन सुबह फिर अपनी जरूरत अनुसार सीमा

बांधनी है। देशावकाशिक व्रत में श्रावक करण योग सहित दैनिक त्याग किया करता है।

त्याग की विधि है :—

हे गुरुदेव ! मैंने दशवें देशावकाशिक व्रत में प्रतिदिन प्रभात काल से पूर्व पश्चिम आदि छव दिशाओं में गमनागमन आदि के लिये जितनी भूमि की मर्याद की है, उसके उपरान्त स्वेच्छापूर्वक अपने आप जाकर अथवा अन्य किसी को भेज कर दो करण तीन योग से पांच आश्रव सेवन करने का त्याग करता हूं और इस मर्यादित क्षेत्र में मैंने जितने द्रव्यों का नियम लिया है, उनसे अधिक भोग्य द्रव्यों को व्यवहार में लाने का एक करण तीन योग से प्रत्याख्यान करता हूं।

वलि जघन्य नवकारसी आदि दे,
उत्कृष्टो घालै काल कोय जी।
मर्यादा सूं त्यागै सावज्ज भणीं,
जिम करै तिमि होय जी॥

कोई करै छै त्याग हिन्सा तणुं,
तिण में काल रो करै प्रमाण जी।
ते त्याग पूरा हुवां तेह ने,
आगै तो नहिं पचखाण जी॥

हिंसा झूठ चोरी मैथुन नूं,
बलि पांचमूं परिग्रह जाण जी।
एह पांचूं हीं आश्रव द्वार नुं,
काल घालि नें करै पचखाण जी॥

देशावकाशिक व्रत में नौकारसी, पोरसी उपवास आदि करने का विधान है। छोटा से छोटा नियम नवकारसी है। नवकारसी में सूर्योदय से लगा कर ४८ मिनट तक खाने पीने का त्याग करना होता है। नवकारसी से ऊपर मानव की जैसी रुचि व इच्छा हो उसी के अनुरूप एक निश्चित समय के लिये वह सावद्य कार्य का व खाने पीने का त्याग कर लिया करता है।

हिंसा, झूठ, चोरी, स्त्री सेवन एवं परिग्रह इन पांच आश्रव सेवन के सम्बन्ध में भी काल की मर्याद बांध कर त्याग लिया जा सकता है। मर्यादित काल का समय बीत जाने पर फिर त्याग नहीं रह जाता।

इस व्रत में जितने भी त्याग किये जाते हैं सब में टाइम का हिसाब रखा जाता है। दो मिनट, दो घंटा पांच घंटा जितनी इच्छा हो उतनी देर के लिये खाद्य पेय का, पंच आश्रव सेवन का त्याग किया जा सकता है।

प्रमाण करै छब्बीस बोल नूं,
पंदरा कर्मादान तणूं प्रमाण जी।

गिनती रख कर परिमाण करना चाहिये। जिन वस्त्रों के बनाने में अत्यधिक जीव-हिंसा हो उन वस्त्रों को तो एकदम त्याग देना चाहिये।

(७) पुष्प-कुसुम—जो वस्तु नाक से सूंघने के काम आवे और जो मानव मन को चंचल बनावे, ऐसी वस्तु के उपयोग की भी सीमा जरूरी है। इत्र, तेल, सेंट, सूंघने की तमाखू क्रीम स्नो आदि सुगन्धित अचित्त द्रव्य एवं पुष्प, फूल, फूलों से बने गजरे माला गमला आदि सब इस नियम के अन्तर्गत आ जाते हैं। ये सब सुगन्धित द्रव्य मानव को कामुक बनाते हैं। विलासिता को बढ़ाते हैं। इन्द्रिय व मन को चंचल करते हैं। अतः जहां तक बन सके इनका उपयोग कम करना चाहिये। रोजाना संख्या व नाम खोल कर नियम लेना चाहिये।

(८) वाहण—अपने पैरों के अतिरिक्त यात्रा करने के हेतु जो भी बाहरी साधन काम में लाये जांय, उनको वाहण कहते हैं। मोटर, रेल, हवा जहाज, पानी जहाज, ट्राम बस, रिक्सा साईकल, हाथी घोड़ा ऊँट आदि सब इस नियम में शुमार हैं। साधारणतया गृहस्थ कमजोर है। वह पैदल यात्रा तो नहीं कर सकता। कोई न कोई साधन काम में लाना ही होगा परन्तु

आज का शौकीन श्रावक साधु महात्माओं के साथ विहार में या रास्ते की सत्संग सेवा के समय भी पैदल चलना अपनी शान के खिलाफ़ समझता है। वह समर्थ है। तंदुरस्त शरीर वाला है। भरपूर जवानी में है, फिर भी सत्संग का जंगल में लाभ उठाने के बजाय मोटर गाड़ी में सवार होकर चलता है।

इस बीसवीं सदी में सवारियों की कमी नहीं। अँटी गरम चाहिये। आधी रात को भी हवा जहाज सेवा में हाजिर है। जहां इच्छा हो दुनियां में चक्कर लगाओ। हवा में लगाओ, पानी में लगाओ जमीन पर लगाओ। चक्कर लगाते लगाते मानव भी चक्कर में पड़ जाता है। असलियत को भूल जाता है। अतः यदि मानव को पुनः अपनी असली स्थिति का पता लगाना है, तो उसे वाहण का, सवारी का नियम करना होगा। आज के दिन मैं सिर्फ अमुक सवारी पर चढूंगा और किसी पर नहीं अथवा आजदिन मैं किसी भी सवारी का उपयोग न करूंगा। जैन साधु किसी भी सवारी को काम में नहीं लाता। अपना वस्त्र पात्र, पुस्तक पन्ने आदि का भार भी अपने कंधो पर लाद कर हजारों मील की पैदल यात्रा करता है। जान नहीं,

पहिचान नहीं, पैसा पास में नहीं, खाने का कोई सामान नहीं और न भोजन कपड़े मकान आदि की कोई व्यवस्था। फिर भी साधु बराबर देश देशान्तरों में पैदल भ्रमण करता है। क्या एक श्रावक उसका सूक्ष्म अंश में भी अनुकरण नहीं कर सकता ?

(९) शयन—शयन उसे कहते हैं जिस पर सुख पूर्वक बैठा जा सके। आराम किया जा सके। मांचा ढोलिया, खाट, कुरसी, पाटा, पलंग बिस्तर सतरंजी जाजम गद्दी आदि सब इसके अन्तर्गत है। इन सब की गिनती रख कर या नाम रख कर अपनी जरूरत एवं सुविधा का ख्याल रख कर मर्याद करनी होती है। अपना भी काम चले और अनन्त अव्रत भी रुक जाये। हर वस्तु की मर्याद करो। सीमा करो। अपनी दैनिक आवश्यकताओं में कमी करो। लालसा घटाओ। सन्तोष को अपनाओ। यही तो जैन दर्शन का मूल मंत्र है।

(१०) विलेवण—जो वस्तु शरीर के लेपन करने में काम आवे, चोपड़ने के काम आवे, मालिश करने के काम आवे, शरीर को सुगन्धित बनाने में काम आवे उसे विलेवण की संज्ञा दी गयी है। चन्दन केशर आदि, साबुन सोड़ा, मशाला, कपूर आदि

मालिश करने के तेल आदि नाना प्रकार के अनेक द्रव्य हैं जो इस काम में लिये जाते हैं। सौन्दर्य-सामग्री की गिनती तो है नहीं, फिर नित्य नये आविष्कार चालू हैं। व्यापारी भी मानव की इस कमजोरी से फायदा उठाता है। नित्य नयी नयी आकर्षक चीजें पेश करके धन कमाता है। इसलिये मर्याद किये विना, सन्तोष अपनाये विना मानव सुख का अनुभव कर नहीं सकता। सुबह उठते ही नित्य नियम के समय लेपन के काम की दिन भर की एक दो वस्तु का आगार रख कर बाकी का त्याग कर लेना चाहिये।

(११) ब्रह्मचर्य—श्रावक ने चौथा अणुव्रत अपनाया। परस्त्री, वेश्या, अप्राकृतिक मैथुन आदि का त्याग किया। स्वस्त्री के साथ आगार रखा। मर्याद रखी। सुबह उठ कर वह इस मर्याद में भी संकोच करता है। धीरे धीरे अभ्यास से मन पर काबू रखते हुये वह इस संकोच में भी और संकोच करता है। धार्मिक दृष्टि से न सही, स्वास्थ्य की दृष्टि से भी नियमित यथा-साध्य ब्रह्मचर्य का पालन अति उत्तम है। जैन दर्शन अहिंसा को केन्द्र मान कर हर काम पर विचार करता है। परन्तु इसके साथ २ स्वास्थ्य

के नियम भी छिपे पड़े हैं। ब्रह्मचर्य का स्वास्थ्य के साथ गहरा सम्बन्ध है। अतः नित्यप्रति इस प्रश्न पर विचार करना चाहिये और यथा सम्भव ब्रह्मचर्य पालन में नियम लेना चाहिये।

(१२) दिशि—श्रावक ने छठा दिशि व्रत धारण किया। आजीवन प्रत्येक दिशा में आने जाने का एक नियम रखा। मर्याद बांधी। किसी भी मानव के लिये यह तो सम्भव नहीं कि वह इतनी लम्बी सफर रोजाना कर सके। अतः श्रावक रोजाना अपनी इस मर्याद में कमी करता है। वह विचारता है—आज मुझे कहीं आना जाना तो है नहीं, फिर इतनी बड़ी अव्रत के आगार में फायदा? ऐसा सोच कर वह उस दिन के लिये पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण आदि प्रत्येक दिशा में अमुक कोस उपरान्त जाने का त्याग करता है। तार, चिट्ठी, रेडियो सम्वाद टेली फोन सम्वाद या माल, इस मर्याद के उपरान्त, मंगाने का या भेजने का त्याग करता है।

(१३) न्हाण-स्नान। आज के सभ्य वैज्ञानिक युग में स्नान एक जरूरी चीज है। मानव कहता है इससे शरीर की गन्दगी दूर होती है परन्तु असली बात तो यह है कि स्नान से एक बार गन्दगी छिप जरूर जाती है, दूर नहीं होती। स्नान किया। सुगन्धित द्रव्यों से।

थोड़ा-सा पसीना आया फिर शरीर से गन्दगी निकलने लगी। रोजाना तीन तीन दफे रगड़ रगड़ कर साबुन लगाकर स्नान किया, वर्षों तक किया, फिर भी बदबू तो मिटी नहीं। गन्दगी दूर हुई नहीं। शरीर स्वयं ही गंदा है। तो फिर गन्दगी की गन्दगी कैसे मिटे? कौवा कभी सफेद होने वाला नहीं, चाहे उसे कितना ही स्नान करावो। यह बात जरूर है कि स्नान से क्षणिक आनन्द जरूर मिलता है। शरीर हल्का होता है। चित्त प्रसन्न रहता है परन्तु इस पर भी सोचें। जैन साधु जीवन पर्यन्त कभी स्नान नहीं करता, फिर भी उसके शारीरिक सौन्दर्य में कमी नहीं आती। उसके ललाट पर जो रौनक तेज प्रभा कान्ति है उस में कोई फर्क नहीं आता। वह दुनियां को अच्छी से अच्छी चीजें दे सकता है—अच्छे से अच्छे उपदेश, अच्छे से अच्छे ग्रन्थ। स्नान के अभाव में भी साधु का चित्त परम प्रसन्न रहता है। इतने पर भी यदि मान लिया जाय कि स्नान स्वास्थ्य के लिये जरूरी है तो भी स्नान की मर्यादा तो करनी ही चाहिये। दिन भर पानी के अन्दर बैठा रह कर पानी को बरबाद करना तो उचित नहीं। श्रावक इस पर विचार करता है और सुबह नियम लेता है कि आज दिन

में सिर्फ इतनी दफे के उपरान्त स्नान न करूंगा। प्रत्येक स्नान में इतने मन से अधिक पानी बरबाद न करूंगा। नदी तालाव कूवा वावड़ी पर स्नान न करूंगा। इत्यादि।

(१४) भत्त—इस नियम में प्रति दिन भोजन पानी के वजन का परिमाण होता है।

शरीर, इन्द्रियां एवं मन पर नियन्त्रण रखने के लिये भोजन का नियम होना जरूरी है। खाद्य पदार्थों की संख्या व वजन सब का नियम होना चाहिये। स्वास्थ्य की दृष्टि से भूख से कुछ कम खाना लाभ-प्रद है। पेट को हर समय हलका रखना चाहिये। अधिक खाने से उसे पचाने के लिये पाचन-अंगों को जरूरत से ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है और वे धीरे धीरे शिथिल होने लगते हैं। उनकी पाचन शक्ति घटने लगती है।

भोजन के सम्बन्ध में दैनिक नियम कर लेने से, खाद्य व पेय पदार्थों के वज़न का परिमाण कर लेने से उस दिन के लिये भोजन सम्बन्धी लालसा शान्त हो जाती है। इस प्रकार के निय-मित भोजन से जीवन पर्यन्त सुन्दर स्वास्थ्य बना रहता है।

उपरोक्त चोदह नियमों के द्वारा मानव अपनी दैनिक आवश्यकताओं में कमी करता है, उनमें संकोच करने का अभ्यास करता है। इस अभ्यास इस साधना से मानव की लालसा घटने लगती है और वह जीवन में शान्ति का अनुभव करने लगता है।

नवकारसी पोहरसी पुर मुढ़,
एकाशणों आम्बिलादिक तास जी।
उपवास वेलादिक तप करै,
उत्कृष्टो करै छमास जी॥
तप तणूं कष्ट हुवै तिको,
ते करणी निरजरा तणी जाण जी।
खावा पीवा रो व्रत हुओ तिका,
ते दशमूं व्रत हुवै आण जी।
जे जे सावद्य त्यागै तेह में,
काल रो करै प्रमाण जी।
तेह दशमूं व्रत नींपजै,
इसमें जावज्जीवरा नहीं पचखाण जी॥

दशवें व्रत में जीवन पर्यन्त का कोई त्याग पच्चक्खाण नहीं किया जाता। परन्तु समय की मर्याद, काल की अवधि रख कर सावद्य कार्य का त्याग किया जाता है। अर्थात् मैं अमुक

वस्तु का अमुक समय तक त्याग करता हूं। जितने समय तक सावद्य कार्य का त्याग किया उतना ही इस व्रत के अन्तर्गत हुआ। विविध प्रकार की तपस्या जो समय की अवधि मान कर की जाती है वह देशावकाशिक व्रत है जैसे—

नवकारसी— सूर्योदय से लगाकर ४८ मिनट तक आहार पानी का त्याग।

पोहरसी — सूर्योदय से लगाकर एक प्रहर तक आहार का त्याग। दिन रात के चौवीस घंटों में ८ प्रहर माने गये हैं। चार प्रहर दिन के और ४ प्रहर रात के। यदि दिन १० घंटे का हो, तो एक प्रहर २॥ घंटे का होगा। यदि दिन १४ घण्टे का हो, तो एक प्रहर ३॥ घंटे का होगा। दिन का प्रथम प्रहर सूर्योदय से शुरू होता है और चौथा प्रहर सूर्यास्त होते ही खत्म होता है। रात्रि के जो चार प्रहर माने जाते हैं, उनमें भी यही नियम लागू है।

पुरमुढ — सूर्योदय से दो प्रहर तक आहार का त्याग।

एकाशन — दिन भर में सिर्फ एक दफे भोजन करना।

आयंविल — एक ही प्रकार के धान का भोजन करना, सिर्फ पानी के साथ। जैसे—बाजरी, या गेहूं, चना, मोठ। इनमें किसी एक की रोटी बना कर खायी जाती है। रोटी में नमक आदि कोई भी चीज नहीं मिलायी जाती।

उपवास — एक दिन तक भूखा रहना।
बेला — दो दिन तक कुछ भी न खाना।
छमासी तप—छव महीने तक अन्न न खाना।

इस प्रकार से जो भी तपस्या काल की मर्याद रख कर की जाती है, वह देशावकाशिक व्रत है। आत्म उत्थान का एक अति उत्तम साधन है। तपस्या में मानव को अनेक कष्ट होते हैं, कष्ट को धैर्य पूर्वक सम भाव से सहन करने के कारण निर्जरा होती है। व्रत में जो खाने पीने व भोग उपभोग की सामग्री के व्यवहार में जो त्याग किया जाता है, संकोच किया जाता है वह संवर है। इससे कर्म रुकते हैं।

जितने सावद्य कार्यों का समय बांध कर त्याग किया गया उतना ही दशवां देशावकाशिक व्रत है। संवर व निर्जरा धर्म है। जो चीज अपने काम के लिये खुली रखी, आगार में रखी, छूट रखी वह तो अव्रत है, दशवां व्रत नहीं।

दशवें देशावकाशिक व्रत और इग्यारवें पौषध व्रत के सम्बन्ध में कई लोगों की भ्रान्त धारणा है। कई लोग उपवास करते हैं। उपवास में पक्का अचित्त जल पीते हैं और रात्रि में पौषध व्रत की तरह धर्म ध्यान में तल्लीन रहते हैं। यह देशावकाशिक व्रत है, पौषध व्रत नहीं। पौषध व्रत में चारों आहार का त्याग किया जाता है, तीन आहार का नहीं। देशावकाशिक व्रत चार या आठ प्रहर तक किया जा सकता है या इससे भी थोड़े समय के लिये। जो देशावकाशिक व्रत थोड़े समय के लिये किया जाता है,

उसे संवर भी कह डालते हैं। जैसे यदि सिर्फ २० मिनट तक पांच आश्रव सेवन का त्याग किया, तो साधारण भाषा में उसे संवर कह देते हैं। परन्तु असल में इसे देशावकाशिक व्रत ही कहना चाहिये। संवर कहने से कोई खास चीज का बोध नहीं होता और संवर की परिभाषा भी बहुत लम्बी चौड़ी है। तीन आहार का त्याग करके जो उपवास किया जाय और रात्रि में प्रतिक्रमण आदि करते हुए पंच आश्रव सेवन का त्याग किया जाय वह देशावकाशिक व्रत है। परन्तु बहुत से इसे पौषध व्रत कह डालते हैं। चारों आहार का त्याग किये बिना पौषध व्रत होता भी नहीं। इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। देशावकाशिक व्रत की एक विशेषता और भी है। दशवें व्रत में रात्रि के समय का प्रतिक्रमण व पंच आश्रव सेवन का त्याग उपवास करके भी किया जा सकता है और बिना उपवास के भी। संध्या को भोजन करके भी रात्रि भर दशवां व्रत निपजाया जा सकता है। परन्तु ग्यारवां पौषध व्रत तो उपवास (चारों आहार का त्याग) के बिना किसी भी हालत में हो नहीं सकता। अतः यदि श्रावक विवेक से काम ले, तो प्रति रात्रि को दशवें व्रत का लाभ उठा सकता है। जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करने के लिये देशावकाशिक व्रत एक उत्तम साधन है। इस व्रत को धारण करने वाला हर समय जागृत है। प्रमाद से वह दूर है। व्यर्थ में वह एक क्षण भी खोना नहीं चाहता।

व्रत इग्यारहवां

पौषधोपवास व्रत

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दन्तो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य ॥

उत्तराध्ययन १-१५

सब से पहले अपनी आत्मा अपने मन का दमन करो। उन पर नियन्त्रण रखो। काबू रखो। आत्मा ही दुर्जय है। मानव आत्म दमन ही से इस लोक और परलोक दोनों जगह सुखी होता है।

आत्म दमन के लिये पौषधोपवास व्रत एक उत्तम साधन है।

श्रावक रो व्रत इग्यारमूं, पोषध कह्यो भगवान् ।
सिखाव्रत रलियामणों, हिवै सुणूं सूरत दे कान ॥

श्रावक का इग्यारवां व्रत है पौषधोपवास व्रत। यह शिक्षाव्रत के अन्तर्गत है। इस व्रत के अपनाने से मानव को कितने ही त्याग करने पड़ते हैं।

हिवै पोषध व्रत रलियामणूं, पचखै चिहुं विधि आहारजी ।
अबम्भ मणी सुवर्ण तजै, माला वणग विलेवण परिहार जी ॥
शस्त्र मूशलादिक आदिदे, सावज्ज जोग तणा पचक्खाणजी ।
काल थी दिवस ने रात नूं, एक पोसा तणूं प्रमाण जी ॥

पौषधोपवास व्रत में कितनी ही वस्तुओं के त्याग करने पड़ते हैं। जैसे–

(१) चार प्रकार के आहार का त्याग।

(२) अब्रम्भ—मैथुन सेवन का त्याग।

(३) सोना चांदी मणि माणक रत्न आदि के आभूषणों (अपने शरीर पर पहने हुए के अतिरिक्त) का त्याग।

(४) माला—पुष्पमाला, फूल, सुगन्धित द्रव्य आदि का त्याग।

(५) वणग—गुलाल, अबीर, रंग आदि का त्याग।

(६) विलेपन—केशर, चन्दन आदि सुगन्धित लेपन द्रव्यों का त्याग।

(७) अस्त्र शस्त्र मूसल आदि का त्याग।

उपरोक्त सारे काम सावद्य हैं। पौषध व्रत में मानव किसी भी प्रकार का सावद्य कार्य नहीं किया करता। पौषध व्रत की विधि है—हे गुरुदेव! मैं एक दिन रात के लिये पौषधोपवास व्रत में चार प्रकार के आहार का त्याग करता हूं। स्त्री सेवन का त्याग करता हूं। शरीर पर पहने हुए आभूषणों के सिवाय और सब आभूषणों का त्याग करता हूं। पुष्प माला आदि का त्याग करता हूं। चन्दन आदि लेपन का त्याग करता हूं। शस्त्र मूसल आदि अन्य सावद्य प्रवृत्तियों का त्याग करता हूं। जबतक एक अहो रात्र तक इस व्रत का पालन करूं तबतक मैं मन, वचन व शरीर से सावद्य प्रवृत्ति स्वयं नहीं करूंगा और दूसरों से नहीं कराऊंगा।

जघन्य दोय करण तीन जोग सूं,
करै सावज्ज जोग पचखाण जी।
कोई उत्कृष्टै भांगै करै,
तीन करण तीन जोग से जांण जी॥
द्रव्य थी कनै तिण उपरांत रा,
किया सर्व द्रव्यां रा पचखाण जी।
खेत्र थी सर्व क्षेत्रां मझै,
काल थी दिवस ने रात्री रा जाणजी॥
भाव थी राग द्वेष रहित करै,
वलि चोखै चित्त उपयोग सहित जी।
जब कर्म रुकै छै आवता,
वलि निरजरा हुवै रूड़ी रीत जी॥

साधारणतया पौषधोपवास व्रत में दो करण और तीन योग से सर्व सावद्य कार्य का त्याग किया जाता है। कई ऐसे भी दृढ़ मन वाले श्रावक हैं, जो तीन करण और तीन योग से भी सावद्य कार्य का त्याग करते हैं। त्याग द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की मर्याद रखते हुए करने पड़ते हैं।

द्रव्य—धोती चादर ओढ़ने बिछौने के कपड़े, पुस्तक पन्ने, अंगूठी, घड़ी, आदि आभूषण, पूंजणी, मुंहपति आसन आदि जो

भी द्रव्य श्रावक अपने पास रखे, उन द्रव्यों के अतिरिक्त और सभी द्रव्यों का श्रावक त्याग करता है। पौषधोपवास व्रत में जिन द्रव्यों का त्याग किया गया वह है इस व्रत का द्रव्य।

क्षेत्र—पौषधोपवास व्रत में श्रावक ने जिन द्रव्यों का त्याग किया है वह सर्व स्थानों के लिये, सर्व क्षेत्रों के लिये है। किसी भी स्थान पर उस त्याग में छूट नहीं है। इस लिये पौषध व्रत के त्याग सर्व क्षेत्रों के लिये होते हैं।

काल—पौषध व्रत का काल मान एक अहो रात्र तक माना गया है। अहो रात्र अर्थात् दिन रात। साधारणतया पौषध व्रत सूर्यास्त से थोड़ा पहले आरम्भ होता है और दूसरे दिन सूर्योदय के पश्चात् समाप्त होता है। इसे चार प्रहरी पौषध कहते हैं। इस हिसाब से रात्रि के चार प्रहर धर्म ध्यान आत्म चिन्तवन में बिताने पड़ते हैं। इस समय में सर्व सावद्य योगों का त्याग करना पड़ता है। जिस रात्रि में पौषध किया जाता है उस दिन चार आहारों के त्याग सहित उपवास करना होता है। पौषध व्रत का काल मान कम से कम चार प्रहर से कुछ अधिक का है और ऊपर में जितनी इच्छा व रुचि हो।

भाव—प्रत्येक कार्य में मानसिक विचारधारा, भाव की शुद्धि भी परम आवश्यक है खास कर धार्मिक कार्य में।

अतः पौषध व्रत में राग द्वेष से सर्वथा दूर रहना चाहिये। शुद्ध मन से उपयोग सहित पौषध करना चाहिये।

इस प्रकार से द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्याद रखते हुए पौषध व्रत करने से संवर होता है। कर्म प्रवेश रुकता है। निर्जरा भी होती है। कर्म क्षय होता है।

त्याग की दृष्टि से सामायिक व पौषध के नियम एक ही जैसे हैं। दोनों में फर्क क्या है—इसे बताने के लिये कवि के शब्द हैं—

उपग्रण पोसा में राखिया,
तिण उपरान्त किया पचखाण जी।
राख्या ते अव्रत परिभोग री,
तिणरो पाप निरन्तर लागै छै आणजी॥

पोसा ने सामाइक व्रत नां,
सरिखा छै पचखाण जी।
सामाइक तो महूरत एक नीं,
पोसो दिवस रात रो जाण जी॥

पोसा ने सामाइक व्रत में,
यां दोयां में सरिखो छै आगार जी।

ते कह्या छै सघलाही अव्रत मांहीं,
ते जोय करो निस्तार जी ॥

सामायिक व्रत की तरह पौषध व्रत में भी कुछ जरूरी द्रव्यों-उपकरणों का आगार रख कर बाकी के दुनियाँ के समस्त द्रव्यों का त्याग कर दिया जाता है। त्याग की दृष्टि से सामायिक और पौषध में कोई फर्क नहीं। दोनों एक जैसे हैं फर्क सिर्फ इतना ही है कि सामायिक होती है एक मुहूर्त्त की (करीब ४८ मिनट) और पौषध एक दिन रात का। इन दोनों में जो आगार अपनी जरूरत अनुसार रखा जाता है, वह अव्रत की श्रेणी में है। अतः सावद्य है।

कितना ऊंचा है जैन आदर्श। परिग्रह को कहीं भी स्थान नहीं। धार्मिक क्रिया करते समय भी अगर उस मानव का परिग्रह से थोड़ा सा भी सम्पर्क हो, सम्बन्ध हो, तो वह भी आदरणीय नहीं। पौषध व्रत में सोना चांदी मणि रत्न आदि आभूषणों का त्याग करना होता है फिर भी श्रावक पौषध में इन बहुमूल्य आभूषणों को पहने रहता है। क्या पौषध में इन आभूषणों को पहने रहने से व्रत भंग नहीं होता? त्यागी हुयी वस्तु का व्यवहार क्यों? स्वामी जी स्पष्टी करण करते हैं—

जब कोई कहै पोषध व्रत में,
मणी सुवर्णादि पचखाण जी।

तिण सूं मणी सुवर्ण आदि कने राखिया,
पोसो भांग गयो जाण जी॥
पोसा मांहि कने राखिया,
मणी सुवर्ण आदिक जाण जी।
तिण उपरान्त राखण रा पचखाण छै,
तसु उत्तर यह पिछाण जी॥
उमुक कहितां मूंकी दिया,
त्यां मणी सुवर्ण रा पचखाण जी।
कने रह्या त्यांरी अव्रत रही,
भगवती सुं करिजो पिछाण जी॥
जो मणि सुवर्ण रा जावक पचखाण हुवै,
तो उमुक रो पाठ कहिता नांहि जी।
ओ तो निर्णय उघाड़ो दीसी गयो,
विचार देखो मन मांहि जी॥

कई व्यक्ति ऐसा कहते हैं कि पौषध व्रत में मणि रत्न सोना चांदी आदि के आभूषणों का पच्चखाण होता है, त्याग होता है। अतः पौषध में मणि सुवर्ण आदि रखने से, उनको पहिने रहने से पौषध व्रत का भंग क्यों नहीं ? इस प्रश्न का स्वामी जी सीधा सा परन्तु तर्क युक्त उत्तर देते हुए कहते हैं—पौषध में श्रावक

अपने पहने हुए आभूषणों का आगार रख कर बाकी के सब आभूषणों का त्याग कर देता है। जो आभूषण उसने अपने पास पौषध में रखे, आगार रखा वे सब अव्रत की श्रेणी में हैं। सावद्य हैं। पाप का कारण है। इनके अतिरिक्त जिन सब आभूषणों का उसने पौषध में त्याग किया, वे सब व्रत की श्रेणी में हैं। जो व्रत है, वह निरवद्य है। पाप रहित है। धार्मिक क्रिया है। जैन दर्शन के सुप्रसिद्ध सूत्र भगवती में यह उल्लेख है कि "अमुक अमुक आभूषणों का त्याग किया"। उमक मणी सुवन्न ना पचक्खान। इसका सीधा अर्थ यह है कि आभूषणों का सम्पूर्ण रूप से त्याग नहीं। अतः पौषध में जिन आभूषणों का त्याग किया वह व्रत में है जो पहिन रखा है, आगार रखा है वह अव्रत में है। इसलिये व्रत भंग का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। खुलासे के लिये कवि उदाहरण भी पेश करता है।

श्रेणिक ने कृष्णजी री राणियां,
इत्यादिक राणियां अनेक जो।
त्यां पोसा किया दिसै गहणां थकां,
समझो आण विवेक जी॥

त्यांरो चूड्यां में हीरा पन्ना जड्या,
वले दांतां में जाणिजे मेख जी।

और गहणां त्यांरै पहरणे,
त्यां उतारया न दीसे छै एक जी ।
भारी भारी ज्वाहिर चूड्यां जड्या,
वलि भारी भारी गहणां हाथ गला मांहिजी ।
ते सघला ही केम उतारसी,
ये तो मिलतो न दीसे छै न्याय जी ॥
त्यां कीधी समाई संध्या काल री,
समाइ कीधी रात प्रभात जी ।
ते खिण खिण में केम उतारसी,
या पिण मिलती न दीसै वात जी ॥
समाई में गहणां नहिं राखणा,
तो चूड्यां नहीं राखणी ताय जी ।
गहणां ने चूड्यां तो एकहीज छै,
दोनूं ही आभूषण म्हांय जी ॥
समाइ ने पोसा तणीं,
दोयां री विधि जाणिजो एक जी ।
रीत दोयां री बरोबरी,
समझो आणि विवेक जी ॥

राजा श्रेणिक एवं श्रीकृष्ण के अनेक रानियां थीं और उन रानियों ने अनेक पौषध किये। रानियों की चूड़ियों में हीरे पन्ने आदि बहुमूल्य रत्न भी जड़े थे। रानियों के मोती जैसे दांतों में सोने की मेखें भी कसी थी। नाना प्रकार के आभूषण वे पहना करती थी। पौषध व्रत के समय वे समस्त गहनें उतार कर अलग रख देती हो, या लोहे की आलमारियों में बन्द कर देती हो, ऐसी बात तो दीखती नहीं। उन रानियों के सुन्दर हाथ, गर्दन कटि आदि नाना अंगोपांग सुन्दर वेश कीमती गहनों से भरे रहते थे। पौषध के समय क्या उन सब को उतार कर रख देना सम्भव था? वे सामायिक भी करतीं थीं। संध्या में, सुबह में और रात में भी। प्रत्येक सामायिक के समय गहने उतारना सम्भव भी नहीं। यदि सामायिक में गहने पहने रहने का निषेध हो, तो चूड़ियों का निषेध भी स्वतः ही हो जाता है। गहने व चूड़ियां तो एक ही जैसे हैं। दोनों ही तो आभूषण हैं। त्याग के लिहाज से सामायिक व पौषध में कोई फर्क नहीं। यदि सामायिक में गहनों का आगार मान लिया जाय, तो पौषध में भी मानना पड़ेगा। दोनों एक ही जैसे तो हैं। फर्क है तो समय का है सामायिक एक मुहूर्त्त की, तो पौषध दिन रात का। अतः सामायिक व पौषध में जो गहनों का आगार है वह अव्रत है। गहनों का आगार रखने से व्रत भंग का दोष नहीं लगता।

पौषधोपवास सामायिक आदि धार्मिक क्रिया करने का उद्देश्य धन सम्पत्ति पुत्र स्त्री ऐश्वर्य आदि प्राप्त करने का नहीं

होता। इस लोक व परलोक में नाना प्रकार के पौद्गलिक सुखों की प्राप्ति हो, मैं संसार में सुखी बनूं, विशाल ऐश्वर्य का स्वामी बनूं और परलोक में महा ऋद्धि वाला देव बनूं—ऐसी भावना को लेकर पौषध व्रत नहीं किया जाता। जैन आदर्श पौद्गलिक सुखों की प्राप्ति नहीं, उन सुखों पर लात मारना है।

यह लोकरै अर्थ करै नहीं, न करै खावा पीवा रै हेत जी।
लोभ लालच हेतु करै नहीं, परलोक हेत न करै तेथ जी॥

पौषध व्रत का विधान इस लोक की इस जीवन की उन्नति के लिये नहीं, खाने पीने के आराम के लिये नहीं, लोभ लालच आदि के लिये नहीं और परलोक में सुख मिले वैभव मिले यह भी पौषध का लक्ष्य नहीं। तब फिर पौषध किस मतलब से किस उद्देश्य से किया जाता है?

संवर निरजरा हेतै करै, और वंछा नहिं कांय जी।
इण परिणामां पोसौ करै, ते भाव थकी शुद्ध थाय जी॥

पौषधोपवास व्रत का सिर्फ एक ही उद्देश्य है—बंधे हुए कर्मों का क्षय करना और नये कर्म प्रवेश को रोकना। जैन दर्शन में कर्म क्षय करने वाली क्रिया का नाम निर्जरा है और कर्म प्रवेश के रोकने वाली क्रिया का नाम संवर है। पौषध किया जाता है संवर और निर्जरा के हेतु। जैन दर्शन का चरम आदर्श है—मोक्ष की प्राप्ति। मोक्ष प्राप्ति के लिये कर्मों से पिण्ड छुड़ाना जरूरी है। कर्मों से पिण्ड छुड़ाने के लिये संवर निर्जरा जैसी धार्मिक क्रिया

जरूरी है। सम्पूर्ण रूप से कर्मों से छुटकारा पा जाना ही मोक्ष है।

ऊंची से ऊंची धार्मिक क्रिया में भी समय के फेर से विकृति आ ही जाती है। धर्म के दलाल, ठेकेदार अपने स्वार्थ के लिये धर्म सिद्धान्तों के उल्टे सीधे अर्थ लगा कर साधारण जनता को भ्रम में डाल देते हैं। पौषधोपवास व्रत के सम्बन्ध में भी स्वामी जी ने ऐसी ही विकृति देखी, उनको गहरी चोट लगी।

कोई लाडूआं साटै पोसो करै,
कोई परिग्रहो लेवा करै ताम जी।
कोई और द्रव्य लेवा पोसो करै,
ते कहवा नें पोसो छै नाम जी॥
ते तो अरथी छै एकान्त पेट रो,
ते मजूरिया तणी छै पांत जी।
त्यांरा जीव रो कारज सरै नहीं,
उलटी घाली गला मांहि रांत जी॥
लाडूआं साटै पोसा करावसी,
अथवा धन देई ताम जी।
ते कहिवा नें पोसो करावियो,
पिण संवर निरजरा नूं नहिं काम जी॥

कई व्यक्ति लड्डू खाने के, व परिग्रह धन दौलत पाने के लोभ में आकर पौषधोपवास करते हैं। ऐसे पेट के लोलुप व्यक्ति मजदूरों की श्रेणी में हैं। ऐसे द्रव्य लेकर पौषध करना फिजूल है। ऐसा करने से जीवन शुद्धि का कोई उद्देश्य पूरा नहीं होता। ऐसा पौषध करना संवर निर्जरा का हेतु न बन कर कर्म बंध का ही कारण बनता है।

संसार के सारे काम मजदूरों को पैसे देकर कराये जा सकते हैं। परन्तु क्या कर्म काटने के लिये भी मजदूरों से काम लिया जाय ?

कर्म काटण करैं मजूरिया,
त्यांरा घट मांहि घोर अज्ञान जी।
लाडू खवाय पोसा करावणूं,
ये तो कठै ही न कह्यो भगवान जी॥
कर्म काटण करैं मजूरिया,
त्यांरा घट मांहि घोर अंधार जी।
पइसा देई ने पोसा करावणा,
ते नहिं चाल्या सूत्र मझार जी॥
मजूरिया करै खेती निनाणवां,
मजूरिया करै घर करावा काम जी।

कड़व काटण करै मजूरिया,
कर्म काटण नहीं चाल्या तामजी ॥
खेत खड़वा नें चाल्या मजूरिया,
वलि भार लेजावण काम जी ।
धन खांडण करै मजूरिया,
कर्म काटण ने नहिं चाल्या ताम जी ॥

खेती का निर्माण करने के लिये, कड़वी काटने के लिये, धान खांडण के वास्ते, घर के काम धन्धों के वास्ते, मकान बनाने के हेतु भार ढोने के लिये—इस प्रकार के नाना सांसारिक कामों के लिये मजदूर किये जाते हैं परन्तु कर्म काटने के वास्ते भी मजदूर किये जांय, यह बात जंचती नहीं। इस वास्ते जो व्यक्ति अपने कर्म कटवाने के वास्ते मजदूर करता है, उसे लड्डू खिलाता है, पैसा देता है और उससे पौषध कराता है तो वह भारी अज्ञान में है, अंधेरे में है। जैन दर्शन के रहस्य का उसे पता ही नहीं। पैसा देकर मजूरों से पौषध कराना व पैसा लेकर पौषध करना— ऐसा उल्लेख सूत्रों में कहीं नहीं मिलता। फिर भी स्वार्थी लोग इसे धार्मिक क्रिया का जामा पहना कर अपना उल्लू सीधा करते हैं। अपना पेट पालते हैं।

विरक्त होय काम भोग थी,
त्यांने त्याग्या छै शुद्ध परिणाम जी ।

मुक्ति रै हेतु पोसो करै,
ते असल पोसो कह्यो स्वाम जी ॥
इण विधि पोसो कियाँ थकां,
सीझसी आतम कार्य जी ।
कर्म रुकसी ने वलि टूटसी,
इम भापियो श्री जिनराय जी ॥

काम भोगों के प्रति विरक्ति की भावना से प्रेरित होकर जो मानव शुद्ध मन से इनका त्याग करते हुए एवं मुक्ति की कामना रखते हुए पौषध करता है वही शुद्ध इग्यारवां व्रत है। इस प्रकार के शुद्ध पौषध व्रत से ही आत्मा का उत्थान होता है। आते हुए कर्म रुकते हैं। बंधे हुए टूटते हैं। आत्मा निर्मल एवं स्वच्छ बनती है।

व्रत बारहवां

अतिथि संविभाग व्रत

जिसके आने की कोई तिथि, दिन व समय नियत नहीं, जो विना किसी सूचना के एकाएक घर में आ जावे उसे कहते हैं अतिथि। यहां अतिथि का अभिप्राय साधु से है। अपने लिये तैयार किये हुए भोजन व अपने तांई खरीदे हुए वस्त्र कम्बल आदि जो वस्तुयें ऐसे अतिथि के काम आ सके उनको दान देना, संविभाग करना अतिथि संविभाग है एवं ऐसा करने की अर्थात् शुद्ध संयमी साधु को शुद्ध दान देने की प्रतिज्ञा करना नियम लेना अतिथि संविभाग व्रत है।

दुल्लहा हु मुहादाई, मुहा जीवी वि दुल्लहा।
मुहादाई मुहा जीवी, दो वि गच्छंति सुग्गई॥

दशवैकालिक—

निःस्वार्थ भावना से शुद्ध दान देने वाले दुर्लभ हैं इने गिने हैं और शुद्ध भिक्षा के द्वारा जीवन विताने वाले आदर्श मुनि भी विरले ही हैं। ऐसे शुद्ध दान को देने वाले और लेने वाले दोनों ही स्वर्ग के अधिकारी हैं। *

---

* दातव्यमिति य द्दानं दीयते ऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम्॥

श्री मद्भागवद् गीता १७-२०,

शुद्ध दान का महत्त्व सभी सन्त महात्माओं ने स्वीकार किया है परन्तु पेट के लोलुप स्वार्थी मानवों ने इस शुद्ध दान का रूप विकृत कर डाला और आज यह हाल है कि शुद्ध साधुओं की भिक्षा वृत्ति को भी कानून के द्वारा बंद करने की नौवत आ गयी है। दान के नाम से साधारण जनता चिढ़ने लगी है। धर्म के नाम पर नगद रुपयों पैसों की भीख मांगने वाले भिखारियों की आज बाढ़-सी आ गयी है। बड़े बड़े शहरों में ऐसे भिखारियों से सड़कें भरी पड़ी है। रास्ता चलना मुश्किल हो जाता है। धर्म भीरु भोली भाली जनता ऐसे भिखारियों को पैसों का दान देकर अपना धार्मिक फ़र्ज अदा करती है। रोजाना दो चार आनों का दान दे दिया, बस धर्मात्मा बन गये।

युद्ध की अग्नि भभकी। ब्लैक मारकेट (चोर बाजारी) टपक पड़ा। व्यापारियों ने ब्लैक की पूजा की। उनका धन दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। गवर्नमेंट सरकार को माल सप्लाई किया। कन्ट्राक्टर बने। अफसरों को मोटी घूंस दी। सड़ा गला, पोचा, रद्दी माल दिया और अच्छे माल के पैसे अदायी किये। धन बढ़ा, अनाप सनाप बढ़ा, गल्ला छिपाया, चीनी गायब की, कपड़े की गांठें जमींदोट की। तहखानों में बन्द की। सरकार ने कन्ट्रोल किया, तो ऐसे छिपाने वालों की बन आयी। अफसरों की जेबें गरम की और गरीब जनता से चौगुने, अठगुने, बीस गुने दाम ले लेकर ऐसे छिपायी हुयी चीजें बेची। धन बढ़ता ही गया। लखपति बने। करोड़पति बने और बने अरबपति।

अस्पतालों में करोड़ों का दान दिया। जगह जगह मन्दिर बनवाये। धर्मशालाओं का तांता लगा दिया। कुवों की भरमार कर दी। स्कूल कालिजों के विशाल भवन खड़े करवा दिये। "दानवीर नम्बर वन" की पदवी हासिल करली। बड़े धर्मात्मा बन गये। पिछले चोरी के, धोखेबाजी के, गरीबों को भूखा मारने के, नंगा रखने के, सारे पाप धुल गये। यह है परिभाषा आज के दान की।

ऐरण की चोरी करै, करै सुई को दान
ऊंचा चढ़ चढ़ देखसी, आवत कहां विमाण ?

हमने करोड़ों दान में लगाया। दानवीर तो बन गये परन्तु अभीतक स्वर्ग से हमारे लिये विमान तो नहीं आया। ऐरण † की चोरी करके भी सुई जितना दान देने से स्वर्ग मिल सकता है —ऐसा ही तो धर्म दलालों ने हमें बताया था। बड़ी देरी हो रही है। पता नहीं स्वर्ग के देवताओं को हमारे दान की खबर मिली या नहीं। बिना विमान के बिना सवारी के स्वर्ग पहुंचे भी तो कैसे ? मकान की छत पर हम चढ़े, विमान की इंतजारी में। दिन बीते, महीने बीते, वर्ष और युग भी बीत चले परन्तु विमान तो अभी तक भी न आया।

भारत जैसे धर्म परायण देश में मन्दिर के सामने भिखमंगों

---

† ऐरण लोहे का एक भारी औजार होता है जिसको बढ़ई, सुथार, लुहार, सोनार आदि काम में लाते हैं।

की एक लम्बी कतार देख कर एक लेखक कहता है—ईश्वर के नाम पर धर्म के नाम पर यह अंधेर कैसा? ये हट्टे कट्टे नवयुवक, दुध मुंहे बच्चे भीख मांगें और पेट भरें यह सब क्यों? वह आगे लिखता है—पहले गोली से उड़ा दो उस धनी मानव को जो अन्याय अत्याचार दगा फरेब जालसाजी से पैसे कमा कर फिर दान के नाम पर उनको विखेरता है। यश कीर्त्ति पाने के लिये अपने पाप को छिपाने के लिये; वह समर्थ युवकों को आलसी बनाता है। भिखमंगी को प्रोत्साहन देता है। दुनियां को ऐसे धनी की जरूरत नहीं। वह भार है। बोझ है। युवकों को धर्म के नाम पर तबाह करता है। उनकी जिन्दगी बरबाद करता है। इसके बाद भिक्षा मांगने वाले को भी गोली से उड़ा दो। वह समर्थ है, युवक है। काम कर अपना पेट भर सकता है। फिर यह भिखमंगी का पेशा कैसा? आलसी मानवों की हमें जरूरत नहीं। उक्त लेखक यदि परिस्थिति को देख कर ऐसा कहता है, तो उसे हम दोष नहीं दे सकते। आज भिखमंगों की ऐसी भीषण बाढ़ को देख कर भारत सरकार भी तो कानून Beggars Act बना रही है। भिखमंगी को बंद करने जा रही है। अब दानी, दानवीर क्या करेंगे? वे धर्म कैसे कमायेंगे? स्वर्ग कैसे प्राप्त करेंगे? लेकिन पैसे वाले बड़े चालाक होते हैं वे नये धर्म-दलालों को खोज लेंगे व पैसों से नये धर्म दलाल बना कर स्वर्ग पहुंचने का कोई नया रास्ता तैयार कर लेंगे!

स्वामी भिक्षु के जमाने में भी स्वार्थी मुनियों ने अपने सुविधे

के अनुसार दान के स्वरूप को विकृत कर दिया था। स्वामी भिक्षु को यह बात बहुत अखरती थी, खटकती थी। आपने ऐसे स्वार्थियों की पोल खोल कर दान का शुद्ध स्वरूप लोगों के सामने रखा।

बारहवें व्रत का आरम्भ करते हुए कवि कहता है :—

अतिथि संविभाग चौथो शिखा, ते बारमूं व्रत रसाल।
श्रमण निग्रन्थ अणगार ने, दान देवै दग चाल॥
ते फासू अचित्त ने सूझतो, कल्पै ते द्रव्य अनेक।
कल्पै ते क्षेत्र काल में, दान दे आणि विवेक॥
जो उ दान दे मुक्ति ने कारणे, और वंछा नहिं काय।
जब निपजै व्रत बारमूं, इम भाख्यो जिनराय॥

अतिथि संविभाग व्रत चौथा शिक्षाव्रत है। बारह व्रतों में अन्तिम व्रत है। इस व्रत में श्रमण, निग्रन्थ, अणगार, साधु को शुद्ध दान देने का विधान है। जो द्रव्य अचित्त हो, शुद्ध हो कल्पनीय हो उसे विवेक पूर्वक साधु को वहिराना, दान देना इस व्रत का मुख्य विषय है। दान देते समय क्षेत्र एवं काल का भी ध्यान रखा जाता है। ऐसे दान में (मोक्ष के सिवाय) किसी भी वस्तु की कामना इच्छा या वांछा नहीं की जाती। धन प्राप्ति के लिये, पुत्र प्राप्ति के लिये या अन्यान्य संसारिक सुख भोगों के लिये दान नहीं दिया जाता।

इग्यारा व्रत वश आप रै, मन माने जब निपजाय ।
बारमो व्रत शुद्ध साध नै, प्रतिलाभ्यां सु थाय ॥

प्रथम इग्यारह व्रतों का पालन तो श्रावक अपने सुविधे अनुसार अपने मन से जब इच्छा हो, तब कर सकता है। परन्तु बारहवें व्रत के पालन में तो साधु के संयोग की जरूरत रहती ही है। यह इस व्रत की विशेषता है।

मानव अपने जीवन में लाखों करोड़ों कमाता है और उनको दूसरों के लिये खर्च भी करता है परन्तु ऐसे दान संसार परिभ्रमण के कारण हैं। कंचन और कामिनी मानव को संसार में फंसाती है। यह सर्व मान्य है, फिर ऐसे फंसाने वाले कंचन-परिग्रह के दान से धर्म कैसा ?

लाखां कोड़ाँ खरचिया, जीव अनन्ती वार ।
पिण दान सुपात्र दोहिलो, ते जीव तणों आधार ॥

प्रत्येक जीव ने अनन्ती वार जन्म धारण किया और इस लम्बे परिभ्रमण काल में इसने लाखों करोड़ों का दान भी कर डाला, लेकिन सुपात्र दान तो मुश्किल ही है। वास्तव में सुपात्र दान ही जीव का आधार है। मोक्ष की साधना की ओर उचित कदम है।

ए व्रत निपावा कारणै, उधम करै नित नेम ।
भावै साधाँ री भावना, हाथें दान देवा सुं प्रेम ॥

आलस छोड़णूं किण विधै, किण विध देणूं दान ।
उद्यम करणों किण विधै, ते सुणो सूरत दे कान ॥

इस दिशा में श्रावक को उद्यम करना चाहिये। नियम लेना चाहिये। साधु संयोग होने पर व्रत निपजाने की यथासाध्य शुद्ध चेष्टा करनी चाहिये। अपने हाथ से शुद्ध दान देने की भावना रखनी चाहिये। रुचि रखनी चाहिये। किस प्रकार आलस्य प्रमाद छोड़ना, किस प्रकार दान देना, किस प्रकार दान देने के लिये उद्यत रहना—इन सब बातों पर पूरा ध्यान देना चाहिये।

साधु सम्पूर्ण रूप से कंचन और कामिनी का त्यागी है। वह संसार को सुन्दर रास्ता बताता है। मानव-जीवन को सुधारने के, सफल बनाने के सुन्दर उपाय बताता है। वह मानव कल्याण के लिये अपने जीवन को हर खतरे में डाल देता है।

सन्त कष्ट सह आपु ही सुखि राखै जु समीप ।
आप जरै तऊ और कौं करै उजेरो दीप ॥

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह का उपासक आदर्श साधु बदले में लेता क्या है? सिर्फ खाने के लिये रूखी सूखी रोटी और पहनने के लिये मामूली कपड़े। और वह भी यदि कल्पनीय हो। साधु की ऐसी आदर्श भिक्षा गृहस्थ के लिये तनिक भी भार स्वरूप नहीं। उसे साधु के लिये न रोटी बनानी हैं और न कपड़ा खरीदना है। भौंरा फूल से रस लेता

है परन्तु फूल को कोई तकलीफ नहीं देता। साधु भी गृहस्थ से भिक्षा लेता है परन्तु गृहस्थ के लिये वह भार नहीं। उसे कोई तकलीफ नहीं। * साधु भिक्षा वृत्ति का यही तो रहस्य है।

स्वामी भिक्षु के जमाने में दान के प्रश्न को लेकर धर्म के ठेकेदारों ने अंधेर मचा दिया। इस अंधेर को हटाने के लिये स्वामी भिक्षु, हाथ में प्रकाश लेकर आगे वढ़े। दान की असलियत वतायी। स्वार्थियों के स्वार्थ में जवर्दस्त धक्का लगा। उनकी रोजी मारी गयी। उन्होंने हर सम्भव तरीके से स्वामी भिक्षु का विरोध किया। परन्तु भूखे और प्यासे रह कर श्मशान की छतरियों में आश्रय लेकर वे आगे वढ़ते ही गये। महा मानव की गति को रोक ही कौन सकता है ?

श्रावक के वारहवें व्रत में श्रमण निग्रन्थ अणगार साधु को दान देने का विधान है। सच पूछा जाय, तो दान का अधिकारी ही साधु है। पंच महाव्रत धारी मुनि है। साधु को जिन जिन आवश्यक वस्तुओं की जरूरत होती है, उन्हीं को लक्ष्य में रख कर दान सामग्री के चौदह भाग किये गये हैं। इन चौदह विभागों में रुपये पैसे, धन दौलत, गाय भैंस आदि दान का तो कहीं उल्लेख नहीं। साधु को धन की जरूरत भी तो नहीं।

---

* यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयं।
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे॥

धम्मपद ४—६

साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाँहि ।
धन का भूखा जो फिरे, सो तो साधू नाँहि ॥

बारमूं व्रत छै श्रावक तणूं, तिण रो सांभलज्यो विस्तार जी।
श्रमण निग्रन्थ अणगार ने, देवो चिहूं विध शुद्ध आहार जी॥
(इम व्रत निपजावे बारमूं—आंकड़ी)

श्रमण निग्रन्थ शुद्ध साधु को हर प्रकार से शुद्ध दान देना ही श्रावक के बारहवें व्रत का मुख्य उद्देश्य है। दान के चौदह विभाग क्या हैं—इसको कवि ने संक्षेप में बताया है—

बले वस्त्र पात्र ने काम्बलो, पाय पूछणूं देवै एम जी।
पीढ़ फलग सेझा ने सांथारो, देवै औषध भेषज जेम जी॥
इत्यादिक वस्तु कल्पै तिका, साधाँ ने दीधाँ हर्षित होय जी।
जाणै धन्य दीहाड़ो धन्य घड़ी, बारमूं व्रत नीपनूं मोय जी॥

चौदह प्रकार का दान :—

(१) अशन—खाये जाने वाले पदार्थ, जिन पदार्थों को खाकर भूख मिटायी जा सके। जैसे—रोटी आदि।
(२) पान —पेय अर्थात् पीये जाने वाले पदार्थ। ये मुख्यतया प्यास बुझाने के काम आते हैं। जैसे—जल, दूध छाछ आदि।
(३) खादिम—जीभ के स्वाद के लिये खाये जाने वाले पदार्थ—फल मेवा आदि।

(४) स्वादिम—मुंह की सफाई के लिये मुंह में रखे जाने वाले पदार्थ। जैसे - लौंग इलायची सुपारी आदि।

(५) वस्त्र —कपड़ा जो पहिनने बांधने आदिके काम आवे।

(६) पात्र —लकड़ी व काठ के बने वर्तन—पातरा टोपसी आदि।

(७) कम्बल—ऊनी वस्त्र जो शीत से बचने के लिये काम में लाया जावे।

(८) पाद पोंछन—जो जीव हिंसा से बचने के लिये पूंजने में काम आवे। जैसे—ओघा, पूंजणी आदि।

(९) पीढ —बैठने के काम आने वाले पदार्थ—पाट, बाजोट, चौकी आदि।

(१०) फलक—सोने के काम में आने वाले पदार्थ—लम्बे पाटे तख्ते आदि।

(११) शय्या—ठहरने के लिये मकान आदि।

(१२) संस्तारक—बिछाने के लिये सूखा घास आदि।

(१३) औषध—दवा। एक ही चीज को कूट पीस कर बनायी हुई औषधि।

(१४) भेषज—अनेक चीजों के मिश्रण से बनी हुई दवा औषधि।

उपरोक्त चौदह प्रकार की वस्तुयें साधु ग्रहण कर सकता है। रुपये पैसे धन दौलत से साधु दूर रहता है। इन में प्रथम आठ तो ऐसे पदार्थ हैं जिनको एक बार ग्रहण करने के बाद साधु किसी भी हालत में वापिस नहीं लौटा सकता। अन्त के जो छव पदार्थ

हैं, उनको साधु अपने काम में लेकर पुनः असली मालिक को लौटा सकता है।

साधु के लिये सिर्फ उपरोक्त पदार्थ ही कल्पनीय है। इन को भी अगर कोई श्रावक साधु के लिये बनावें, बनवावें, तो वह भी अकल्पनीय हो जाता है। साधु ऐसी वस्तु को कदापि स्वीकार नहीं कर सकता।

शुद्ध साधु को शुद्ध मन से शुद्ध दान देना ही लाभ का कारण है। यदि इन तीनों में एक भी अशुद्ध हो, तो दान का महातम्य चला जाता है। इस प्रकार के आदर्श दान से श्रावक को बड़ी खुशी होती है। वह अपने मन में कहता है—आज का दिन मेरे लिये धन्य है। यह शुभ घड़ी मेरे लिये धन्य है। आज मुझे कितना शुभ अवसर मिला ? बारहवां व्रत निपजा।

करै चिन्तवनां साधाँ तणीं, घर में देखै शुद्ध आहार जी।
वलि भाणै बैठ भावै भावना, व्रत धारी रो यो आचार जी॥
साधू आय ऊभा देखै आंगणै, विकसै सघली रोम रोम जी।
अशणादिक देवै भाव सूं, घणुं मन रलियायत थाय जी॥

गृहस्थ अपने लिये भोजन बनाता ही है। घर में ऐसे भोजन का संयोग देख कर श्रावक मन में चिन्तवन करता है—मैं तो रोज ही ऐसे भोजन को करता हूं। आज यदि मेरे घर पर कोई सन्त महात्मा पधार कर इस भोजन को ग्रहण करे, तो मैं अपना अहोभाग्य समझूंगा। परोसी हुई थाली पर बैठ कर इस प्रकार

से साधु की भावना भाना उत्कृष्ट फल का दायक है। यदि संयोग वश वह अपने आंगन में शुद्ध साधु को खड़ा देखे, तो उसका रोम रोम विकसित हो जाता है। वह शुद्ध भावना से आनन्द और हर्ष सहित उस साधु को अशन पान आदि का शुद्ध दान देकर अपने को परम सौभाग्यशाली समझता है। साधु का संयोग अच्छे भाग्य से ही मिला करता है।

साधु भिक्षा ग्रहण करते समय सचित्त अचित्त का बड़ा ध्यान रखते हैं। शुद्ध एवं कल्पनीय वस्तु भी अगर सचित्त से छू जाये, तो उसे साधु ग्रहण नहीं करता। साधु जीव हिंसा से बड़ा भय खाता है। छोटे से छोटे स्थावर प्राणी को जरा-सा भी कष्ट हो, साधु यह नहीं चाहता। एक समझदार श्रावक इन बातों की जानकारी रखता है। इसी की ओर कवि ने संक्षेप में संकेत किया है।

काचा पाणी सूं थाली धोवे नहीं,
वले सचित्त न राखै पास जी।
संघटै नहिं वैसै सचित्त रै,
व्रत निपजावण रो हुलास जी॥
कांइ काम पड़ै आय सचित्त रो,
जब पिण समता राखै विख्यात जी।

दिश अवलोक्याँ विण साधु री,
नहिं घालै सचित्त में हाथ जी ॥

एक सु श्रावक भोजन शुरू करते समय सचित्त कच्चे पानी से थाली को नहीं धोता। सचित्त वस्तु को अपने पास भी नहीं रहने देता। सचित्त का संघटा-स्पर्श भी नहीं करता। कौन जानता है उस अवसर पर साधु का पधारना हो जाय और वह दान के लाभ से वंचित रह जाय ? उसके मन में तो इस बारहवें व्रत को निपजाने की बड़ी उत्सुकता बनी रहती है। वह हर अवसर से लाभ उठाना चाहता है। इस पर भी यदि दुर्भाग्य वश सचित्त के स्पर्श का काम पड़ जाय और साधु का पधारना हो जाय, तो वह अपना दुर्भाग्य समझ कर समभाव धारण करता है। शान्ति रखता है। अतः वह साधु के पधारने की दिशा को देखे बिना यथासक्य सचित्त का स्पर्श नहीं किया करता।

कल्पै ते वस्तु पड़ी असूझती, कदे सहजैं सूझती होय जी।
तो खप करी राखैं सूझती, सचित्त ऊपर न मेलै कोय जी ॥

यदि कोई कल्पनीय वस्तु सचित्त के साथ संलग्न हो, तो वह दान के निमित्त उनको अलग तो नहीं करता परन्तु यदि संयोग वश स्वभाविक रूप से उनका अलगाव हो जाय, तो वह कल्पनीय वस्तु को यतना सहित अलग रखता है, पुनः उस वस्तु के

साथ सचित्त का सम्पर्क नहीं होने देता ऐसी वस्तु का दान शुद्ध है। कल्याण कारी है।

जे जे द्रव्य जाणै छै सूझता, कल्पै ते साधू नें जाण जी।
तिणरी भावै निरन्तर भावना, एहवा श्रावक चतुर सुजाणजी॥

अपने घर में जो जो द्रव्य अचित्त है, साधु के लिये कल्पनीय है, ग्रहण योग्य है—उन द्रव्यों के लिये एक चतुर श्रावक नित्य साधु की भावना भाता है। हर समय शुद्ध दान की चिन्तवना करता है

चित्त वित्त और पात्र—इन तीन वस्तुओं के शुद्ध संयोग से शुद्ध दान हुआ करता है। इन तीनों में जहां एक की भी गड़बड़ी हो जाती है, तो वह दान अशुद्ध हो जाता है। चित्त—देने वाले का मन। वित्त—दान की सामग्री। पात्र—दान लेने वाला पात्र।

चित्त वित्त पात्र तीनूं तणूं, कदे आय मिलै संयोग जी।
जब अडलक दान दे हाथ सूं, पछै न करै पिछतावो सोग जी॥

जब कभी चित्त वित्त एवं पात्र का शुभ संयोग मिलता है, तब एक सु श्रावक आडे हाथ मुक्त हस्त एवं खुले दिल से दान देता है। अपने मन की निकाल लेता है। तीनों का शुद्ध संयोग फिर कसर क्यों? दान देकर वह किसी बात का पछतावा नहीं करता।

उस जमाने में जैन साधु मकान के बन्द दरवाजों को खोल कर भी भिक्षा ले लिया-करते थे, परन्तु जैन सूत्रों के अनुसार ऐसा

करना निषेध है। स्वामी भिक्षु ने—साधु किवाड़ खोल सकता है या नहीं—इस प्रश्न पर उचित प्रकाश डाला है। साधु स्वयं तो किसी मकान का किवाड़ खोल ही नहीं सकता परन्तु गृहस्थ भी यदि भिक्षा के निमित्त आये हुये साधु के लिये वन्द किवाड़ को खोल दे तो साधु उस घर से भिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में उववाई और सुयगडाअंग सूत्र में काफी प्रकाश डाला गया है।

जे जे व्रतधारी श्रावक हुवै, ते जीमताँ न जड़ै किवाड़जी।
उववाई ने सुयगडायंग में, त्याराँ चाल्या उघाड़ा द्वार जी॥
सहिजै उघाड़ा हुवै वारणा, जव राखै उघाड़ा ताम जी।
नहिं जड़ै उघाड़ा वारणा, साधाँ ने दान देवा काम जी।

समझदार श्रावक भोजन करते समय अपने मकान व कमरे आदि के दरवाजे वन्द नहीं रखता। किवाड़ वन्द रहने से भिक्षा के लिये आया हुआ साधु उस मकान में कैसे प्रवेश करे? वह न तो स्वयं किवाड़ खोल सकता है। और न दूसरों से ही खुलवा सकता है। अतः जो किवाड़ स्वभाविक रूप से खुल जाता है उसे वह खुला ही रख छोड़ता है। वन्द नहीं करता। अतः साधु प्रवेश में कोई रुकावट नहीं रहती। उववाई एवं सुयगडायंग सूत्र में इन सब वातों का उल्लेख मिलता है।

और भेष उघाड़ मांहि धसै,
साधु न आवै खोल किवाड़ जी।

तिण सूं व्रतधारी श्रावक हुवै,
ते तो राखै उघाड़ा द्वार जी ॥

कई साधु भी किवाड़ को खोल कर भिक्षा ले लिया करते हैं परन्तु यह जैन आदर्श नहीं। शुद्ध साधु कभी किवाड़ खोलता नहीं। यही कारण है कि गौचरी के समय श्रावक अपने मकान व कमरे का दरवाजा खुला ही रख छोड़ता है ताकि बारहवां व्रत निपज सके। शुद्ध साधु को शुद्ध दान दिया जा सके।

सिर्फ दरवाजा खुला रख कर ही श्रावक निश्चित नहीं हो जाता, वह शुद्ध साधु की इन्तजारी भी करता है। बाट जोता है। कौन जानता है साधु कब पधार जाय ?

सहजे आया छै घर आपणै,
नीपनूं देखि शुद्ध आहार जी।
जब काल जाणै गौचरी तणुं,
तो वो बाट जोवे तिण वार जी ॥

श्रावक जब देख लेता है कि मेरे घर में शुद्ध आहार का संयोग है और मुनिराज के गौचरी भिक्षा का भी यही काल है, तो वह उनके पधारने की बाट जोता है। इन्तजार करता है। भावना भाता है। अपने मकान के दरवाजों को खुला रखता है, ताकि मुनि सरलता से पधार कर भिक्षा ग्रहण कर सके।

ज्याँरे हूंस घणी छै माँहिली,
पोतै स्वहाथ देवा दान जी।
त्याँरे हृदय में साधु वस रह्या,
ते किण विध मूंकै ध्यान जी॥
अशणादिक थाली में लीधाँ पछै,
तुरत घालै नहिं मुख म्हांय जी।
दिशी अवलोकै भावै भावना,
जाणै साधु पधारै आय जी॥

जिनके मन में सुपात्र दान देने की हूंस है, जिनके हृदय में हर वक्त साधु बस रहे हैं, जो अपने हाथ से दान देने को हर समय उत्सुक हैं वे भोजन के समय साधु का ध्यान कैसे छोड़ दें? भोजन के लिये सामने थाली रखी रहने पर भी वे अन्न मुख में नहीं डालते। वे भाणे पर बैठे हैं। इधर उधर देखते हुये साधु की भावना भा रहे हैं। वे इस इन्तजारी में गरमा गरम भोजन को ठंढ़ा कर रहे हैं कि कब साधु पधारें और हमारा शुद्ध दान ग्रहण करें।

इण विधि भावना भावतां थकां,
मिलै सतगुरु नीं जोगवाई जी।

तो उ दान दे उलट परिणाम सूं,
चूकै नहिं अवसर पाई जी ॥
शक्ति सारु दान दे साधु ने,
पिण न करै कूड़ी मनवार जी ।
ठाली बादल ज्यूं गाजै नहीं,
सांचै मन बोलै शुद्ध विचार जी ॥

इस प्रकार की भावना करते हुये यदि सत्गुरु का संयोग मिल जावे तो वह इस अवसर से चूकता नहीं। वह चढ़ते परिणाम से दान देता है। थोथे बादल की तरह वह गरजता नहीं। झूठी मनुहार करता नहीं। सच्चे मन से शुद्ध हृदय से अपनी शक्ति अनुसार वह दान देता है।

अडलक दान देई साधु ने, पोमावै नहिं औराँ पास जी।
गिरवो गम्भीर रहै सदा, त्याँने वीर वखाण्या तासजी ॥
अडलक दान देणु पातरै, नहिं जिण तिण ने आसान जी।
दान देवारो ध्यान रहै सदा, एहवा विरला छै बुद्धिमान जी ॥
आछी वस्तु गोप राखै नहीं, न आणै लोलपणों ने लोभ जी।
गमती वस्तु देवै साधु ने, पिण कूड़ी न साधै सोभ जी ॥

साधु को मुक्त हस्त से दान देने पर भी वह औरों के सामने अहंकार नहीं करता। वह हमेशा गिरि-पर्वत के समान गम्भीर

रहता है। खुले दिल से दान देना हरेक के लिये आसान नहीं। हर समय उदार चित्त से दान देने की भावना रखने वाले बुद्धिमान श्रावक भी विरले ही मिलेंगे। ऐसे श्रावक अच्छी वस्तु को छिपाकर नहीं रखते। उनमें लोभ लालच की भावना नहीं रहती। कल्पनीय वस्तु वे साधु को देते हैं। झूठी शोभा वे साधते नहीं। यह वस्तु लो वह वस्तु लो—ऐसी झूठी बातें कहने की उनकी आदत नहीं है। जो वस्तु घर में है, कल्पनीय है, देने की मनसा है सिर्फ उसी वस्तु की भावना वे भाते हैं।

गृहस्थ खाता है, पीता है, पहनता है दुनियाँ के सारे काम करता है। ये सारे काम अव्रत हैं। कर्मबंध के कारण हैं। संसार परिभ्रमण बढ़ाने के हेतु हैं। परन्तु इनके बिना साधारण गृहस्थ का काम चलता नहीं। अतः उसे करना ही पड़ता है। समर्थ गृहस्थ संकट में पड़े दूसरे मानव की रुपये पैसे कपड़े लत्ते घर मकान भोजन पानी आदि से सहायता भी करता है। करोड़ों रुपये चन्दे के रूप में दान में लगा देता है। आखिर मानव-समाज के सारे काम व्यवस्थित रूप से चलाने वाले समर्थ लोग ही तो हैं। यदि सारे समाज में गड़बड़ी फैल जाय, तो सबसे ज्यादा नुकसान भी समर्थ मानव का ही होगा। अतः स्वार्थ भावना से कहो, यश-कीर्त्ति के लिये कहो, व दानवीर बनने के लिये कहो, साधारण जनता में अपने धन का रौब जमाने के लिये कहो—समर्थ मानव अपने धन को दान में लगाता है। धर्म के ठेकेदार दलाल भी ऐसे दान में से कुछ अंश पा ही जाते हैं। अतः वे ऐसे दान को

धर्म का ज़ामा पहना कर उसे धार्मिक क्रिया में शुमार कर देते हैं। ऐसे दान से बड़ा धर्म होता है बड़ा पुण्य होता है—ऐसी घोषणा कर देते हैं। न्याय की कसौटी पर जांचने से ऐसा दान धर्म नहीं, कर्म बंध का कारण ही ठहरेगा। दान की सफलता तभी है, जब वह किसी कंचन और कामिनी के त्यागी पंच महाव्रत धारी विरक्त उदासीन मानव को शुद्ध रूप से और शुद्ध हृदय से दिया जावे। इसी रहस्य को स्वामी जी ने समझाने का प्रयत्न किया है।

आप खावै ते अव्रत में गिणै, तिणसूं बंधता जाणै पाप कर्म जी।
दान सुपात्र ने दियॉ जाणै, संवर निर्जरा धर्म जी ॥

श्रावक का खाना पीना आदि अव्रत में है। कर्म बंध का हेतु है। परन्तु सुपात्र दान से संवर और निर्जरा होती है। अतः सुपात्र दान धार्मिक क्रिया है। श्रावक जितने अंश में किसी वस्तु का त्याग करता है, उतना ही उसका व्रत है, जो त्याग नहीं वह अव्रत है। अव्रत के भीतर की वस्तु साधु को दी गयी, तो उससे अव्रत रुका। अव्रत रुकने से संवर धर्म की प्राप्ति हुयी और दान देने की भावना तथा काया के व्यापार से निर्जरा हुयी। इस प्रकार हम देखते हैं सुपात्र दान एक परम त्यागी पंच महाव्रत धारी मुनि को दिया जाता है। अतः यह परम लाभ का कारण बन जाता है।

सुपात्र दान देवै तिण अवसरे,
लेखो न करै मन म्हांय जी।
लेखो कियां सूं तो लोभ उपजै,
अडलक दान दियो नहिं जाय जी॥

श्रावक सुपात्र दान देते समय, अपनी वस्तु की कीमत आदि का हिसाब नहीं लगाता। यदि ऐसा करे, तो वह उदार दिल से दान न दे सकेगा। उसका मन लोभ में चला जावेगा और वह दान देने से रुक जावेगा।

साधु भोजन करता है क्यों? भोजन विना जीवन टिकता नहीं। स्वास्थ्य कायम रखने के लिये या स्वाद पाने के लिये वह भोजन नहीं करता। उसके लिये मिठाई सूखी रोटी एक समान है। उसे जैसे तैसे सिर्फ पेट ही तो भरना है। घर में जो भी रूखी सूखी रोटी हो, उस को दे कर भी श्रावक सुपात्र-दान का लाभ उठा सकता है।

लाडू धोवणादिक वहिरावतां,
राखै एकधारा परिणाम जी।
व्रतधारी आघो काढ़ै नहीं,
रूड़ी जोगवाई पाम जी॥

श्रावक को जव सुपात्र दान का शुभ संयोग मिलता है, तो वह लड्डू एवं धोवण के पानी का दान देते समय एक जैसी भावना

रखता है। लड्डू देते समय उसकी भावना में चढ़ाव हो और धोवण का पानी देते समय उतार हो—यह उचित नहीं। दोनों प्रकार की चीजें वहिराते समय उसकी भावना एक जैसी रहती है। साधु के लिये लड्डू व धोवण एक जैसा है, गृहस्थ के लिये भी सुपात्र दान की अपेक्षा से दोनों एक हैं। दान का लाभ भावना में है, वस्तु में नहीं। वस्तु तो सिर्फ निमित्त मात्र है। अतः साधु चाहे अच्छी से अच्छी चीज वहिरे चाहे साधारण से साधारण वस्तु, सुश्रावक दोनों में एक जैसी उदार भावना रखता है। शुभ संयोग का श्रावक हमेशा फायदा उठाता है। साधु के पधारने के समय घर में जैसा भी वस्तुओं का संयोग हो, जो भी रूखा सूखा भोजन घर में तैयार हो, उसी का दान देकर फायदा उठाना चाहिये। रूखी सूखी रोटी का क्या दान दूं, ऐसा विचार कर श्रावक साधु को खाली हाथ नहीं लौटने देता। फिर न जाने कब मौका मिले?

साधु का शुभ संयोग मिलने पर यदि किसी कारण से श्रावक सुपात्र दान का लाभ न उठा सके, तो उसे बड़ा पश्चाताप होता है। ऐसा पश्चाताप भी लाभ का कारण है।

कदा वहरियां विन पाछा फिरै,
काई आय पड्याँ अन्तराय जी।
जब पछतावो कियां पुन्य बन्धे,
वलि कर्म निर्जरा थाय जी॥

पिछतावो कियाँ ही पुन्य वन्धै,
तो वहिरायां हुवै लाभ अत्यन्त जी।
उत्कृष्टो तीर्थंकर पद लहै,
इम भाप गया भगवन्त जी॥

श्रावक के घर में साधु पधारे। किसी कारण वश भिक्षा ग्रहण किये विना ही वापिस लौट गये। श्रावक को इससे वड़ा आघात लगता है। वह पश्चाताप करता है, सोचता है—मैं कितना अभागा हूं। महात्मा मेरे घर में भिक्षा के लिये पधारे और मैं वारवां व्रत भी न निपजा सका। अन्तराय कर्म बाधक वन वैठा। इस प्रकार का पश्चाताप भी पुण्य वंध का कारण वन जाता है। कर्म निर्जरा भी होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जव सिर्फ पश्चाताप ही से इतना लाभ होता है तव वहि-राने से भिक्षा देने से तो अत्यन्त लाभ होगा ही। स्वयं भगवान् महावीर ने फरमाया है कि शुद्ध दान से उत्कृष्ट रूप में तीर्थङ्कर गोत्र तक वंध सकता है।

शुद्ध दान का वड़ा महत्त्व है। दान देने में बड़ी सावधानी रखनी चाहिये, अन्यथा लाभ के वदले दान भी कर्म वंध का कारण वन जाता है।

सूझती वस्तु न करै असूझती,
ते तो दान देवारे काम जी।

असूझती न करें सूझती,
बहिरावण रा आण परिणाम जी ॥
जाणि ने न देवें असूझतो,
करड़ो पिण वणियां काम जी ।
निर्दोष दीधी वस्तु हाथ सूं,
पाछी लेवारी नहिं हाम जी ॥

श्रावक दान देते समय बड़ा उपयोग रखता है। जरा-सी गफलत से भीषण अनर्थ हो जाया करता है। साधु को आते देख कर वह सूझती* वस्तु को असूझती‡ और असूझती को सूझती करने का प्रयत्न नहीं करता। जो वस्तु उस मौके पर स्वतः ही सूझती रखी हो, उसी के दान से वह बारहवां व्रत निपजा लेता है। कितना ऊंचा आदर्श है। इतना ही नहीं, जान बूझ कर वह असूझती वस्तु का दान कभी न देगा। वह हर समय शुद्ध एवं निर्दोष सूझती वस्तु का ही दान देकर लाभ उठाता है। दान में दी हुई वस्तु को वापिस लेने की वह कभी कामना नहीं करता। श्रावक इन सब बातों पर पूरा ध्यान रखता है। जिस वस्तु की शुद्धता व निर्दोषता में उसे जरा-सा भी सन्देह हो जाता है वह उसका कभी दान नहीं करता।

---

*सूझती—कल्पनीय। ग्रहण करने योग्य। शुद्ध। दोष रहित। अचित्त

‡असूझती—अकल्पनीय।

दान देवण देवावण कारणै, कदे अतिक्रमे नहीं काल जी ।
मच्छर मान वड़ाई छोड़ ने, दान देवै दूपण टाल जी ॥
आपणी वस्तु कहै पार की दान देवा न देवा काम जी ।
धर्म ठिकाणे झूठ बोलै नहिं, मूंडै कोरी न राखै माम जी ॥

श्रावक दान देने या दिलाने के निमित्त अपने भोजन बनाने के समय का अतिक्रमण नहीं करता। रसोई बनाने के वक्त को आगा पाछा नहीं करता। वह अपने मान अहंकार मत्सर भाव आदि को छोड़ कर शुद्ध निर्दोप वस्तु का दान देता है। दान देने के निमित्त वह अपनी वस्तु को दूसरे की बता कर साधु को भ्रम में नहीं डालता। धर्म स्थान व धर्म कार्य में वह मिथ्या बात नहीं बोलता और अपनी जबान से अहंकार भाव भी प्रकट नहीं करता।

बारहवें व्रत की विशेपता बताते हुये कवि कहता है—

इग्यारै व्रत तो त्याग कियां हुवै, बारमूं व्रत दीधां होय जी ।
तिण सूं कठिन काम इण व्रत रो, विरला निपजावे कोय जी ॥

इग्यारह व्रत तो त्याग करने से होते हैं परन्तु बारहवां व्रत तो सुपात्र दान देने से होता है। अतः बारहवां व्रत निपजाना अपने हाथ में नहीं। यह बड़ा कठिन है इसे विरले ही निपजा सकते हैं।

सुपात्र दान धार्मिक क्रिया क्यों ? इस प्रश्न का स्पष्टीकरण भी स्वामी जी के शब्दों में देखिये—

सुपात्र दान देवै तेह ने,
निपजै तीन बोल अमोल जी।
संवर निरजरा हुवै पुन्य बंधै,
त्यारों अर्थ सुणो दिल खोल जी॥
जे जे वस्तु वहराया साधु ने,
तिण द्रव्यरी अव्रत न रही कांय जी।
ते व्रत संवर हुवै इण विधै,
शुभ जोगां से निरजरा थाय जी॥
शुभ जोग वर्त्यां हुवै निर्जरा,
शुभ जोगां से पुन्य वन्ध जात जी।
पुन्य सहजै हुवै निर्जरा कियाँ,
जिम खाखलो हुवै गेहूँ रे साथ जी॥
उत्कृष्टै परिणामां दान दे,
तो उत्कृष्टी टलै कर्म छोत जी।
उत्कृष्टा बंधै पुन्य तेह ने,
वलि बंधै तीर्थंकर गोत जी॥

सुपात्र दान से तीन अमूल्य वस्तुओं की प्राप्ति होती है—संवर, निर्जरा और पुण्य। शुद्ध साधु को एक वस्तु वहराई गयी, दान में दी गयी। फल स्वरूप उस वस्तु का अव्रत न रहा। अव्रत के टल जाने से व्रत संवर की प्राप्ति हुई। यह हुआ संवर धर्म। दान देते समय मानव के शुभ अध्यवसाय रहते हैं। शुभ योग में प्रवृत्ति होती है। शुभ योग से निर्जरा की प्राप्ति होती है। इसके साथ साथ स्वतः ही पुण्य का वन्ध भी होगा ही। जहां जहां शुभ योग है वहां पुण्य स्वतः ही वंध जाता है। मानव खेती करता है गेहूं के लिये, खाखले के लिये नहीं। फिर भी गेहूं के साथ साथ खाखला भी स्वतः ही हो जाता है। इसी प्रकार पुण्य वंध के लिये कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता है। आखिरकार पुण्य भी तो एक प्रकार का वन्धन ही है। पाप लोहे की वेड़ी है तो पुण्य सोने की। मुमुक्षु तो सब प्रकार के बन्धनों से छुटकारा चाहता है। देव भव में नाना प्रकार के पौद्गलिक सुख मिलते हैं फिर भी मुमुक्षु तो उनकी कामना नहीं करता। उदासीन मानव सारे काम संवर व निर्जरा के लिये करता है। पुण्य तो स्वतः ही बीच में आकर धंस जाता है।

यदि कोई मानव उत्कृष्ट भावना से उत्कृष्ट परिणाम से सुपात्र दान देता है, तो उसका कर्म-क्षय (निर्जरा) भी उत्कृष्ट रूप से ही होता है और पुण्य भी उत्कृष्ट ही वंधता है। ऐसे श्रेष्ठ सुपात्र दान से तीर्थङ्कर गोत्र तक वंध जाया करता है ऐसा सूत्रों में उल्लेख है।

शुभ दान का फल शुभ रूप में मिलेगा ही। इस लोक में मिले या परलोक में।

जो उण रै पुन्य उदय हुवै इण भवे,
दुःख दारिद्र दूर पलाय जी।
ऋद्धि सम्पदा पामें अति घणी,
सुख साता में दिन जाय जी॥
जो उदय न आवै इण भवे,
तो पर भव में शंका मत जाण जी।
ऊंच गोत्रादिक सुख भोगवै,
इण दान तणा फल जाण जी॥

सुपात्र दान से पुण्य, शुभ कर्म का बंध होता है। यह शुभ कर्म यदि इसी जन्म में फल दे, उदय में आवे, तो उस मानव का दुःख दारिद्र दूर भाग जाता है। उसे ऋद्धि सम्पदा ऐश्वर्य यश कीर्त्ति पुत्र पौत्र स्वस्थ शरीर आदि सभी शुभ संयोग प्राप्त हो जाया करते हैं। वह अपने जीवन में आनन्द की वंशी बजाता है। यदि वे पुण्य व शुभ कर्म इस जन्म में फल न दें, उदय में न आवें, तो परलोक में तो उनका शुभ फल मिलेगा ही। इसमें सन्देह करने की कोई गुंजाइश नहीं। यदि क्रिया है, तो प्रतिक्रिया भी

जरूर है*। शुद्ध दान से बंधा हुआ पुण्य, निश्चय ही परलोक में ऊंच गोत्र आदि का सुख भोग करावेगा ही। पुण्य बंध का शुभ फल पौद्गलिक सुख के रूप में जरूर मिलेगा।

पुण्य से शुभ फल की प्राप्ति होती है। पौद्गलिक सुख मिलता है। धन, यौवन, पुत्र, स्त्री, जमीन ज्यादाद आदि सभी संयोग मिलते हैं। स्वर्ग सुख भी मिल जाया करता है परन्तु जैन दर्शन कहता है—ऐसे सुखों की कामना भी मत करो। ये सुख क्षणिक हैं। थोड़ी देर टिकने वाले हैं। तुम्हारा चरम लक्ष्य पौद्गलिक सुख नहीं है, तुम्हारा लक्ष्य है—मुक्ति का परम आनन्द। ऐसा आनन्द जो एक वार हाथ लगने पर कभी जाने वाला नहीं। ऐसा परमानन्द प्राप्त करने का साधन है संवर और निर्जरा।

इन दोनों को साधना करते समय पुण्य तो अपने आप ही बंध जाता है। पुण्य कर्म है अतः इसकी कामना न करनी चाहिये।

पुन्य री वन्छा करि देवै नहीं,
समदृष्टि साधां ने दान जी।
देवै संवर निरजरा कारणै,
पुन्य तो सहजे लागै आसान जी॥

*Every action has its reaction.

समदृष्टि श्रावक पुण्य की कामना से साधु को दान नहीं देता। वह तो दान संवर और निर्जरा के हेतु देता है। पुण्य तो इस काम से स्वतः ही हो जाता है। पुण्य शुभ कर्म का बंध है। जैन-दृष्टि में पुद्गल जन्य सुख व दुःख दोनों एक ही श्रेणी में माने गये हैं। पुण्य सोने की जंजीर है, पाप लोहे की। है दोनों बन्धन।

अब कवि अव्रत दान के सम्बन्ध में अपनी लेखनी चलाता है—

अव्रत में देता थकां,
पड़ै श्रावक रे मन धरक जी।
ज्यांने दान दियाँ व्रत नीपजै,
त्याँने दीठाँ ही पामे हरख जी॥
काम पड़ै अव्रत में दान रो,
जब दे तो ही शरमा शरम जी।
पछै करै पिछतावो तेहनूं,
कांइक ढीला पड़ै कर्म जी॥
अव्रत में दान दे तेहनूं,
टालण रो करे उपाय जी।
जाणें कर्म बंध छै म्हांय रै,
भौने भोगवतां दुःखदाय जी॥

अव्रत में दान देतां थकां,
बंधै आठूं ही पाप कर्म जी।
सुपात्र ने दान दियां थकां,
म्हारै संवर निर्जरा धर्म जी॥
अव्रत में दान देवा तणूं,
कोई त्याग करै मन शुद्ध जी।
तिण रो पाप निरन्तर टालियो,
तिणरी वीर वखाणी वुद्धि जी॥

श्रावक व्रती भी है और अव्रती भी। श्रावक ने खाने पीने पहनने आदि में काम आने वाली अनेक वस्तुओं का त्याग कर रखा है, अतः वह व्रती है। परन्तु गृहस्थ होने के नाते संसार में रहने के नाते अनेक वस्तुयें काम में लाता है, इनके बिना उसका काम चलता नहीं। अतः वह अव्रती है। अव्रत में जितनी वस्तुयें हैं उनको काम में लाने से कर्म बंधते हैं।' ऐसे आगार में रखी वस्तुयें सावद्य हैं, चाहे श्रावक उनको अपने निजी काम में लावे चाहे दूसरों को दे।

श्रावक ने धन कमाया। परिग्रह संचय किया। यह सभी स्वीकार करते हैं कि परिग्रह संचय करना व संचित परिग्रह को काम में लाना सावद्य है।' ऐसा धन यदि हम दूसरों को दान दें और ऐसे मानवों को दें जो अव्रती हैं, तो ऐसा करना भी सावद्य

ही कहा जावेगा। ऐसे दान का समर्थन करना भी सावद्य ही कहा जावेगा। यदि अव्रती मानव को परिग्रह देने से धर्म होता, संसार का कल्याण या हित होता, तो आज Beggars Act बनाने की नौबत न आती। "दानवीरों" को या दानवीरों के दलालों को शायद स्वामी जी के ये शब्द बाण की तरह चुभते होंगे—"अव्रत में दान देतां थकां, बंधै आठूं हीं कर्म जी"—परन्तु ठंढे दिल से विचारने से स्वामी जी का कथन सत्य मालूम होगा।

श्रावक कुवा अस्पताल धर्मशाला आदि स्वयं बनाता है, इनमें चन्दा भी देता है। अकाल के समय अन्न, धान व अन्यान्य खाद्य वस्तुओं का मुफ्त में वितरण भी करवाता है। गरीब व भिखमंगों को रोटी कपड़ा भी देता है। संसार में रहने के नाते इस प्रकार उसे बहुत-सी रकम दान में लगानी पड़ती है। परन्तु वह इन दानों को सिर्फ सामाजिक कर्तव्य ही मानता है। ऐसे दान को वह मोक्ष के साधन का हेतु कदापि नहीं मानता। वह यह जानता है कि इस प्रकार का दान कर्म बंध का कारण है। आठों ही प्रकार के कर्म इससे बंध सकते हैं। अतः ऐसा दान वह लोक व्यवहार का ध्यान रख कर ही देता है। वह ऐसे दान को कर्म-बंध का कारण समझता है। कर्म-बंध के जितने भी काम हैं चाहे वे अच्छे हों या बुरे, आदरणीय नहीं। पंच महाव्रत पालन करने वाला साधु सर्व व्रती होता है, कंचन और कामिनी का पूर्ण रूप से त्यागी होता है। ऐसे महात्मा को शुद्ध कल्पनीय दान देने से ही संवर निर्जरा धर्म होता है। ऐसे दान से ही श्रावक परम

हर्षित होता है। उसके बारहवां व्रत निपजता है। यही आदर्श दान है।

कुपात्र * दान मोहकर्म उदै,
सुपात्र दान क्षयोपशम भाव जी।
व्रत निपजै सुपात्र दान थी,
तिण रा जाणै समदृष्टि न्याय जी ॥

अपात्र दान सावद्य है। मोह कर्म के उदय से मानव ऐसा दान देने में उद्यत होता है। सुपात्र दान क्षयोपशम भाव है। इससे बारहवां व्रत निपजता है। समदृष्टि मानव इस रहस्य को समझ कर ही सुपात्र दान से लाभ उठाता है और अपात्र दान को गौण समझता है।

मकान बनाने में षट् काय के जीवों की हत्या होती है। फिर भी जैन श्रावक मकान बनाता है। यदि वह समर्थ है, पैसे वाला है, तो कई मकान भी बनाता है। एक दो में वह रहता है बाकी के योंही खाली पड़े रहते हैं। जब कभी साधु महात्मा का उस नगर में पधारना होता है, तो वह अपने खाली मकानों में विश्राम करने के लिये साधु से सविनय अर्ज करता है। वह हरवक्त इस इन्तजारी में रहता है कि कब साधु पधारे और कब मेरा

---

* कुपात्र—जिसे दान लेने का अधिकार नहीं, उसे कुपात्र या अ-पात्र कहा जा सकता है।

बारहवां व्रत निपजे। ऐसे अपने मकान को साधु को ठहरने के लिये कुछ समय के लिये देना शय्या दान है। साधुओं के लिये मकान बनाना और उनको सदा के लिये अर्पण कर देना शय्या दान नहीं। स्वामी जी ने साधुओं के लिये स्थानक बना देना अथवा किसी मकान को स्थानक रूप में व्यवहार के लिये दे देना —इन सब का बड़ा कड़ा विरोध किया। जब सब कुछ त्याग कर सन्यासी ही बन गये तब फिर मकान से मतलब क्या? साधु जहाँ भी ठहरे वही उसका मकान है। वह तो घुम्मकड़ है। रमता योगी है। अप्रतिबंध विहारी है

सहिजै जागां पड़ी हुवे सूझती,
जब जोवे साधां री बाट जी।
तिणरे कर्म तणीं निर्जरा हुवै,
वले बन्धै पुन्य रा थाट जी।
बाट जोवतां साध पधारिया,
सेज्झा दान दे हर्षित थाय जी।
जाणैं धन दिहाड़ो धन घड़ी,
म्हारै साधु उतरिया आय जी॥
सेज्या दान देई शुद्ध साधु ने,
केई करै प्रति संसार जी।

केई वंध पाड़ै शुद्ध गति तणूं,
ते तो पामें भवजल पार जी ॥
सिज्झा थानक दीधा साधु ने,
आगै तिरथा जीव अनन्त जी ।
वलि तिरथा ने तिरसी घणां,
इम भाप गया भगवन्त जी ॥

यदि मकान खाली हो। उसमें सचित्त—जीव सहित कोई भी वस्तु इधर उधर विखरी न पड़ी हो, निर्दोष हो तो श्रावक मन में विचारता है कि यदि शुद्ध साधु पधारें, तो इस मकान का दान देकर मैं वारहवां व्रत निपजाऊं। इसी इन्तजारी में वह अपना मकान निर्दोष रखता है। शुद्ध रखता है! उसमें सचित्त वस्तु का प्रवेश नहीं होने देता। इस प्रकार की भावना से इन्त-जारी से उसे निर्जरा होती है। कर्म क्षय होते हैं और साथ साथ पुण्य का वंध भी। लम्बी इन्तजारी के पश्चात् जब कभी साधु का उस गांव में पधारना होता है, तो वह बड़े हर्ष से अपने शुद्ध मकान में विश्राम करने के लिये विराजने के लिये उस साधु से सविनय निवेदन करता है। अर्ज करता है। साधु की स्वीकृति पाने से वह वड़ा हर्षित होता है और मन में सोचता है—आज का दिन मेरे लिये धन्य है। आज की यह घड़ी यह समय मेरे परम सौभाग्य का है जो मुझे ऐसा शुभ संयोग मिला।

मेरे मकान में सन्त मुनिवर विराजे। मेरा घर पवित्र किया। आज मेरे जैसा भाग्यशाली और कौन है ? शुद्ध साधु के विश्राम के लिये इस प्रकार से मकान का दान देकर शुद्ध भावना द्वारा अनेक मानव अनन्त संसारी (अनन्त काल तक संसार में चक्र लगाने वाले) से प्रति संसारी (सीमित काल तक चक्र लगाने वाले) बन गये। शुद्ध गति का बंध भी किया। संसार सागर की अवधि घटाली। भगवन् महावीर ने कहा है—मकान व जगह के शुद्ध दान से अनेक मानव संसार सागर को पार कर गये, कर रहे हैं और करेंगे।

जो मकान अव्रती के उपयोग में आता है वह सर्व व्रती साधु के काम में आवे इससे बढ़ कर अच्छा उपयोग उस मकान का क्या होगा ?

सुश्रावक सिर्फ अपने ही मकान-दान से सन्तोष नहीं कर लेता, वह तो दूसरों को भी ऐसे सुपात्र आदर्श दान की ओर आकर्षित करता है।

दियां देवायां भलो जांणियां,
निरदोप सुपात्र दान जो।
व्रत निपजै दीधां वस्तु आपरी,
इम भाख्यो श्री भगवान जो॥

पुत्र त्रियादिक मा बाप रा,
परिणाम चढ़ावें विशेप जी।
त्यां ने दान देवा सनमुख करें,
सिखावें शुद्ध विवेक जी॥
पुत्र त्रियादिक मा बाप रा,
दान देवा रा रहै परिणाम जी।
त्यां सू हेत राखें जिनधर्म रो,
शुद्ध श्रावक तिणरो नाम जी॥

भगवन् महावीर के आदेश अनुसार शुद्ध निर्दोप सुपात्र दान देने से दिलाने से व ऐसे दान का समर्थन करने से बारहवां व्रत निपजता है। अतः सु श्रावक अपने पुत्र स्त्री मा बाप आदि सम्बन्धियों को दान के प्रति प्रोत्साहन देता है। दान की रीति बताता है। उनका परिणाम चढ़ाता है। उनकी भावना को उत्साहित करता है। उनके साथ धर्म सम्बन्धी प्रीति रखना वह अपना प्रधान कर्तव्य समझता है।

दूसरों को दान देते देख कर श्रावक मन में कुढ़ता नहीं।

अडलक दान देतां देखी और ने,
त्यांरा पाड़ें नहिं परिणाम जी।

कदा देणी न आवै आप सूं,
तो करै तिण रा गुण ग्राम जी ॥
गुण सहणी न आवै दातार रा,
पोते पिण दियो नहीं जाय जी ।
ये दोनों अवगुण दूरा तजै,
श्री जिनवर नुं धर्म पाय जी ॥
औरां ने दान देतां देखने,
कोई वरज पाड़ै अन्तराय जी ।
तो उत्कृष्टो बांधे महा मोहणी,
एहवो श्रावक न करै अन्याय जी ॥

किसी को मुक्त हस्त से दान देते देख कर श्रावक उसके परिणाम को, उसकी भावना को, दान देने के उत्साह को शिथिल नहीं करता। इधर उधर की बातें कह कर उसको बहकाने की चेष्टा नहीं करता। वह स्वयं तो मुक्त हस्त से दान देने में समर्थ नहीं परन्तु वह ऐसे उत्कृष्ट दानी का यशोगान करके लाभ तो कमा ही लेता है। परन्तु ऐसे श्रावक भी हैं, जो स्वयं तो दान देने में समर्थ नहीं और जो देता है, उसको भी सहन नहीं कर सकते। स्वयं न देना और जो देते हैं उनके प्रति कुढ़ते रहना—दोनों ही अवगुण है। इन दोनों अवगुणों को त्याग देना चाहिये। सूत्रों में उल्लेख है कि जो मानव किसी अन्य व्यक्ति को दान देते देख

कर उसे रोकता है, वरजता है, अन्तराय देता है, तो उसके उत्कृष्ट रूप में महा-मोहनीय कर्म का बंध तक हो जाया करता है। ऐसा करना अन्याय है। श्रावक ऐसा अन्याय नहीं करता।

श्रावक गुरु की भावना भाये विना भोजन नहीं करता।

केई अन्यतीर्थी जीमे नहीं,
त्यांरा ठाकुर ने विन दीधाँ भोग जी।
नित्य वारै रसोई काढ़ि ने,
पोपै पुजारादिक लोग जी॥
त्यां ने ठीक नहीं त्यांरा देव री,
देवै लेवै न लेवै भोग जी।
तो ही राखै छै त्यांरी आस्था,
नित वरतावै त्यांरो जोग जी॥
तो व्रतधारी शुद्ध श्रावक तणूं,
धर्म सूं रंग्यो छै तन मन जी।
ते गुरुनी भावना भायां विना,
मुख में किम घालै अन्न जी॥
कइकां रै गुरु छै अन्यतीरथी,
त्यांरी करै साचै मन टैहल जी।

तो साधु पधारयां आंगणै,
त्यां ने श्रावक नहीं गिणैं सहेलजी ॥

बहुत से जैनेतर इष्टदेव ठाकुरजी आदि को भोग लगाये विना, चढ़ावा किये बिना भोजन नहीं करते। हमेशा वे अपने देव ठाकुर के लिये अलग भोजन निकालते हैं। वे अपने देव के विषय में पूरी जानकारी भी नहीं रखते लेकिन अपने देव में उनको पूरा विश्वास है, पक्की आस्था है भक्ति है। अतः वे नित्य प्रति अपना नियम पालते हैं। भोग लगाते हैं। चढ़ावा करते हैं। व्रतधारी शुद्ध श्रावक का तो तन और मन धर्म रूपी रंग से रंगा हुआ है, वह अपने गुरु की शुद्ध साधु की भावना भाये विना मुंह में किस प्रकार अन्न डाले ?

कोइ कहे दान घणूं दिढ़ावियो,
ये तो लेवा रो कियो उपाय जी।
एहवा ऊंधा बोले शुद्धि बुद्धि विना,
पिण श्रावक न काढ़ै वाय जी ॥
दान दवा रा परिणाम जेहना,
ते तो सुण सुण हर्षित थाय जी।
कहै व्रत निपावा री विधि,
मौने सत्गुरु दीनी बताय जी ॥

कई लोगों की ऐसी धारणा है कि दान की जो इतनी प्रशंसा की गयी। इनका इतना महत्त्व बताया गया, वह सिर्फ इसलिये कि साधु वर्ग को दान आसानी से मिल सके। इनको किसी भी जरूरी चीज़ के प्राप्त करने में कठिनाई न हो। परन्तु जरा सोचो। मुनि धर्म पालन करना लोहे के चने चबाने हैं। क्या ऐसा मुनि सिर्फ अपने लिये दो चार रूखी सूखी रोटी प्राप्त करने के हेतु आजन्म ऐसी कठोर साधना करता है? वह भिखमंगा तो है नहीं कि झूठमूठ में दान की तारीफ करके अपना पेट भरे। एक मानव जो फूले फले घर, प्रिय स्त्री पुत्र, अपार धनराशि आदि को त्याग कर मुनि धर्म अंगीकार करता है, क्या वह सिर्फ भोजन व कपड़े की मामूली जरूरत के लिये दान की झूठी तारीफ कर सकता है? वह खाता भी इसी लिये है कि अपनी कठोर साधना में वह आगे बढ़ सके। दुनियां को सही रास्ता बता सके। मानव-कल्याण में वह तन मन को झोंक सके। अतः ऐसा कहना—कि दान की तारीफ सिर्फ अपने स्वार्थ के लिये साधु वर्ग किया करता है—एकदम फिजूल है। एक अविवेकी-मानव ही ऐसी छोटी बात मुंह से निकालता है। श्रावक के मुंह से ऐसी बात निकल नहीं सकती।

जिसका दान देने का मन है, परिणाम है वह तो दान का महात्म्य, दान देने की विधि आदि बातों को सुन सुन कर हर्षित होता है और कहता है—बड़ा अनुग्रह करके सद्गुरु ने मुझे दान की विधि बताई।

बारह व्रतों में अन्तिम व्रत का क्या स्थान है, इसका भी कवि दिग्दर्शन कराता है।

और व्रत कह्या देवल समाँ,
सिखा व्रत छै सिखा समान जी।
त्याँ मे सघला सिरै व्रत बारमूं,
तिणरी बुद्धिवन्त करसी पिछाण जी॥

प्रथम आठ व्रत देव-मन्दिर के समान हैं। अन्तिम चार शिक्षा व्रत उस मन्दिर की शिखा के समान हैं। इन चार शिक्षा व्रतों में भी बारहवां व्रत—अतिथि संविभाग व्रत सर्वश्रेष्ठ है। बुद्धिमानों को यही तो समझना है।

सुपात्र दान भव सागर से पार करने का एक अति उत्तम साधन है।

तिरथा तिरै तिरसी घणां,
इण दान तणैं प्रताप जी।
तिण में शंका मूल न आणवी,
श्री जिन मुख स्युं भाख्या आप जी॥

हमारे आदर्श भगवन् महावीर ने अपने श्रीमुख से फरमाया है कि सुपात्र दान से अनेक मानव भवसागर को पार कर गये, कर रहे हैं और करते भी रहेंगे। इस बात में बिल्कुल शंका सन्देह व अविश्वास न करना चाहिये।

सूत्र पुराण कुराण में; पात्र दान तणूं अधिकार जी ।
ते पात्र कुपात्र ने ओलखी, बुद्धिवन्त काढै निस्तार जी ॥

जैन सूत्र में, हिन्दु पुराण में, इस्लाम कुरान में समस्त प्राचीन ग्रन्थ में सर्वत्र सुपात्र दान का महात्म्य बताया गया है। ऐरै गैरै नत्थु खैरै—हर किसी को देना—धर्म है, ऐसा किसी ने नहीं कहा। दान किसे दें, किसे न दें ?—इसे विचारना बुद्धिमानों का काम है। सुपात्र कौन, अपात्र कौन ?—इस पर भी गौर करना है।

वले कहि कहि ने कितरा कहूं, इण दान तणा गुण ग्राम जी।
क्रोड़ जिह्वा करि वरणव्यां, पूरा कहिणी न आवै ताम जी ॥

कवि कहता है—सुपात्र दान की महिमा कहां तक बताऊं ? एक जिह्वा तो क्या, क्रोड़ जिह्वा होने पर भी सुपात्र दान की महिमा पूरी तरह से वर्णन करना असम्भव है।

जोड़ कीधी बारमां व्रत री, ते तो गुंदवा शहर मझार जी।
सम्वत अठारह बत्तीस में, वैशाख सुद बीज मंगलवार जी ॥
स्वामी भीखण जी शोभता, जोई सूत्र रो न्याय जी ।
भव जीवां ने प्रतिबोधवा, बारै व्रत दिया ओलखाय जी ॥

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक एवं प्रथम आचार्य कवि शिरोमणि सन्त श्री भिक्षु ने इस छोटे से सारगर्भित

सुन्दर सरल काव्य की रचना शहर बूंदवा में विक्रम सम्वत् १८३२ मिती बैशाख शुक्ला द्वितीया वार मंगलवार को समाप्त की। आपने संसारी जीवों के कल्याण के हेतु जैन सूत्र सिद्धान्तों के अनुरूप इस बारह व्रत की रचना करके साधारण जनता के हृदय में बारह व्रत के प्रति एक आकर्षण उत्पन्न किया। ताकि वे अपने जीवन को त्याग मार्ग की ओर आगे बढ़ा सकें। जीवन की सार्थकता तभी है, जब इन व्रतों का गम्भीर अध्ययन करके उनके अनुरूप ही अपने जीवन को प्रेरित किया जाये।

शुद्धाशुद्धि-पत्र

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	१०	पोपघ	पोपध
१०	६	व्यक्तित्व	अस्तित्व
१०	२०	ता	तो
११	१२	सव्व	सव्वे
१३	१९	णो व घाय ए	णोवघायए
१४	५	देने	दे ने
१६	१९	चालूं	चालै
१९	१२	इव्रत	अव्रत
१९	१३	सुमता	सुमति
२०	१८	[illegible]	होवै
२६	८	ह	है
३५	४	स्वंग	स्वर्ग
३७	१	गिएहंत्ति	गिण्हंति
३७	१	गिएहाव ए	गिण्हाव ए
४३	१९	दैन	देन
४६	२२	मिलया	मिलाया
६१	१९	तौ	तो
६६	६	तं	ते
७०	१६	भिलियो	मिलियो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७१	१७	मा	मां
७५	१८	मनुस्मृति	भागवत्
७६	८	हत्थपाय पलिच्छिन्नं	हत्थपाय पड़िच्छिन्नं
७७	६	बर्णन	वर्णन
७९	१५	चक्ख गिज्झं	चक्खु गिज्झं
९१	१२	करण जोग पिछाण	करण जोग सुजाण
९४	१७	दुःखंधिगर्थं	दुःखंधिगर्थं
९७	५	लूट	लूंटे
९९	१०	हुंशियार	होशियार
१००	१६	शृष्टि	सृष्टि
१०१	१४	आशय है	अभिप्राय दीखता है।
१०२	१	जन	जैन
११९	९	परिग्रह मांहि रक्त	इण परिग्रह मांहि रक्त
१२३	६	नादगी	सादगी
१२३	१९	एयेर	ऐयर
१३८	२	उदेश्य	उद्देश्य
१४०	६	दुशमन	दुश्मन
१४१	१८	शाक्षी	साक्षी
१४८	१०	सगुरु	सुगुरु
१४८	१०	कुगुर	कुगुरु
१५०	१	कार्य	काय

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५४	१६	के खून और मांस	के कलेवर
१६०	१४	संसारिक	सांसारिक
१६६	१	कराने में सहयोग	कराने में निरवद्य सहयोग
२०१	४	दुकनदार	दुकानदार
२०२	१३	समान	सामान
२०७	१०	काय	कार्य
२१४	६	दुशमन	दुश्मन
२२०	८	चाोटी	चोटी
२२१	१	रोत	रात
२२७	१८	नट्ट	नट्टं
२२८	१३	को	की
२४०	५	दड़ता	दढ़ता
२४२	६	छुट	छूट
२५१	११	संसारिक	सांसारिक
२५८	१५	वाणेह	वाणह
२५८	१६	भतेसु	भत्तेसु
२६३	१६	सामिल	शामिल
२६४	२१	छुट	छूट
२६६	११	सन्दल	सन्डल
२८०	५	पुर मुढ़	पुरि मड्ढ
२८१	१६	"	"

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८७	६	पौषध व्रत का	सैद्धान्तिक दृष्टि से पौषध व्रत का
२८७	१०	साधारण तया पौषध	परन्तु सामाजिक परम्परा के अनुसार साधारणतया पौषध
२६७	५	धन	धान
३०३	१६	संसारिक	सांसारिक
३०५	१२	वताता	वताता
३०७	१७	जैसे जल, दूध छाछ आदि।	जैसे जल। दूध छाछ आदि पेय-पान में शुमार नहीं।
३०८	४	काठ के वने वर्तन	काठ, मिट्टी, प्लास्टीक आदि के वने वर्तन
३०८	७	जो जीव हिंसा से वचनेके लिये पंजने में काम आवे जैसे ओघा, पूंजनी आदि	एक वस्त्र विशेष जो पैर पोछनें में काम आवे।
३०६	८	माहातम्य	माहात्म्य
३०६	१५	रोम रोम	रोम राय
३११	१३	यथासक्य	यथाशक्य
३२१	२	अत्यन्त	अनन्त

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३२७	५	ज्यादाद	जायदाद
३२८	१८	वंघ	धंधे
३३८	१६	दवा	देवा

———

कवि की मूल रचना में कुछ छुटे हुये पद्य

पृष्ठ-५

तीजो पौपध कहिजिये , चौथो साधु ने दान

के पश्चात् और होना चाहिये—

या बारह वरतां तणो , कहिये छै विस्तार
भाव धरी भवियण सुणो , मन में आण विचार

पृष्ठ-१२६

दिशि मर्यादा मांड ने , टालै पाप विशेष

के पश्चात् और होना चाहिये—

मांहिली अव्रत मेटवा , दूजो गुणव्रत धार ।
द्रव्यादिक त्यागन करै , भोगादिक परिहार ॥
जे द्रव्यादिक राखिया , जेहनी अव्रत जाण ।
अर्थ दण्ड छूटे नहीं , अनर्थ दण्ड पचक्खाण ॥

पृष्ठ-१९८

आर्त रौद्र ध्यान ध्यावै लोग , पामै विविध हर्ष ने सोग

के पश्चात् और होना चाहिये—

शब्दादिक इन्द्रियां ना भोग , तेहनूं वंछे संयोग वियोग
रोगादिक लागै अणगमता , भोग भोगवतां लागै गमता
इण विधि जीव रचै ने विरचै , आप अर्थ कुटुम्ब ने परिचै ।
ठाकुर चाकर सगा स्नेही , बोहरा ने धुरया आदि देई ॥
जिण सुखिये सुख वेदै आप, तिण दुःखये पामै सोग सन्ताप ।
ते पिण टालै समता आण , अनर्थ ध्यावारा पचक्खाण ॥
रौद्रध्यान हिन्सा जे ध्यावै , झूंठ चोरी वन्दी खान दिरावे
अर्थ करै पिण धूजै तन्न , अनर्थ ध्यान तजै एक मन्न

———